ADHUNIK HINDI KAVYA PRAVRITHIYOM KE SANDHARBH MEM NIRALA KAVYA KA ADHYAYAN

आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में निराला काव्य का अध्ययन

MODERN TRENDS OF HINDI POETRY WITH SPECIAL REFERENCE TO NIRALA'S POETRY

THESIS SUBMITTED TO THE
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

FOR THE DEGREE OF
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

C. J. PRESENNAKUMARI

SUPERVISING TEACHER
Dr. P. V. VIJAYAN
PROFESSOR
DEAN FACULTY OF HUMANITIES

HEAD OF THE DEPARTMENT
Prof. Dr. M. ESWARI

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UINVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN - 682 022

1994

C E R T I F I C A T E

THIS is to certify that this THESIS is a bonafied record of work carried out by C.J.PRESENNAKUMARI under my supervision for Ph.D Degree and no part of this thesis has hitherto been submitted for a degree in any University.

Department of Hindi,
Cochin University of
Science and Technology,
Cochin - 682 022.

Prof.Dr.P.V.Vijayan
(Supervising Teacher)

01.07.1994.

पुरोवाक्

कालयात्री है कविता । वह निरन्तर गतिशील है, अतः विकासशील, जीवन्त और प्राणवान है । बीसवीं शताब्दी के आरंभ से हिन्दी कविता में जीवन के प्रति एक आधुनिक दृष्टि लक्षित होती है, इसलिए बीसवीं शताब्दी की हिन्दी कविता ही आधुनिक हिन्दी कविता है । विगत नब्बे वर्षों में भारत के राजनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन और विकास की विभिन्न सीमाओं को पारकर अब आधुनिक हिन्दी कविता बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक तक पहुँच गयी है ।

इस शताब्दी के दूसरे दशक के मध्य में हिन्दी काव्य जगत में पदार्पण करनेवाले श्री सूर्यकान्तत्रिपाठी निराला की आधुनिक हिन्दी कविता में एक अलग पहचान है । पैंतालीस वर्षों के लम्बे अर्से तक फैले उनके विराट सृजनात्मक व्यक्तित्व और कृतित्व के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में अनेक शोधप्रबन्ध और आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। हमारे विभाग से डा. वी.वी. विश्वम्भ ने भी आधुनिक काव्यप्रवृत्तियों के रूपायन में निरालाजी के योगदान का अध्ययन किया है । लेकिन उनका शोध प्रबन्ध नयी कविता तक सीमित है ।

मेरे इस शोध प्रबन्ध का शीर्षक है " आधुनिक हिन्दी काव्यप्रवृत्तियों के सन्दर्भ में निराला काव्य का अध्ययन" । यहाँ मैंने आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में निरालाजी की कविताओं का अध्ययन और मूल्यांकन किया है । जहाँ तक मुझे ज्ञात है अकविता और समकालीन कविता के सन्दर्भ में निरालाजी की कविताओं के मूल्यांकन के साथ कोई शोध प्रबन्ध प्रकाशित नहीं हुआ है ।

यह शोध प्रबन्ध छः अध्यायों में विभक्त है । प्रथम अध्याय निराला काव्य के अध्ययन की भूमिका है । यहाँ बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण की युगान्तरकारी घटना अर्थात काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली की स्वीकृति की चर्चा की गयी है ।

इस अध्याय में आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - द्विवेदीयुगीन कविता छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगशील नयी कविता के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी विचार किया गया है ।

द्वितीय अध्याय में निरालाजी की जीवन रेखा, उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन हुआ है । निरालाजी के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही उनकी कविता है । वे अपने कृतित्व और व्यक्तित्व में विद्रोही रहे । इसी अध्याय के कृति परिचय के अन्तर्गत उनकी सन् 1923 में प्रकाशित प्रथम "अनामिका" से लेकर सन् 1981 में प्रकाशित "असंकलित कविताएँ" तक की कृतियों पर प्रकाश डाला गया है ।

तीसरे अध्याय में छायावादी काव्यप्रवृत्तियों के सन्दर्भ में निराला काव्य का विवेचन हुआ है । यहाँ छायावाद के स्वरूप तथा उसके उदय और विकास में सहायक विभिन्न परिस्थितियों का अध्ययन है । अपनी वर्णित प्रथम कविता "जुही की कली" से निरालाजी छायावाद के कर्णधार बन गये । यहाँ उनके पूर्ववर्ती काव्यसंकलनों की कविताओं का मूल्यांकन छायावादी काव्यप्रवृत्तियों के सन्दर्भ में हुआ है ।

यथार्थ जीवन से पलायन करनेवाली हिन्दी कविता को वास्तविक जीवन से संलग्न कराने केलिए हिन्दी में प्रगतिवाद का जन्म हुआ । छायावाद के प्रवर्तक निरालाजी उस काव्यधारा के वैभवकाल में ही प्रगतिशील चेतना संपन्न कविताओं के प्रणेता बनकर प्रगतिवाद का पथ प्रशस्त किया था । चौथे अध्याय में प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में निरालाजी की प्रगतिशील चेतनायुक्त कविताओं का अध्ययन और मूल्यांकन हुआ है ।

प्रयोगशील कविता का विकास ही नयी कविता है । अत: दोनों अभिन्न हैं । प्रयोगशील नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निराला की कविता में लक्षित होती हैं । पाँचवें अध्याय में " कुकुरमुत्ता", "बेला", "नये पत्ते" जैसे परवर्ती काव्यसंकलनों को दृष्टि में रखकर प्रयोगशील नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर निराला की कविताओं का मूल्यांकन हुआ है ।

छठा अध्याय इस शोध प्रबन्ध के उपसंहार से सम्बद्ध है । इसमें पिछले अध्यायों का निष्कर्ष है साथ ही अकविता और समकालीन कविता के सन्दर्भ में निरालाजी की कविताओं का मूल्यांकन तथा परवर्ती कवियों पर निरालाजी के प्रभाव की चर्चा है । इस शोध प्रबन्ध में मैंने आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास के केन्द्रीय कवि के रूप में निरालाजी को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है ।

यह शोध प्रबन्ध हमारे विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रोफसर डा.पी.वी. विजयन के विद्वतापूर्ण निर्देश में संपन्न हुआ है । विजयनजी जैसे अनुभवसंपन्न, प्रतिभावान अध्यापक के निर्देशन में शोधकार्य करने का मुझे जो अवसर मिला, वह मैं अपना सबसे बडा सौभाग्य समझती हूँ । मैं उनके प्रति चिर-कृतज्ञ हूँ ।

इस विभाग के अध्यक्षा प्रो. डा. एम. ईश्वरी का मैं आभार मानती हूँ । वे इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति के लिए मुझे प्रेरणा देती रही ।

इस विभाग के अन्य अध्यापकों और अध्यपिकाओं ने भी अपने स्नेहपूर्ण उपदेशों के द्वारा इस शोधकार्य को पूर्ण करने में मुझे प्रेरित किया है। उनके प्रति मैं आभारी हूँ।

हमारे विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमती कुंजिक्कावुट्टि तंपुरान के प्रति भी मैं बहुत आभारी हूँ। जिन्होंने मेरे प्रयत्न में मदद की है। कोचिन विश्वविद्यालय के अधिकारियों के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस शोध प्रबन्ध की पूर्ति में मेरी सहायता की है।

सी. जे. प्रसन्नकुमारी

हिन्दी विभाग,
कोचिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
कोचिन, पिन - 682 022

ता 1-07-19

विषय - सूची

पुरोवाक्

अध्याय एक

आधुनिक काव्यप्रवृत्तियाँ

खड़ीबोली काव्यभाषा - द्विवेदीयुगीन कविता - छायावाद - प्रगतिवाद - प्रयोगशील नयी कविता- आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध । पृ.सं. 1-24

अध्याय दो

महाकवि निराला

जीवन रेखा - व्यक्तित्व विश्लेषण - काव्य-कृति परिचय । पृ.सं. 25-57

अध्याय तीन

छायावाद और निराला

छायावाद स्वरूप और व्याख्या - प्रेरणास्त्रोत और परिस्थितियाँ - छायावादी काव्य की प्रमुख विशेषताएँ - छायावाद के प्रवर्तक निराला - निराला काव्य में छायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ - छायावाद के प्रतिनिधि कवि निराला ।

पृ.सं. 58-118

अध्याय चार

प्रगतिवाद और निराला

प्रगतिवाद - स्वरूप और व्याख्या - प्रेरणास्त्रोत और परिस्थितियाँ - प्रगतिशील और प्रगतिवाद - निराला काव्य में प्रगतिशील चेतना- निराला काव्य में प्रगतिशील काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ ।

पृ.सं. 119-157

अध्याय पाँच

प्रयोगशील नयी कविता और निराला

प्रयोगशील नयी कविता नामकरण और स्वरूप विकास - प्रेरणास्त्रोत और परिस्थितियाँ - प्रयोगशील नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - निराला-काव्य में प्रयोगशील नयीकविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - प्रयोगशील नयी कविता को निराला की देन ।

पृ.सं. 158-208

अध्याय छः

उपसंहार

निराला की अकवितानुमा कविताएँ - समकालीन कविता और निराला - निराला और परवर्ती कवि - आधुनिक हिन्दी काव्य के केन्द्रीय कवि निराला ।

पृ.सं. 209-230

सन्दर्भ ग्रंथ सूची पृ.सं. 231-246

अध्याय - एक

आधुनिक काव्य प्रवृत्तियाँ

कविता कालयात्री है । वह निरन्तर गतिशील है । आधुनिक हिन्दी कविता का शुभारंभ सन् 1857 की राज्यक्रांति के बाद माना जा सकता है । सन् 1857 के बाद सन् 1900 तक के समय को हम भारतेन्दु युग कह सकते हैं । यह युग प्राचीन और आधुनिक युग के बीच का संक्रान्तिकाल है । सन् 1900 के बाद की हिन्दी कविता ही आधुनिक हिन्दी कविता है । क्योंकि कविता में जीवन के प्रति आधुनिक दृष्टि इस समय से लक्षित होती है ।

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशक हिन्दी कविता का द्विवेदी युग माना जाता है । सन् 1920 से सन् 1940 तक का काल छायावादी काल है । छायावाद युग के उत्तरार्द्ध में सन् 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना से, प्रगतिवाद और उसके कुछ वर्ष बाद सन् 1943 के तारसप्तक के प्रकाशन से हिन्दी में प्रयोगशील कविता का आविर्भाव माना जाता है । प्रयोगशील कविता का सहज विकास ही नयी कविता है । अत: बीसवीं शताब्दी के हिन्दी काव्यधारा को परिवर्त मुख्यत: निम्नलिखित प्रमुख शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है-

1. द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा
2. छायावादी काव्यधारा
3. प्रगतिवादी काव्यधारा
4. प्रयोगशील नयी काव्यधारा

संक्रान्तिकाल याने भारतेन्दु युग के साहित्य नायक थे श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र । वे नये राष्ट्रीय सामाजिक सन्दर्भों से अभिभूत थे । उन्होंने जनता के हृदय की धड़कन को पूर्णरूप से समझ लिया था । सामाजिक साहित्यक गतिविधियों पर भारतेन्दु का गहरा प्रभाव रहा। उन्होंने युगयुगों से टूटे कविता और जनता के संबन्ध को पुन:स्थापित किया । अज्ञेयजी के शब्दों में कहें तो- तो खड़ीबोली के माध्यम से हिन्दी साहित्य का जो उन्मेष बीसवीं शती के मध्य से आरंभ हुआ, उसकी सबसे अधिक उल्लेखनीय विशेषता यह नयी लौकिकता अथवा लौकिक जीवन दृष्टि ही है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस प्रवृत्ति को एक पन पुंजित, आत्मचेतन और सोद्देश्य रूप दिया । ह्रासशील दरबारों के

दूषित वातावरण में क्षयप्राप्त होते हुए हिन्दी साहित्य को वह उबारकर नयी लोक भूमि पर लाये"।[1] भारतेन्दुजी ने अपने काव्य में मध्युगीन और आधुनिक चेतन का सन्तुलन स्थापित कर अपनी विचारों को मौलिकता का परिचय दिया। इसप्रकार युगसृष्टा भारतेन्दु ने हिन्दी कविता को एक नयी चेतना दी, उन्होंने उसे एक नया मोड और नया प्रवाह प्रदान किया।

पर भारतेन्दूजी के समय में आमजनता की बोलचाल की भाषा खडीबोली का काव्यक्षेत्र में प्रवेश नहीं हुआ था। उन्होंने पूर्वप्रचलित, कोमलकान्त पदावली से संपन्न ब्रजभाषा को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। भारतेन्दू के संबन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन अक्षरश: सत्य है-" भारतेन्दु का व्यक्तित्व सम्पूर्ण मध्यकालीन काव्य के श्रेष्ठ तत्वों का प्रतिनिधित्व करता है और दूसरी ओर आधुनिक युग के भावी लेखकों का विधायक भी बनता है। जिस प्रकार शिव केशोश से गंगा की शतश: धरायें फूट पडी थीं उसी प्रकार हिन्दी काव्य की शतश: प्रवृत्तियों का आदिस्रोत भारतेन्दु युग है"[2]।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतेन्दूजी ने हिन्दी कविता में मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा करके एक अंतरंग क्रांति का आहवान दिया था, लेकिन ब्रजभाषा से बनी उसके कायाकल्प में परिवर्तन लाने का परिश्रम उन्होंने नहीं किया।

खडीबोली काव्यभाषा

हिन्दी काव्य में खडीबोली का उदय सिद्ध कवियों की यथार्थवादी परम्परा के साथ हुआ था। आदिकाल में अमीर खुसरो ने खडीबोली में काव्यरचना की थी। उनकी मुकरियों और पहेलियों की भाषा ठेठ खडीबोली है। ब्रजभाषा और खडीबोली के लावणी काव्य का उदय एक साथ हुआ था। लावणी काव्य के उदय और विकास में हिन्दु-मुसलमान संतों ने अपना योग दिया। अत: आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में-"खडीबोली का आदिकाव्य असम्प्रदायिक था"[3]। इसके बाद आधुनिक युग में

---

1. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य-पृ. सं. 47 - श्री अज्ञेय
2. आधुनिक हिन्दी साहित्य-पृ. सं. 89-90 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
3. आधुनिक साहित्य पृ.सं. 29 वही।

बदलते दृष्टिकोण को पहचानकर भारतेन्दुजी ने कुछ कविताएँ खड़ीबोली में लिखी थीं। लेकिन खड़ीबोली की काव्यधारा का अटूट प्रवाह तो द्विवेदी युग से हुआ।

खड़ीबोली को काव्यभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये सामाजिकपरिस्थितियाँ भी सहायक सिद्ध हुईं। इस समय भारत की राजनीति में ब्रटीश साम्राज्यवाद का मोर्चा अधिकाधिक प्रबल बन रहा था। अंग्रेज़ अपनी स्वार्थता के लिये ही सही यहाँ नयी अर्थव्यवस्था, औद्योगिकता, संचार सुविधा, प्रेस आदि की स्थापना कर चुके थे। इंडियन एसोसियेशन, मद्रास महाजन सभा, ईस्ट इंडियन एसोसियेशन जैसी संस्थायें भारत में एक नयी राजनीतिक जागृति पैदा करने में सहायक हुईं। सन् 1857 की प्रथम राज्यक्रांति के बाद सन् 1885 में इंडियन नेशनल कॉंग्रेस की स्थापना युग की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना थी। यह युग भारत में सांस्कारिक नवोत्थान का उदयकाल था। आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, तियोसफिकल सोसाइटी, हिन्दु धर्म महामंडल जैसे धार्मिक, सांस्कारिक संस्थाओं का उदय इस युग में हुआ। सांस्कृतिक नवोत्थान के साथ अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद से मुक्तिही इन संस्थाओं का लक्ष्य रहा। इन संस्थाओं के परिश्रम के फलस्वरूप यहाँ मध्य युगीन मानवीय संबन्धों के स्थान पर नये मानवीय संबन्धों की स्थापना हो रही थी। अंग्रेज़ी सभ्यता के प्रभाव से भारत में एक आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति प्रकट हुई। सन् 1893 में काशीनागरी प्रचारणी सभा की स्थापना हुई। तियोसफिकल सोसाइटी ने अपने आदर्शों के प्रचार के लिए बनारस सेन्ट्रेल हिन्दू कोलेज नामक शिक्षा संस्था की स्थापना की। सन् 1900 में सरस्वती पत्रिका का शुभारंभ हुआ जो युगीन कवियों की मार्गदर्शिका बन गयी। अंग्रेज़ी संस्कृति एवं भाषा के प्रभाव से भारतीय साहित्य का रूप बदल रहा था। भारत की राजनीतिक धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों के ये परिवर्तन खड़ीबोली के विकास में सहायक बन गए।

खड़ीबोली की काव्यभाषा के रूप में स्वीकृति देने के पक्ष में कारण अनेक हैं। भारत की राष्ट्रीय चेतना और भाषा परिवर्तन का विकास समानान्तर हुआ। सामन्ती व्यवस्था के प्रति उदासीनता और व्यापकता की खोज खड़ीबोली के उत्थान के कारण बने। श्री अज्ञेयजी के शब्दों में -" इसका रचनात्मक महत्व स्पष्ट ही है - व्यापकता की खोज: राष्ट्रीयता की केन्द्रोन्मुख भावना के उदय और विकास के साथ साथ एक व्यापक भाषा की - या एक व्यापक भाषा की अनुपस्थिति में सबसे अधिक व्यापक घटक की खोज स्वाभाविक थी। और यह व्यापक घटक खड़ीबोली ही हो

सकती थी, ब्रजभाषा का उपयोग अपने प्रदेश से बाहर केवल साहित्य क्षेत्र तक सीमित था, जबकि खड़ीबोली अपने प्रदेश से बाहर लोक व्यवहार में भी आती थी, भले ही अशुद्ध रूप में।[1] खड़ीबोली को काव्यभाषा के रूप में स्वीकृति देने का और एक कारण यह था कि बीसवीं शताब्दी के बदले हुए जीवन को अभिव्यक्ति के लिये नये विधान, नई शैली, नये छन्द विषय भाव एवं शक्तिशाली स्वर की आवश्यकता महसूस हो रही थी। भारतेन्दुजी ने हिन्दी कविता को नये भाव और नयी शैली दी। लेकिन भाषा परिवर्तन पर उनका ध्यान नहीं गया। डा. राजेन्द्रमिश्र के शब्दों में कहें तो - "ब्रजभाषा ब्रजभूमि के बाहर केवल साहित्यक भाषा थी। उसकी मुद्रायें और मुहावरे आधुनिक जीवन के लिये अप्रासंगिक थी। इसलिये उस युग के कवियों ने पहले छन्द भाव से और बाद में आश्वस्त होकर खड़ीबोली को काव्य भाषा के रूप में स्वीकृति दी"।[2]

भाषा विकास के नियम के अनुसार साहित्य लोकभाषा में होना चाहिये। एक भाषा प्राचीनता के कारण जडीभूत हो जाती है तो उसका स्थान दूसरी जीवित भाषा अपना लेती है। डा. सुधीन्द्र के शब्दों में -" साहित्य का माध्यम लोकप्रचलित भाषा होनी चाहिये। यह एक उन्नत और उद्बुद्ध राष्ट्र की मान्यता होती है। भाषा तत्व के सिद्धान्तों के अनुसार ज्यों ज्यों लोकभाषा का परिवर्तन हो जाता है. त्यों त्यों साहित्य भी उस परिवर्तन को वरन् करता है। जब प्राचीन युग में प्रयुक्त और एक देशांग में सीमित कोई भाषा साहित्य में प्रयुक्त होते होते जडीभूत हो जाती है तो नवीन जीवित भाषा की आवश्यकता की पुकार होने लगती है।"[3] विकास का यह नियम खड़ीबोली के लिये अनुकूल था।

काव्य भाषा के रूप में खड़ीबोली की स्वीकृति देने के पहले पश्चिमोत्तर प्रदेश की बोलचाल की भाषा उर्दू थी। उस समय ब्रजभाषा काव्य भाषा थी। हिन्दू और मुसलमान अपनी अपनी भाषा का प्रतिनिधित्व करना चाहते थे। ब्रजभाषा की सांस्कृतिक कट्टरता ने भारतियों को विश्व साहित्य से अनभिज्ञ भी बना दिया था। इसलिये मानव जाति के बुद्धि संस्कार केलिए एक नयी भाषा की ज़रूरत थी। केवल ब्रजमंडल की बोलचाल की भाषा शताब्दियों तक हिन्दी की साहित्यक भाषा रही। उसके स्थान पर देशव्यापी खड़ीबोली को कविता का माध्यम बनाना कोई

---

1. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य-पृ.सं.49-श्री. अज्ञेय
2. नयी कविता की पहचान - पृ.सं.23-डा. राजेन्द्रमिश्र।
3. हिन्दी कविता में युगान्तर पृ.सं. 50-डा. सुधीन्द्र।

अनुचित कार्य भी नहीं था । राजाश्रय में पली खिली व्रजभाषा जनजीवन के निकट आयी तो उसके सौन्दर्य का ह्रास हो गया । ऐसे सन्दर्भों में जनजीवन के आधार पर पनपी खडीबोली के लिये उसका स्थान ग्रहण करना आसान और स्वाभाविक था । अज्ञेयजी का कथन ठीक है -" जबकि हिन्दी की आधावधि ग्रहण शीलता और निर्माणशीलता उसमें एक लचीलापन पैदा करती है जो उसे राष्ट्रभाषा पद के विशालतर दायित्व का भार संभालने में मदद करेगा"[1]। खडीबोली को इसी ग्रहणशीलता और निर्माणशीलता के कारण राष्ट्रभाषा बनने के पहले उसे हिन्दी की काव्यभाषा के रूप में प्रतिष्ठा मिली । इसके अलावा खडीबोली परम्परा से जन विद्रोह की भाषा रही। निरालाजी के शब्दों में-"खडीबोली हिन्दी के हृदय की अशान्त आशा, सार्वदेशिक प्रसार से लिपटी हुई जड और चेतन के विश्वसंसर्ग से बन्धन हीन चित्रा विचित्रा"।[2] इसलिए साधारण जनता की आशाओं, आकांक्षाओं, और उमंगों की अभिव्यक्ति का उत्तम माध्यम खडीबोली ही है ।

सन् 1900 से 1920 तक का समय खडीबोली काव्यभाषा के जन्म और विकास का काल है। सन् 1900 में युग के साहित्यनायक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिन्दी साहित्य जगत में पदार्पण किये । डा. विश्वंभर नाथ उपाध्याय के शब्दों में-"वे बीसवीं शताब्दी के आरंभिक तीस पच्चीस वर्षों के साहित्यक विकास एवं प्रगति के मंत्रदाता और पुरोहित थे"[3]। सन् 1900 अक्तूबर 19 के श्री वेंकटेश्वर समाचार बंबई के अंक में उनकी खडीबोली की पहली मौलिक रचना "बलिवर्द" प्रकाशित हुई । सन् 1901 की सरस्वती में द्विवेदीजी के कवि कर्तव्य नामक लेख प्रकाशित हुआ जो हिन्दी काव्य नीति का घोषणा पत्र था । कविकर्तव्य में द्विवेदीजी ने भविष्यवाणी की-"किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा व्रजभाषा की कविता को अवश्य छोड लेगी । इसलिये कवियों को चाहिए कि कम से कम वे गद्य की भाषा में ही कविता करना आरंभ करें । क्योंकि बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा, यह प्रकृतिक नियमों के विरूद्ध है"।[4] सन् 1903 में द्विवेदीजी सरस्वती के संपादक बन गये । डा. अजबसिंह के शब्दों में - सरस्वती द्वारा

---

1. हिन्दीसाहित्य एक आधुनिक परिदृश्य- पृ.सं. 33 - श्री अज्ञेय ।
2. प्रबन्ध पद्म - पृ.सं. 89 -90 - निराला
3. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा - पृ.सं. 62
4. सरस्वती जुलाई 1901

उन्होंने साहित्य क्षेत्र में सुरुचि, सुशिक्षा और व्याकरण सम्मत भाषा का प्रचार किया। द्विवेदीजी साहित्य के महारथी एवं समर्थ समालोचक थे जिनका प्रधान कार्य निर्माण और व्यवस्था का था, साहित्य सृजन का उतना नहीं"[1]। साहित्य का बागडोर अपने हाथ में लेकर द्विवेदीजी स्वयं सरल, प्रसादपूर्ण, व्याकरण सम्मत खड़ीबोली में कविता करने लगे और अन्य कवियों को भाषा के विषय में निर्देश देने लगे। उन्होंने नवीन विषय, राष्ट्रीयता और अंग्रेज़ी साहित्य की नवीनता को ग्रहण करने के साथ खड़ीबोली की प्राण प्रतिष्ठा पर सर्वाधिक बल दिया। द्विवेदीजी ने अपने कठिन प्रयास से शताब्दियों से हिन्दी काव्यक्षेत्र में प्रतिष्ठित ब्रजभाषा को पथभ्रष्ट कर दिया और हिन्दी कविता में एक "बहिरंग क्रांति" उपस्थित की। डा.सुधीन्द्र के शब्दों में " शताब्दियों से सर्वस्वीकृत, सर्वप्रचलित काव्यभाषा को अपने संपूर्ण अलंकरण, उपकरणों के साथ अतीत की वस्तु बनाकर एक अप्रयुक्त, अपरिमार्जित भाषा को उसकी जगह मूर्धाभिषिक्त कर देना एक महान निर्माण कार्य से कम नहीं है। यह महान कार्य बीसवीं शताब्दी में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा संपन्न हुआ"[2]। द्विवेदीजी के इस युगान्तरकारी महान कार्य के संबन्ध में निरालाजी ने लिखा -" खड़ीबोली के घट को साहित्य के विस्तृत प्रांगण में स्थापितकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मंत्र-पाठ द्वारा देश के नव युवक समुदाय को एक अत्यन्त शुभ मुहूर्त में आमंत्रित किया और उस घट में कविता की प्राण प्रतिष्ठा की"[3]।

द्विवेदीयुग खड़ीबोली कविता का बाल्यकाल था। द्विवेदीजी को जो भाषा उत्तराधिकार में मिली थी; वह अव्यवस्थित, विकृत एवं अपरिमार्जित थी। खड़ीबोली की इस बाल्यावस्था की कमज़ोरियों पर दृष्टिपात करते हुए डा.विश्वंभर नाथ उपाध्याय ने लिखा-" यह समय उद्गम का समय था। अतः सहसा श्रेष्ठ काव्य की मांग करना उन कवियों के प्रति अन्याय है जो यह निश्चित नहीं कर पा रहे कि खड़ीबोली में लिखें या ब्रजभाषा या दोनों में"[4]। ऐसी भाषा को द्विवेदीजी और उनके सहयोगी कवियों ने अपनी प्रतिभा से पाला, पोसा, व्याकरण सम्मत और परिमार्जित बना दिया।

---

1. आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ - पृ.सं. 60
2. हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ.सं. 40 - डा. सुधीन्द्र।
3. निराला ग्रंथावली। पृ.सं. 502 - निराला
4. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा पृ.सं. 123

उसकी प्रारंभिक अस्थिरता और अव्यवस्था जल्दी समाप्त हो गयी । द्विवेदीजी और उनके सहयोगी कवियों द्वारा खड़ीबोली हिन्दी का प्रतिमानीकरण अज्ञेयजी के शब्दों में -" प्रतिमानीकरण द्विवेदीयुग की मुख्य प्रवृत्ति रही । इस काल में खड़ीबोली एक संस्कारी भाषा हो गयी और तभी से उसे खड़ीबोली कहना भी अनावश्यक हो गया - हिन्दी संज्ञा उसी के लिये रूढ हो गयी ।"[1] द्विवेदीजी और सहयोगी कवियों के वर्षों के परिश्रम से बने भाषा संस्कार से हिन्दी की वास्तविक आभा कविता में आयी ।

लेकिन द्विवेदीयुगीन कवियों को अभिधात्मक एकायामी भाषा प्रयोग से तृप्त हो जाना पड़ा । वह नितान्त नीरस भाषा थी । प्रसादजी की प्रारंभिक रचनायें भाषा की दृष्टि से कमज़ोर हैं । बाद में छायावादी कवियों द्वारा भाषा की अभिव्यक्ति कुशलता बढाने की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य हुआ । छायावादी कवियों ने लाक्षणिक व्यंजनात्मक भाषा का प्रयोग करके खड़ीबोली के सृजनात्मक रूप का परिचय दिया । भाषा के महान शिल्पी पंतजी ने खड़ीबोली की परुषता को गलाकर उसमें कोमल तरल सौन्दर्य का आवाहन किया । आद्यांत प्रौढ गंभीर भाषा के प्रयोक्ता निरालाजी ने लिखा -" मैं अपनी तरफ से इतना कहूँगा कि छायावाद की कवितायें भाषा साहित्य के विचार से अधिक विकसित रूप हैं,जहाँ जहाँ इन कविताओं में डूबी आ गयी है, वहाँ वहाँ बहुत अच्छी तरह यह प्रमाण मिल जाता है "[2]। भाषा और संवेदना के अनेक रंग निरालाजी की कविता में है । कुकुरमुत्ता की उनकी बदली भाषिक संरचना से प्रयोगशील नयी कविता के कवि प्रभावित हुए । इन कवियों ने आधुनिक जटिल परिस्थितियों में मनुष्य की मनस्थितियों के चित्रांकन के लिए नये शब्दों की तलाश की । भाषा विकास की दृष्टि से प्रयोगशील नयी कविता का युग पूर्ववर्ती युगों की तुलना में प्रौढतम है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत के हृदय की भाषा, खड़ीबोली की काव्य भाषा के रूप में स्वीकृति आधुनिक हिन्दी कविता की एक युगान्तरकारी घटना है । यह द्विवेदीयुग की सबसे महान उपलब्धि है ।

---

1. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - पृ.सं. 50-51 श्री अज्ञेय
2. प्रबन्ध पद्म । साहित्य और भाषा । पृ.सं.-28 - निराला ।

द्विवेदीयुगीन हिन्दी कविता

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दो दशक को द्विवेदी युग है । इस युग में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की छत्रछाया में हिन्दी कविता धीरे धीरे प्रगति की ओर आगे बढी । द्विवेदीजीने सरस्वती में 'कविकर्तव्य' शीर्षक लेख में कविता के विषय, भाषा और अर्थ के संबन्ध में अपना निर्देश युगीन कवियों के सामने रखा । सन् 1905 में उन्होंने 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक अपने लेख में छन्द विधान की नूतनता, सरल सुबोध भाषा, रसानुरूप शब्द प्रयोग, अर्थ सौरस्य आदि के बारे में अपना मत प्रकट किया । द्विवेदीजी अर्थ सौरस्य को कविता का प्राण घोषित किया और रसानुरूप शब्द प्रयोग पर बल दिया । काव्य विषय की व्यापकता की ओर संकेत करते हुए द्विवेदीजी ने लिखा-" चींटीसे लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी अनन्त पर्वत सभी पर कविता हो सकती है "[1]।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदीजी की प्रेरणा के फलस्वरूप मैथिलीशरणगुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, नाथुराम शंकर शर्मा, देवीप्रसाद पूर्ण जैसे कवियों की काव्यप्रतिभा प्रस्फुटित हुई । मन्नन द्विवेदी गजपुरी, माधव शुक्ल, पद्मलाल पुन्नालाल बख्शी, केशवप्रसाद, गोविन्द वल्लभपन्त जैसे अनेक कवि हिन्दी कविता के निर्माण में जुडगये। भारतेन्दु युग में हिन्दी कविता की अन्तर्वस्तु एवं अभिव्यंजना पक्ष ने जो नया मोड लिया था, उसमें प्रौढता, अनुशासन एवं गंभीरता का आगमन द्विवेदीयुग में हुआ। प्राचीनता के प्रति मोह रखनेवाली हिन्दी कविता को द्विवेदीजी ने प्राचीनता और नवीनता का केन्द्रबिन्दु बनाया । भारतेन्दु युग में जन्मी प्रवृत्तियों का क्रमात्मक विकास द्विवेदीयुग में हुआ ।

द्विवेदीयुगीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

विषय की विविधता एवं नवीनता, बौद्धिकता, राष्ट्रीयता, उपदेशात्मकता, सुधारवादिता, नयी काव्यभाषा, नवीनछन्द, कलात्मक विविधता आदि इस कविता कीप्रमुख विशेषतायें हैं । खडीबोली के प्रारंभिक प्रयास होने के कारण वर्णनात्मकता, गद्यात्मकता, जैसी कमियाँ भी इस युग की कविता में मौजूद हैं । फिर भी डा. उदयभानु सिंह के शब्दों में -" द्विवेदी युग को कविता विषय, भाषा, छन्द और अर्थ की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी काव्य भवन के भूतल से चलकर शिखर -तल पर पहुँच

---

1. सरस्वती जुलाई 1901 - आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

गयी- यही उसकी महिमा है "।

विषय की विविधता एवं नवीनता

विषय विस्तार द्विवेदीयुगीन कविता की सबसे बडी विशेषता रही । परम्परा से चली श्रृंगारिकता से ऊबे जनमानस को युगीन कवियों ने विषय वैविध्य से आश्वस्त किया। द्विवेदीजी ने चींटी से लेकर अनन्त पर्वत को काव्य का विषय घोषित किया । पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक सामाजिक विषयों पर कवितायें होने लगीं। प्रार्थना, ऋतुवर्णन, प्रकृति, मानव सब काव्य के विषय बन गये । डा. उदयभानुसिंह के शब्दों में-" एक तो इन कवियों ने नवीन विषय पर काव्य रचनायें कीं और दूसरे परम्परागत मानव, प्रकृति आदि विषयों को नवीन दृष्टि से देखा[2] "। वैज्ञानिक दृष्टिकोण को काव्य का विषय बनाते हुए हरिऔधजी ने "प्रियप्रवास" में गोवर्धन धारण की व्याख्या और "जयद्रथवध" में सूर्य के छिपने का रहस्य बताया । दलित वर्ग के प्रति सहानुभूति, समाज की कुरीतियों से बचने का आवेश सब युगीन कविता का विषय रहा । आर्थिक दीनता, विदेशी शासन की गुलामी की अन्योक्ति, धार्मिक उदारता सब इस काव्यधारा के काव्य के विषय विस्तार के भीतर रह गये । इसलिये डा. उदयभानु - सिंह का कथन ठीक है-" द्विवेदी युग में की गयी इस प्रकार की कवितायें आगामी प्रगतिशील काव्य की भीत्ति के रूप में प्रस्तुत हुईं ।"[3]

सन् 1909 में आचार्य द्विवेदीजी ने कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता शीर्षक एक निबन्ध प्रकाशित किया । इसके फलस्वरूप कवियों के नारी संबन्धी दृष्टिकोण में परिवर्तन आ गया । उर्मिला, विष्णुप्रिया, यशोधरा जैसी कवि कुल उपेक्षिता नायिकाओं को काव्यक्षेत्र में प्रतिष्ठा मिली । रीतिकालीन नारी विलास केलिकुशला थी, पर द्विवेदी युगीन नारी केवल भोग्या नहीं, योग्या और लोक हितकारिणी है, वह मौलिक परिवर्तन के मार्ग में पुरूष की सहगामिनी है ।

उदा: प्रियप्रवास की राधा -

निर्लिप्त हूँ अधिकतर मैं नित्यशः संयता हूँ
तो भी होती अति व्यथित हूँ श्याम की याद आते
वैसी वांछा जगत-हित की आज भी है न हो तो
जैसे जी में लसित प्रिय के लाभ की लालसा है ।

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग - पृ.सं. 308 . डा. उदयानुसिंह
2. वही पृ.सं. 264 वही
3. वही पृ.सं. 287 वही

फिर भी द्विवेदी युगीन नारी अबला है और स्वभिमानी भी ।

उदा: गुप्तजी की यशोधरा

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आंचल में है दूध और आंखों में पानी ।

नारी के समान पुराण के प्रति भी इन कवियों के दृष्टिकोण में नूतनता है । अमानवीय पुरुषों का मानवीकरण इस सांस्कृतिक काव्यधारा में हुआ । "साकेत" का राम मानव है, लोकसेवा में तत्पर है । "प्रियप्रवास" का कृष्ण भी मनुष्यत्व का प्रतीक है । वह गोपों को सभ्य बनाता है । पौराणिक पात्रों को आधुनिक युग के अनुसार मोडने की इस नयी प्रथा का शुभारंभ यहीं से हुआ । विषय की नूतनता इस काव्यधारा की मौलिक देन है । अत: द्विवेदी युगीन राष्ट्रीयता संपृक्त काव्य-धारा नये भावबोध, नया जीवन दर्शन एवं भारतीय संस्कृति की असली सुगन्ध से युक्त है ।

बौद्धिकता:

भारतेन्दुकालीन भावुकता के बदले द्विवेदी युग में बौद्धिकता की प्रधानता रही । तात्कालीन सांस्कृतिक परिवेश इसकी पृष्ठभूमि तैयार की । स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्यसमाजी सिद्धान्तों से युगीन कवि प्रभावित हुए। इस आर्यसमाजी बौद्धिकता के संबन्ध में दिनकरजी ने लिखा -"वे स्वामि दयानंद यूरोपीय बुद्धिवाद के प्रेमी थे और बुद्धिवाद के ही आलोक में वे हिन्दुत्व के समग्रत्व का परिवर्तन करना चाहते थे"[1] । यूरोपीय बुद्धिवाद से प्रेरित आर्यसमाजी बौद्धिकता के कारण इस काव्य-धारा में एक प्रयोगात्मक दृष्टिकोण का उदय और विकास हुआ । नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन, आधुनिक बौद्धिकधारातल पर मानव जीवन का विश्लेषण आदि परम्परा से भिन्न रीति इसी बौद्धिकता की देन है। इस बौद्धिकता ने अलौकिक पौराणिक कथाओं को लौकिक और साधारण मानव के लिए ग्राह्य बना दिया ।

राष्ट्रीयता

नवोत्थान एवं नवजागरण के सन्देश से प्रभावित द्विवेदीयुगीन कवियों की रचनाओं में मंगल विधायक राष्ट्रीय भावना को प्रश्रय मिला । अतीत के वैभव की प्रेरणा एवं

---

1. शंकर सर्वस्व-पृ.सं ।99 - दिनकर

मंगलमय कल्पना ने कविता को एक आदर्शवादी रूप दिया । "भारत भारती" देशप्रेम जागरित करनेवाली गुप्तजी की महान कृति है। डा. उदयभानुसिंह के शब्दों में- "भारत के गौरवमय अतीत, दीन हीन वर्तमान और आशापूर्ण भविष्य का सुन्दरतम चित्रांकन 'भारत-भारती'[1] में हुआ । गुप्तजी के लिए -

जन्मभूमि समान सुन्दर स्वर्ग भी होता नहीं ।

भारत के अतीत गौरव के साथ अन्धकारमय वर्तमान भी कवियों का विषय बन गया । दीनतापूर्ण नम्रता के बदले यहाँ क्रांतिपूर्ण उद्गार है । सत्ता के प्रति विद्रोह एवं क्रांति के गीत गाकर गुप्तजी ने देश को जडता से जगाने का यत्न किया । द्विवेदी युगीन काव्य में क्रांति के उद्गार के साथ आत्मग्लानि की भावना है, उन्नति की कामना एवं अतीत के आदर्श और भविष्य के स्वप्न हैं ।

द्विवेदीयुगीन कवियों का देशप्रेम व्यक्ति और समाज को अपने दायित्व के प्रति सचेत बनानेवाला है । द्विवेदीयुगीन कवियों में श्रीधर पाठक, मैथिली शरणगुप्तजी और रामनरेश त्रिपाठी का देशप्रेम नम्रतापूर्ण है तो सुभद्राकुमारी चौहान और माखनलाल चतुर्वेदी के स्वर में क्रांति की उद्गार है ।

सुधारवादिता

द्विवेदीयुग हर दृष्टि से सुधारवादी युग था । सामाजिकता, राजनीतिक, साहित्यक एवं भाषा संबन्धी प्रचार तथा अतीत का गौरवमय चित्र इन कवियों के सामने था । बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में भारतीय जनजीवन भी धार्मिक, सांस्कृतिक संस्थाओं से प्रभावित दिखाई पडता है । डा. मोहन अवस्थी के शब्दों में -"अन्य सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव तो हिन्दी प्रदेश में परिलक्षित होकर पहुँचा, किन्तु हिन्दी काव्य में आर्यसमाज की सुधारवादी विचारधारा प्रत्यक्षत: प्रतिफलित हुई "।[2]

इस सुधारवादी दृष्टिकोण ने द्विवेदीयुगीन कविता में उपदेशात्मकता को जन्म दिया । गुप्तजी ने लिखा -

आनन्दमयी शिक्षिका है यह कविता कामिनी
केवल मनोरंजन न कवि का धर्म होना चाहिए
उसमें कुछ उपदेश का भी मर्म होना चाहिए

"भारत भारती", "उपदेश कुसुम", "शिक्षा संग्रह" आदि कृतियों में उपदेशात्मक कविताएँ संकलित हैं ।

---

1. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग-पृ.सं. 30 डा.उदयभानुसिंह
2. आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प - पृ.सं. 72- डा. मोहन अवस्थी

द्विवेदीयुग नैतिकता का युग था । डा. विजयेन्द्रस्नातक के शब्दों में - "विधवा विवाह, जात-पांत खण्डन, ब्रह्मचर्यपालन, स्वदेशी वस्त्रप्रयोग, अछूतोद्धार, शुद्ध नैतिकता आदि को जिस रूप में आर्यसमाज अपना रहा था, उसी रूप में द्विवेदी-युगीन कवियों ने स्वीकार किया"[1]। अत: अछूत, किसान, मज़दूर विधवा, शिक्षित नारी सब पर इन कवियों का ध्यान गया । अछूतोद्धार की भावना से प्रेरित होकर गुप्तजी ने लिखा -

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भिन्नता तज मिले ।
बढ परस्पर प्यार और कुम्हलाये मानस खिले ।

जाति-पांति के विरूद्ध आवाज़ उठानेवाले कवि ने यहाँ एक समाज सुधारक का रूप धारण किया है । सदाचार और आचरण शुद्धि को प्रश्रय देनेवाले इस युग में कविता आद्यन्त संयम, मर्यादा, शिष्टता, पवित्रता, सदाचार आदि को बनाये रखने का प्रयत्न करती है । "प्रियप्रवास" मे राधाकृष्ण का प्रेम संयत एवं मर्यादित है । "साकेत" की उर्मिला संयम एवं साहस का प्रतीक है।

प्रकृति

द्विवेदीयुगीन कवियों ने परम्परागत प्रकृति वर्णन को पुन:जीवन देनेका प्रयास किया । उनकी कृतियों में प्रकृति देश और जीवन का हिस्सा बन गयी है । श्रीधर पाठक को "काश्मीर सुषम", गुप्तजी को 'मातृभूमि' जैसी कविताओं में प्रकृति के माध्यम से देश का गुणगान हुआ है। महाकाव्य के लक्षण के आधार पर प्रकृतिचित्रण करने के कारण द्विवेदी-युगीन कविता में काव्यकला की महिमा उभर आयी है । द्विवेदीयुगीन काव्यों का शुभारंभ भी प्रकृति की पृष्ठभूमि में हुई है । यहाँ प्रकृति मानव के साथ एकाकार हो गयी है। इस रीति का विकास बाद की छायावादी कविता में हुआ । द्विवेदीयुगीन प्रकृति डा. ओंकारनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में -" इस युग की कविता को प्राचीन व्रजभाषा काव्य की विरासत छोडने के कारण जिस शून्य का समान करना पडा था, उसे भरने में प्रकृति ने बहुत योग दिया[2] "।

द्विवेदीयुग में प्रकृति का रूप चित्रण और भाव चित्रण हुआ है । डा.शांतिप्रिय द्विवेदी का कथन अक्षरश: सत्य है कि द्विवेदीयुगीन कविता में "-रूढ शैली में वर्णित सांध्यगगन की शोभा, वसन्त की वनान्त में व्याप्त वासन्ति का, वर्षा की हरित कमनीयता तथा रास के समय शारदीय सुषमा के नयनाभिराम चित्र अपने समय के

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता आर्यसमाज के सन्दर्भ में - भूमिका-भक्तराम
2. हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौ वर्ष -पृ.सं. 367-"डा.ओंकारनाथश्रीवास्तव

हिसाब से उच्चकोटि के है[1]। प्रकृति सुषमा का सजीव अंकन हरिऔधजी ने प्रियप्रवास में किया है -

दिवस का अवसान समीप था
गगन था कुछ लोहित हो चला
तरुशिखा पर थी अब राजति
कमलिनी कुल वल्लभ की प्रभा ।

प्रकृति के प्रस्तुत और अप्रस्तुत रूपों का चित्रण भी द्विवेदी युगीन कवियों ने किया । समाज और मानवता के साथ प्रकृति और ऋतुयें इस युग के काव्य के अभिन्न अंग बन गये ।

शिल्पपक्ष

शिल्प पक्ष की दृष्टि से द्विवेदीयुग पूर्ववर्ती परवर्ती युगों से अधिक संपन्न है । भाषा के क्षेत्र में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा हिन्दी कविता के लिए द्विवेदी युग की सबसे बड़ी उपलब्धि है ।लेकिन द्विवेदीयुगीन भाषा लाक्षणिकता और आलंकारिकता से कोसों दूर थी । भाषा की अव्यवस्था युगीन कवियों की सबसे बड़ी समस्या थी । फिर भी अशुद्ध अपरिमार्जित खड़ीबोली का शुद्ध व्याकरण सम्मत बनाने का स्तुत्य कार्य इस युग में हुआ । डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय का कथन ठीक है - "द्विवेदीयुग में भाषा में लाक्षणिकता और ध्वनि उत्पन्न करने का काम बहुत कम हुआ । द्विवेदीजी का आग्रह नूतन भंगिमाओं पर उतना नहीं था जितना भाषा की सुबोधिता और शुद्धता पर।"[2] खड़ीबोली के प्रारंभिक काल में हरिऔधजी की रचनायें महत्वपूर्ण हैं। खड़ीबोली के उत्कर्ष के लिये गुप्तजी का योगदान महत्वपूर्ण है । निरालाजी के शब्दों में-"खड़ीबोली की कविता का सेहरा किसी एक ही कवि को पहनाया जाय तो अब तक इसके अधिकारी केवल बाबू मैथिली शरण गुप्तजी ठहरते है"[3]। इनकी भाषा खड़ीबोली हिन्दी में आदर्शभाषा मानी जाती है ।

द्विवेदीयुगीन कवियों के लिये भाषा के साथ छन्द भी नये थे । इस युग में श्रीधर पाठक ने लावणी छन्द और उर्दू शैली का सफल प्रयोग किया । ब्रजभाषा के कवित्त सवैयों को भी द्विवेदीयुगीन कवि सफलता के साथ प्रयोग में लाये ।

---

1. हमारे साहित्य निर्माता - पृ.सं.15 डा. शांतिप्रिय द्विवेदी
2. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा पृ.सं. 137
3. निराला ग्रंथावली - पृ.सं. 518

द्विवेदीजी ने युगों से प्रचलित दोहा, चौपाई, सोरठा जैसे छन्दों को छोडकर अतिरिक्त छन्दों में लिखने की प्रेरणा दी । वंशस्थ, द्रुतविलंबित, वसन्ततिलक जैसे छन्दों का इसप्रकार हिन्दी में प्रवेश हुआ । हरिऔधजी ने इस युग में अतुकान्त छन्दों की रचना करके नूतनता का परिचय दिया । संस्कृत छन्दों के ओज और माधुर्य से भाषा जीवन्त बन गयी । सन 1920 तक आते कविता में लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता आ गयी । गुप्तजी, हरिऔधजी जैसे कवि कहावत, मुहावरों पर भी ध्यान देने लगे ।

कलात्मक विविधता द्विवेदीयुगीन काव्य की विशेषता है । इस युग में प्रबन्ध काव्य के तीनों रूप-पद्यप्रबन्ध, खण्डकाव्य और महाकाव्य का प्रणयन हुआ । पद्य प्रबन्ध इस युग की नूतन विधा थी । गुप्तजी की "कोचक की कोचता", "कुन्ती और कर्ण" आदि इस कोटि की रचनायें हैं । इस युग के खण्डकाव्य हैं गुप्तजी के "अनघ" "जयद्रथवध", रामनरेश त्रिपाठी के " पथिक" आदि । हरिऔधजी के "प्रियप्रवास" और गुप्तजी के "साकेत" द्विवेदीयुग के दो महाकाव्य हैं ।

युगीन उपदेशात्मक दृष्टि और समस्यापूर्ति ने मुक्तक काव्य को प्रोत्साहित किया। "झंकार" "स्वदेशसंगीत", "कृषाण" आदि गुप्तजी के मुक्तक काव्य हैं । मुक्तक काव्य की स्वछन्दता और प्रबन्ध के कथानक से संपुष्ट मुक्तक प्रबन्ध की रचना भी इस युग में हुई । गद्य प्रबन्ध इस युग की एक विधा है । द्विवेदीजी के "प्लेगस्तवराज", और "समाचार पत्रों का विराट रूप" इस युग के गद्यप्रबन्ध हैं ।

द्विवेदीयुग में बंगला, अंग्रेज़ी संस्कृत आदि भाषाओं से प्रचुरमात्रा में अनुवाद हुए।

द्विवेदीयुगीन कविता की संपूर्ण विशेषताओं का विश्लेषण आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में - "खडीबोली को शैशवावस्था में एकता को सामाजिक जागृति के साथ एक संयत आदर्शवादी विचारधारा का पहला आलोक फैलने लगा था । इस प्रातकालीन वातावरण में एक तरल दीप्ति थी । आशा का हलका उत्साह था । विश्वास की प्रचंड गरिमा नहीं थी । इस काल के कवियों की भावना में एक तरल सौम्यता खेल रही थी । कल्पना की आकाशीय उडानों का नाम न था । कवियों ने अधिकतर पुराने आख्यान लेकर उन्हें अपनी भावना से सज्जित न किया । चित्रित चरित्रों और वर्णन किए गए विषयों में कोई बडी व्यापकता या प्रसार न था । मनोवैज्ञानिक संघर्षों की भरमार न थी । अभिव्यंजना में भी सरलता न थी । अलंकारों और प्रस्तुतों की योजना चकाचौंध करनेवाली नहीं थी । भाषा का आच्छाद कलात्मक न था"।[1]

---

1. आधुनिक साहित्य - पृ.सं. 80-आचार्य नन्ददुलारेवाजपेयी

द्विवेदीयुगीन कविता स्थूल, इतिवृत्तात्मक और उपदेशात्मक थी फिर भी आधुनिक हिन्दी कविता में उसका अपना महत्व है । क्योंकि डा. सुधीन्द्र के शब्दों में- " गंगा जहाँ से निकली है, वहाँ की धारा क्षीण, क्षुद्र होते हुए भी हमारे लिए तीर्थ स्थ है । द्विवेदीकाल की ये कवितायें आज की हिन्दी कविता की गंगा की गंगोत्री है ।"[1]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि द्विवेदीयुगीन कविता वर्णनात्मक थी । विषय मनोरंजक और उपदेशजनक था । काव्यभाषा के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा द्विवेदीयुग में हुई । लेकिन इस युग की काव्यभाषा अभिधात्मक थी । आधुनिक हिन्दी कविता के प्रारंभिक प्रयास होने के कारण उसमें त्रुटियों का होना स्वाभाविक था । फिर भी प्रस्तुत काव्यधारा अपनी बाल सुलभ कठिनाईयों को पार करके आगे बढी और परवर्ती कवियों के लिये प्रेरणादायिका बन गयी ।

छायावाद

छायावाद सन 1920 से 40 तक अर्थात करीब दो दशाब्दियों तक हिन्दी काव्य जगत को अच्छादित करनेवाली एक काव्य प्रवृत्ति है । छायावाद शब्द का प्रथम उल्लेख सन् 1921 की 'सरस्वती' में हुआ । आरंभ में इस काव्य प्रवृत्ति को सामयिक आलोचकों, मूर्धन्य कवियों का विरोध पात्र बनना पडा । लेकिन बाद में रोमांटिक उत्थान की यह काव्यधारा दो दशकों की युगवाणी रही । डा. शंभुनाथ सिंह के शब्दों में -"छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता के स्वाभाविक विकास की महत्वपूर्ण मंजिल है, जहाँ पहुँचकर वह भक्तिकालीन काव्य की ऊँचाई और गौरव को पुन: प्राप्त कर सकी है"।[2] इस काव्य धारा में प्रसादजी, पंतजी, निरालाजी, महादेवी वर्मा जैसे कवि हुए । देश कालगत विशिष्टता के साथ संसार की विभिन्न उत्थानशील युगों की आशा, आकांक्षा को व्यक्तकरनेवाली स्वच्छन्द कल्पना की अभिव्यक्ति इस काव्य धारा में हुई है ।

सामंती, पुनरावर्तनवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध विद्रोह, बुद्धि के विरुद्ध हृदय का विद्रोह, कलावाद का विकास, अतिशय कल्पना, दार्शनिकता, मानववाद, अन्तर्मुखता, वैयक्तिक प्रेमाभिव्यंजना, परिष्कृत सौन्दर्य चेतना आदि इसकी वस्तुगत विशेषतायें हैं तो लाक्षणिक, व्यंजनात्मक भाषा, प्रतिकात्मकता, गीतात्मकता, प्राचीन-नवीन अलंकारों के

---

1. हिन्दी कविता में युगान्तर - पृ.सं. 98 - डा. सुधीन्द्र
2. हिन्दी साहित्य-तृतीय खण्ड पृ.सं. 166 डा. शंभुनाथसिंह

प्रवुरप्रयोग, छन्दों की विविधता आदि इस काव्यधारा की शिल्पगत विशेषताएँ हैं।

छायावादी कविता स्वानुभूतिनिरूपिणी कविता है, व्यक्ति के महत्त्व को सबसे पहले छायावाद में स्वीकृति मिली। वैयक्तिकता की प्रतिष्ठा हो जाने पर व्यक्ति के उल्लास और विषाद को वाणी मिली। सौन्दर्य की सूक्ष्माभिव्यक्ति पर इन कवियों ने ध्यान दिया। प्रकृति और मनुष्य के पारस्परिक संबन्ध के फलस्वरूप प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य का उद्घाटन छायावाद में हुआ। नारी सौन्दर्य का भव्य चित्रण भी छायावाद में हुआ है। इस काव्यधारा के कवियों का विद्रोह वैयक्तिक था। डा. नामवरसिंह के शब्दों में-"स्वाभावत: उन एकाकी संघर्ष में उसे पद पद पर पराजय और निराशा का अनुभव हुआ, दुख उनका सहचर बन गया"[1]। भावुकता छायावादी कविता का पर्याय बन गयी है। उनकी कल्पना को जगानेवाली है यह भावुकता। अत: छायावादी कल्पना और भावुकता परस्पर संबद्ध हैं। डा. नामवरसिंह के शब्दों में "-"छायावादी भावुकता का विद्युत स्पर्श होते ही कल्पना के पंखों का सहारा पाकर जड भाषा उन्मुक्त आकाश में उड चली"[2]। भावुकता, कल्पना और स्वानुभूति के अनुकूल शब्द चयन, प्रतीक योजना एवं छन्दों का स्थायन छायावाद में हुआ।

छायावाद द्विवेदीयुगीन कविता की प्रतिक्रिया नहीं उसका सहज और स्वाभाविक विकास है। इसमें अवश्य द्विवेदीयुग की कविता के कतिपय तत्त्वों की प्रतिक्रिया लक्षित होती है, साथ ही साथ कुछ तत्त्वों का विकास भी प्रकट होता है। द्विवेदी युगीन कविता में वस्तुवादिता, इतिवृत्तात्मकता, सामाजिकता एवं बहिर्मुखता की प्रधानता रही। लेकिन छायावादी कविता वैयक्तिक, अन्तर्मुखी, भावात्मक और कलात्मक है। सूक्ष्मता, अन्तर्मुखता और वैयक्तिकता के साथ छायावाद में कल्पनातिरेकता, परिष्कृत सौन्दर्य निष्ठा, श्रृंगारिकता एवं प्रकृतिपरकता की प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं। यह द्विवेदी युग की अपेक्षा छायावादी कवियों की संवेदना और सौन्दर्य बोध के परिवर्तन का परिणाम है। रीतिकालीन साहित्यिक मान्यताओं को ध्वस्त करके आगे बढनेवाली द्विवेदीयुगीन कविता की सुधारवादिता के स्थान पर छायावाद में श्रृंगारिक भावनाओं को प्रबलता मिली। द्विवेदीयुगीन कविता खडीबोली की तोतली वाणी मात्र थी। अत: उसमें पदलालित्य, माधुर्य एवं अलौकिक अभिव्यंजना का अभाव था। द्विवेदीयुगीन काव्य मर्मज्ञ इससे अनभिज्ञ नहीं थे। पर एक छोटी सी काल सीमा में कविता को पूर्ण अलंकरणों से विभूषित करना असंभव कार्य था। इस त्रुटि की पूर्ति छायावाद में हुई। इसके फलस्वरूप द्विवेदीयुगीन इकायामी अभिधात्मक काव्यभाषा के स्थान पर

---

[1] आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ.सं. 16 - डा. नामवरसिंह
[2] वही पृ.सं. 35 वही

बहु आयामी अभिव्यात्मक काव्य भाषा की प्रतिष्ठा छायावाद में हुई । डा. नामवर-सिंह के शब्दों में -" छायावाद द्विवेदी युग का ऐतिहासिक विकास है और इस प्रकार छायावाद हिन्दी साहित्य की परम्परा की एक महत्वपूर्ण कड़ी है "[1]।

अपूर्व शब्द चयन, अतिरंजित कल्पना वैभव, तीव्रानुभूति प्रवणता से संपुष्ट छायावाद ने आधुनिक हिन्दी कविता को प्रौढता प्रदान की । उसने अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष में क्रांति उपस्थित की । उसकी एक त्रुटि रही कि वैयक्तिकता के मोह में वह लोकजीवन से अलग हो गयी । उसकी अतिशय कल्पना शीलता से उत्पन्न पलायनवादी प्रवृत्ति ने सामाजिकता प्रधान प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि तैयार की । फिर भी काव्य सौष्ठव की दृष्टिसे छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता का सुवर्ण युग है ।

प्रगतिवाद

सन् 1935-40 के समय छायावाद में एक प्रकार की ह्रासोन्मुखता आ गयी । इसके फलस्वरूप हिन्दी काव्य में दो भिन्न धाराओं का जन्म हुआ-प्रगतिवाद और प्रयोगवाद । जो विचारधारा राजनीतिक क्षेत्र में साम्यवाद, सामाजिक क्षेत्र में समाजवाद और दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है वही साहित्य क्षेत्र में प्रगतिवाद है । मार्क्स के भौतिकवादी सिद्धान्तों का साहित्यक रूप है प्रगतिवाद । प्रगतिवाद और प्रगतिशील में पर्याप्त अन्तर है । समाज की प्रगति को लक्ष्य बनाकर लिखे जानेवाले सभी साहित्य प्रगतिशील साहित्य हैं । लेकिन मार्क्स के समाजवादी सिद्धान्तों पर आधारित काव्य को प्रगतिवादी काव्य कहते हैं ।

यद्यपि प्रगति के तत्व आधुनिक काल के आरंभ से ही सामयिक कवियों में विद्यमान थे, उसे वैचारिक पृष्ठभूमि प्रगतिवादी युग में मिली । सन्1935 में ई.एम. फास्टर की अध्यक्षता में लंदन में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई । इसके प्रभावस्वरूप सन् 1936 में भारत में प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन हुआ । अत: सन् 1936 भारत में प्रगतिवादी काव्य का उदयकाल माना जाता है यद्यपि निराला जैसे कवियों की प्रगतिवादी कही जानेवाली कविताओं की सृष्टि इसके पहले हुई थी । इस समय छायावादी व्यक्तिवादिता और कल्पना प्रियता पाठकों को अप्रिय लग रही थे, पर छायावाद का पतन नहीं हो चुका था । इसलिए डा. नगेन्द्र का कथन सत्य है कि-" छायावाद की भस्म से प्रगतिवाद पैदा नहीं हुआ, बल्कि उसके यौवन का गला घोंट कर ही उठ खड़ा हुआ है "[2]। मुख्यत: छायावादी

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ-पृ.सं. 46 - डा. नामवरसिंह
2. आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ-पृ.सं. 105-डा. नगेन्द्र

आदर्शवादिता की विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद में सामाजिक यथार्थवाद की प्रतिष्ठा हुई ।

प्रगतिवादी काव्य में सामन्तवाद का परित्याग, मज़दूरों के राज्य की जय, किसानों का विजय एवं जमीन्दारों के पराजय की स्वीकृति है । प्रगतिवादी कवि रूढियों के विरोधी एवं नूतनता के पक्षधर हैं । शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति आक्रोश, क्रांति का गुणगान, विप्लव की भावना, यथार्थप्रियता, गरीबी एवं परवशता का चित्रण, लोक सुलभ भाषा शैली आदि प्रगतिवादीकाव्य की प्रमुख विशेषतायें है ।

श्री नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, रामेश्वर शुक्ल अंचल, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शील, रांगेय राघव आदि इस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं । छायावाद के दो प्रतिनिधि कवि-पंत और निराला ने छायावाद के वैभवकाल में प्रगतिवादी कवितायें लिखीं । व्यक्तिवादी निराशा एवं दूसरे महायुद्ध की भीषणता ने उन्हें प्रगतिवाद की ओर उन्मुख किया । पंतजी की युगवाणी इसका द्योतक है । पंतजी ने लिखा-" इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती । उसकी जडों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है और युगजीवन ने उसके विरसंचित सुख स्वप्नों को जो चुनौती दी है उसको उसे स्वीकार करना पड रहा है ।" युवापीढी के प्रगतिवादी कवियों में गिरिजाकुमार माथुर, मुक्तिबोध नेमिचन्द्र जैन, भरतभूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा आदि प्रमुख है ।

यथार्थ की कठोर भूमि में जन्मी प्रगतिवादी काव्यधारा समष्टिवादी है । श्रमिक वर्ग को ज्ञानारूढ करना इस काव्यधारा का लक्ष्य रहा । अत: वे आत्मव्यक्ति पक्ष की अपेक्षा विषय वस्तु पर मोह रखते है । कलापक्ष पर ध्यान न देने के कारण प्रगतिवादी कविता में चमत्कारिकता का अभाव रहा । लेकिन छन्द के क्षेत्र में उन्होंने लोकगीतों की अनेक नयी धुनों को पुनर्जीवित किया है । इस काव्यधारा के समाजवादी दृष्टिकोण ने कविता को असांप्रदायिक और महान बनाया । डा. नामवरसिंह के शब्दों में-" प्रगतिवाद राजनीतिक जागरण से आरंभ होकर क्रमश: जीवन की व्यापक समस्याओं

---

1. स्वाभ । सन् 1938 । - पंत

की ओर, आदर्शवाद से आरंभ होकर क्रमशः यथार्थ की ओर अथवा नग्न यथार्थ से आरंभ होकर क्रमशः स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है"[1]।

स्वस्थ सामाजिकता, व्यापक भावभूमि एवं उच्च विचारधारा से संपुष्ट प्रगतिवाद में भावों की व्यंजना अभिधात्मक शैली में हुई है। कोरी कल्पना एवं श्रृंगारिकता का इस काव्य में एकदम अभाव रहा। प्रगतिवाद की इस शिल्पगत शिथिलता ने कलावादी आन्दोलन से प्रभावित प्रयोगशील नयी कविता के विकास में सहयोग दिया।

प्रयोगशील नयी कविता

सन् 1943 में श्री अज्ञेय के संपादकत्व में सात कवियों की कविताओं का संग्रह "तारसप्तक" प्रकाशित हुआ। "तारसप्तक" के प्रकाशन हिन्दी काव्य में एक नयी काव्य-धारा, प्रयोगवाद का आविर्भाव माना जाता है। यूरोप के प्रतीकवाद, अतियथार्थवाद, फ्राइडवाद, अस्तित्ववाद बिम्बवाद आदि से इस काव्यधारा ने प्रेरणा ग्रहण की थी। 'प्रयोगवाद' शब्द का प्रयोग सबसे पहले आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने किया था। वाजपेयीजी के शब्दों में-" पिछले कुछ समय से हिन्दी काव्य क्षेत्र में कुछ रचनायें हो रही है, जिन्हें किसी सुलभ शब्द के अभाव में प्रयोगवादी रचना कहा जा सकता है"[2] प्रयोगवाद के संबन्ध में प्रयोगवादी कवियों का कथन है -" प्रयोग तो सभी काल के कवियों ने किये हैं हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना कवितावादी कहना।"[3] प्रयोगवादी कवियों की रचना में वस्तुयोजना एवं अभिव्यंजना संबन्धी चमत्कारों के साथ छन्द विधान, शब्द निर्माण, वाक्यगठन, वर्णविन्यास, पंक्ति चयन आदि में नवीनता लाकर परम्परागत नियमों को तोडने की प्रवृत्ति लक्षित होती है। वे अनुभूतिपक्ष की अपेक्षा वस्तु व्यंजना पर अधिक बल देते हैं। अतःनवीन विचित्र प्रयोग, बौद्धिक विवेचन और विश्लेषण, काव्य और गद्य के मौलिक अन्तर मिटाने की प्रवृत्ति, परम्परागत नियमों के निराकरण की प्रतिक्रियावादी वृत्ति, नवीन सौन्दर्यबोध, अहंवाद आदि प्रयोगवादी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्ति रही। सन् 1951 में दूसरा और 59 में तीसरा सप्तक प्रकाशित हुआ। श्री अज्ञेय, मुक्तिबोध, नेमीचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर और रामविलास शर्मा "तारसप्तक" के सात कवि हैं। दूसरे सप्तक में भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर

---

1. आधुनिक हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ. सं. 86 - डा. नामवरसिंह
2. प्रयोगवादी रचनाएँ। निबन्ध" आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
3. दूसरा सप्तक -भूमिका - पृ. सं. 6 अज्ञेय

बहादुरसिंह, नरेशकुमार मेहत्ता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि की रचनायें संकलित हैं। कीर्तिचौधरी, कुंवर नारायण, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह, आदि तीसरे सप्तक के प्रमुख कवि हैं।

सन् 1950 के बाद की कविता के लिए नयी कविता शब्द प्रयुक्त हुआ है। नयी कविता प्रयोगशील कविता से भिन्न नहीं। सन् 1954 में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादकत्व में नयी कविता शीर्षक अर्धवार्षिक संग्रह निकला। इसी दौर में प्रयोगवादी कवियों की रचनाओं में जो प्रयोग को साध्य माननेवाले थे, प्रयोग की प्रवृत्ति कम होती गयी और उसका नाम नयी कविता पड गया। अत: प्रयोगशील कविता का सहज विकास ही नयीकविता है। दोनों का अंतर डा. शंभुनाथ सिंह के शब्दों में -" प्रयोगवाद द्वन्द और प्रतिक्रिया की कविता है किन्तु नयीकविता संश्लेषण और सामंजस्य की कविता है।"[1]

आधुनिक भावबोध, वैयक्तिकता और सामाजिकता का सामंजस्य, अनुभूतियों की अद्वतीयता और प्रामाणिकता, नया सौन्दर्य बोध, बौद्धिकता, प्रतीकात्मक और खण्डित बिम्ब योजना, गद्यात्मक लय आदि नयी कविता की विशेषतायें हैं। आधुनिकता नयी कविता का जीवन है। नये कवियों की दृष्टि में वैयक्तिक चेतना सामाजिक यथार्थ से असंपृक्त नहीं है। नये कवि सामान्य जीवन और परिस्थितियों से सीधा संबन्ध द्वारा अपनी मौलिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति करते हैं। नयी कविता में बिम्बयोजना पूर्वती युगों से बहुत अधिक है यह प्राय: खण्डित है। उनके बिम्ब प्रतीकात्मक भी हैं। नयी कविता में पद्य लय के बदले गद्य लय को प्रधानता है। तीसरे सप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा-"।नयी कविता की।उसकी प्रयोग शीलता को वाद की सीमा तक नहीं ले गयी है - बल्कि ऐसा करने को अनुचित भी मानती रही है।"[2] यहाँ अज्ञेय यह बताते हैं कि प्रयोगवाद कविता को नयी कविता तक पहुँचाने का साधन है। अत: पहले का विकसित रूप है दूसरा।

प्रयोगशील नयी कविता की रचनाओं में प्रवृत्तिगत समानता के बदले वैषम्य अधिक है। लेकिन एक अन्वेषी दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बांधता है। इस काव्यधारा में नये नये आयामों को जन्म मिला। इसके कवि किसी निश्चित दर्शन के वक्ता भी नहीं थे।

---

1. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती - पृ.सं. 132 - डा. शंभुनाथसिंह
2. "तीसरा सप्तक" भूमिका - पृ.सं. 7 अज्ञेय।

प्रयोगशील नयी कविता के प्रवर्तकों में निरालाजी का भी उल्लेख किया जाता है । यह अनुचित नहीं, क्योंकि उनकी 'कुकुरमुत्ता' और "नये पत्ते" की रचनाओं में प्रयोगशील नयी कविता की पृष्ठभूमि तैयार हुई थी ।

निराला काव्य के प्रवृत्तिगत अध्ययन की भूमिका के रूप में हम ने आधुनिक काव्य की उपर्युक्त प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला है । विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों का विस्तृत अध्ययन और उनकी श्रीवृद्धि में निरालाके योगदान का मूल्यांकन अगले अध्यायों में किया जाएगा ।

आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों का पारस्परिक संबन्ध

द्विवेदीयुगीन आदर्शवादी काव्यधारा, छायावादी काव्यधारा प्रगतिवादी काव्यधारा और प्रयोगशील नयी काव्यधारा आधुनिक हिन्दी काव्यक्षेत्र में सन् 1900 के बाद के पांच दशाब्दियों में व्याप्त काव्यधाराएँ हैं । इन काव्यधाराओं के बीच में एक अन्तर्सूत्र वर्तमान है जो इनको आपस में जोडती है । पूर्व छायावाद युग में जिन प्रवृत्तियों का आगमन भारतेन्दु काल में हुआ, द्विवेदीकाल में उनका पल्लवन और विकास हुआ। कदाचित् इन्हीं प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया में छायावाद का उदय हुआ । छायावाद की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्तरछायावाद युग में नयी प्रवृत्तियों का उदय हुआ । अत: आधुनिक हिन्दी कविता के प्रवृत्यात्मक विकास में छायावाद एक प्रकार से केन्द्रबिन्दु है ।

सुधारवादी दृष्टि से परिचालित द्विवेदी युग की राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत आदर्शवादी काव्यधारा में सामाजिकता की प्रमुखता हुई । लेकिन द्विवेदीयुगीन सामाजिकता की प्रतिक्रिया के रूप में छायावादी कविता में वैयक्तिकता की प्रधानता लक्षित हुई । छायावादी युगीन लोकभावना से संपुष्ट वैयक्तिकता की प्रतिक्रिया प्रगतिवाद की सामाजिक चेतना में प्रकट हुई । सामाजिक भावनाओं को मान्यता देने के कारण प्रगतिवाद में सामाजिकता का आलेखन है । प्रयोगवाद ने फिर छायावादी वैयक्तिकता को अपना लिया । छायावादी वैयक्तिकता की भावुकता के स्थान पर प्रयोगवाद की वैयक्तिकता बौद्धिकता प्रधान है । प्रयोगवादी वैयक्तिकता बाद में स्वार्थ प्रेरित, असामाजिक, असंतुलित घोर अहंवाद बन गया । इस प्रयोगशील कविता की चरम परिणिति है नयी कविता जिस में व्यक्ति और समष्टि का समन्वय है ।

लेकिन प्रगतिवाद को भावप्रधान छायावाद बुरा लगा । छायावादी भावुकता के स्थान पर प्रगतिवाद में विचारात्मकता की प्रतिष्ठा हुई। प्रयोगवाद में यद्यपि विचारात्मकता है , भावुकता की मात्रा उसमें अधिक है । प्रगतिवादी चिन्तन मार्क्स के द्वंन्द्वात्मक भौतिकवाद पर आधारित है । यह मार्क्सवादी दर्शन प्रयोगवाद के लिए अनुकूल नहीं था । इसलिए छायावादी भावभूमि के साथ उसने अपना संबन्ध जोडा । छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगशील नयी कविता के जो दर्शन हैं, उनमें पर्याप्त अन्तर है । छायावादी काव्य स्वदेशी दार्शनिक बुनियाद पर अधिष्ठित है और भारतीय संस्कृति के अनुकूल है । प्रगतिवाद का दर्शन मार्क्स का सिद्धान्त है जो एकदम विदेशी है । छायावाद और प्रगतिवाद के दर्शन की तुलना आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में "- मैं मानता हूँ कि मार्क्सवादी दर्शन में कोई ऐसी बात नहीं है जो हमारी नैतिक उन्नति में रुकावट डाले और न हमारे आध्यात्मिक दर्शन में ही कोई ऐसी बात है जो नवीन समाजवादी व्यवस्था के लिए घातक हो "-[1] प्रयोगशील नयी कविता फ्राइड के मनोविज्ञान से प्रभावित है, वह भी विदेशी है ।

द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता प्रधान संस्कृतिकता का उदात्त रूप छायावाद में प्रकट है । इसके विरुद्ध प्रगतिवाद ने एक नयी संस्कृति को जन्म दिया। डा. ललित शुक्ल के शब्दों में-" चिंतन प्रधान प्रगतिवादी रचनाओं में एक नयी संस्कृति जन्म ले रही थी जिसे हम सर्वहारा संस्कृति कह सकते है"।[2] छायावादी कवियों ने द्विवेदीयुगीन स्थूलता के विरुद्ध आवाज़ उठायी और उसे सूक्ष्म चित्रों से रंगीन बनाया । पर प्रगतिवाद फिर एक बार सूक्ष्म का परित्याग कर स्थूलता की ओर प्रयाण किया । वहाँ फिर दैनंदिन जीवन वस्तुएँ, घटनाएँ काव्य के विषय बन गये ।

भारतेन्दु युग में श्रीधर पाठक और मुकुटधर पांडेय द्वारा स्वच्छन्दतावाद का श्रीगणेश हुआ । द्विवेदीयुग में पल्लवित वह धारा छायावाद में उत्कर्ष की चरमसीमा पर पहुँच गयी । उसमें चित्रात्मकता, माधुर्य और अलौकिक अभिव्यंजना का संगम हो गया ।

---

1. आधुनिक साहित्य पृ. सं. 376 - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
2. नया काव्य नया मूल्य पृ.सं. 56 - ललित शुक्ल

द्विवेदीयुगीन कविता में आदर्शात्मकता की प्रमुखता रही । छायावादी युग में गांधीवाद से प्रेरित छायावादी व्यक्तिवाद ने समाज, परम्परा और काव्यगत रूढियों के विरुद्ध विद्रोह किया । द्विवेदीयुगीन आदर्शवाद का विकास भी छायावाद में हुआ । पर प्रगतिवाद की आधार शिला यथार्थवाद है । यथार्थ के प्रति आग्रह प्रयोगशील नयी कविता में भी है । छायावादी आदर्शवाद की प्रतिक्रिया के रूप में प्रगतिवाद में सामाजिक यथार्थ की प्रमुखता रही । पर प्रयोगशील नये कवि वैयक्तिक यथार्थ के आग्रही हैं।

द्विवेदीयुग में परम्परागत प्रकृति वर्णन को पुनर्जीवन मिला । छायावाद में प्रकृति की रमणीयता का अंकन है तो प्रगतिवादी कवि प्रकृति के यथार्थ के चित्रकार हैं। प्रयोगशील नये कवियोंने भी प्रकृति को यथार्थ रूप में ग्रहण किया है । छायावादी भावुकता और कल्पना प्रियता के कारण वे युगीन भावधारा के साथ संगति नहीं जोड सके। इसलिए डा. विश्वनाथ गौड के शब्दों में -" नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण, गरीबी हटाने के लिए मार्क्सवादी विचार, जनता के महत्व की हिमायत, मानव के दुख-दर्द की अनुभूति और समकालीन विचार क्रांति के सामने भावुकता की नींव पर खडा छायावाद का भव्य प्रसाद ढह गया"।[1]

शिल्पपक्ष की ओर देखें तो द्विवेदीयुगीन कविता वर्णनात्मक और अभिधात्मक थी । इस अभिधात्मक अभिव्यक्ति की प्रतिक्रिया छायावादी लाक्षणिक अभिव्यक्ति में प्रकट है । इस युग में भाषा में चित्रात्मकता आ गयी । द्विवेदीयुग में भाषा का परिष्कार और संस्कार हुआ पर उसके विकास के रूप में छायावाद ने भाषा में सौन्दर्य और सौकुमार्य लाने का स्तुत्य कार्य किया । छायावादी गेयता और छन्द लोकप्रिय हैं । मुक्तछन्द का प्रवर्तन इस युग में हुआ । छायावाद के शिल्पमंडन के मोह के बदले प्रगतिवाद ने निरलंकृत काव्य शिल्प को अपनाया । लेकिन छायावादी गीति तत्व को प्रगतिवादी कवियों ने स्वीकार किया । प्रयोगवाद ने अपने पूर्ववर्ती दोनो काव्यधाराओं के विरुद्ध शिल्प पक्ष को अधिक महत्वदिया।वे शिल्पवादी अधिक हैं। डा. विजयदेव नारायण साही के शब्दों में-" प्रयोगशील नयी कविता जिसमें पूर्ववर्ती स्थिति के निषेध के साथ अभिव्यंजना की अपरिचित प्रणालियाँ, कथन की विचित्र एवं

---

1. आयाम की भूमिका - पृ.सं. 3-4 - विश्वनाथ गौड

अप्रचलित भंगिमायें और अयतन प्रभाव को ग्रहण करने तथा नये नये नामों से अपने को अभिव्यक्त करने की प्रवृत्ति हो ।"[1]

निष्कर्ष यह है कि एक काव्यधारा पूर्ववर्ती काल की प्रतिक्रिया, प्रभाव और विरोध के फलस्वरूप जन्म लेती है । इसलिए इन काव्यधाराओं में शैली संबन्धी या सैद्धान्तिक मतभेद अवश्य हैं तो भी उनके अन्तर्वस्तु में साम्य होना कोई अस्वाभाविक कार्य नहीं ।

द्विवेदी युग के मध्य में हिन्दी काव्य जगत में पदार्पण करनेवाले श्री. सूर्यकान्त - त्रिपाठी निराला, द्विवेदीयुग की इतिवृत्तात्मक और अभिधात्मक अभिव्यक्ति को कविता से लेकर छायावाद की लाक्षणिक उदात कविता, प्रगतिशील सामाजिक यथार्थवादी चेतना की कविता और प्रयोगशील कविता, इन सबसे जुडकर बीसवीं शताब्दी के प्रतिनिधि हिन्दी कवि के रूप में आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतिष्ठित हैं । आगे के अध्यायों में आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में निराला काव्य का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा ।

ठ ठ ठ ठ

---

1. नयी कविता अंक 6-7 विजयदेवनारायण साही ।

अध्याय दो

महाकवि निराला

जीवन रेखा

बैसवाडा उत्तर प्रदेश के उन्नाव और रायबरेली जिल्ले के डेढ हज़ार वर्गमील का इलाका है । गढा कोला जिल्ला उन्नाव में बैसवाडे का एक गांव है । इस गांव के एक गरीब ब्राहमण शिवधारी तेवारी के चार पुत्रों में एक थे रामसहाय तेवारी जो बंगाल के देशीराज्य महिषादल में सौ सिपाहियों के ऊपर जमादार थे ।[1] राम सहाय तिवारी के दूसरे विवाह में " संवत् 1955 यानि सन् 1899 फरवरी 21. माघसुदी॥ मंगलवार को महिषादल में श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का जन्म हुआ । पिता ने पंडितों के मतानुसार नाम रखा सूर्जकुमार । ढाई वर्ष की उम्र में माँ रुक्मिणीदेवी का देहान्त हो गया । सूर्जकुमार बचपन में नटखट और कुछ जिद्दी थे, पिता तो कठोर अनुशासन प्रिय । क्रोधी और स्वाभिमानी पिता के फौजी प्रहार के संबन्ध में निरालाजी ने लिखा है -" मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हें भूल जाता था कि दो विवाह के बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं । चार पांच साल के उम्र से अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते पाते सहनशील हो गया था और प्रहार की हद भी मालूम हो गयी थी ।"[2]

महिषादल के स्कूल में 13 सितम्बर 1907 को कक्षा चार में उनको भर्ती कराया गया और बंगाली भाषा में निराला की प्रारंभिक शिक्षा की शुरूआत हुई । उनकी औपचारिक शिक्षा नवीं कक्षा तक थी जिसके संबन्ध में निरालाजी ने लिखा है - "मैं कवि हो चला था फलत: पढने की आवश्यकता न थी, मैं निश्चिन्त इसलिए था, मैं जानता था कि गणित की नीरस कापी को पद्माकर के चुहचुहाते कवितों से मैं ने सरस कर दिया है । फलत: परीक्षा समुद्रतट से लौटते वक्त दूसरे तो रिक्तहस्त लौटे, मैं दो मुट्ठी बालू लेता आया, घर में माता पिता, पत्नी परिजन पुरजन सबकेलिए आवश्यकतानुसार उसका उपयोग किया ।"[3]

---

1. निराला की साहित्य साधना I - पृ सं 443 - डा. रामविलासशर्मा
2. निराला की आत्मकथा - पृ.सं. 26-प्रस्तोता डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित
3. वही पृ.सं. 27 वही

परम्परा के अनुसार छोटी अवस्था में ही उनका विवाह, सन् 1911 में डलमाऊ के रामदयाल दुबे की पुत्री श्रीमती मनोहरादेवी के साथ संपन्न हुआ । मनोहरा के रूपलावण्य और सुरीले कंठ ने सूर्जकुमार को सर्वाधिक प्रभावित किया । मनोहरादेवी के कंठ से 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भावभय दारुणम्' नामक तुलसी के छन्द सुनकर " सूर्जकुमार को न जाने कौन से सोते संस्कार जाग उठे । साहित्य इतना सुन्दर है , संगीत इतना आकर्षक है, उनकी आँखों ने जैसा नया संसार देखा, कानों ने ऐसा संगीत सुना जो मानों इस पृथ्वी पर दूर किसी लोक से आया हो "[1] मनोहरा से सुने तुलसी के ये छन्द निरालाजी आजीवन गाया करते थे । भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि महापुरूष तुलसी को केन्द्र बनाकर प्रबन्धात्मक कविता लिखने की प्रेरणा भी शायद यही छन्द होगा । संगीत का मूल्य जानकर अपनी कविताओं में सांगीतिक तत्वों के निर्वाह के सफल प्रयोग के पीछे भी मनोहरादेवी के शब्द माधुर्य ने काम किया । मनोहरा देवी के हिन्दी ज्ञान और संगीत, बंगाल से पाये निरालाजी के संस्कार को और भी परिमार्जित किया । इसके संबन्ध में निरालाजी ने गीतिका के समर्पण में लिखा है -" जिसकी हिन्दी के प्रकाश से प्रथम परिचय के समय मैं आँखें नहीं मिला सका, लजाकर हिन्दी शिक्षा के संकल्प से कुछ साल बाद देश से विदेश पिता के पास चला गया था और उस हिन्दी हीन प्रान्त में बिना शिक्षक के सरस्वती की प्रतियाँ लेकर पद- साधना की, और हिन्दी सीखी थी, जिसका स्वर गुरुजन परिजन और पुरजनों की सम्मति में मेरे स्वर को परास्त करता था, जिसकी मैत्री की दृष्टि क्षण मात्र में मेरी रूक्षता को देखकर मुस्कुरा देती थी, जिसने अंत में अदृश्य होकर मुझसे पूर्ण परिणीता की तरह मिलकर मेरे जड हृदय को अपने चेतन हाथों से उठाकर दिव्य श्रृंगार की पूर्ति की।"[2] निरालाजी को हिन्दी काव्य संसार के युगपुरूष बनाने का सर्वाधिक श्रेय उनकी जीवन संगिनी मनोहरादेवी को है ।

सन् 1914 में निरालाजी के आत्मज रामकृष्ण और सन् 1917 में पुत्री सरोज का जन्म हुआ । सन् 1917 में ही उनके पिता का देहान्त हुआ । एकाएक कवि पर आफत का पहाड टूट पडा । सन् 1918 में मनोहरादेवी सदा के लिए बिदा ली । यह निरालाजी के जीवन का सबसे बडा धक्का था । इसी साल को इन्फ्लुएन्सा में उनके चेचेरे भाई बदलूप्रसाद और पत्नी चल बसे । इस प्रकार अपने दो संतान तथा चार

---

1. निराला की साहित्य साधना । - पृ.सं. 30 - डा. रामविलास शर्मा
2. गीतिका-समर्पण - निराला

भतीजों के पालन पोषण का दायित्व उन्हें असमय में ही उठाना पडा । इस विपर्यय के संबन्ध में निरालाजी ने लिखा है -" इस समय का अनुभव जीवन का विचित्र अनुभव है। देखते देखते घर साफ हो गया । चार बडके दादा के और दो मेरे, दादा के सबसे बडे लडके की उम्र पन्द्रह साल, मेरी सबसे छोटी लडकी साल भर की । चारों ओर अन्धेरा नज़र आता था !

इसके बाद करीब ढाई साल तक वे महिषादल राजघराने के नौकर रहे । पारिवारिक विपत्तियों ने उन्हें आध्यात्मवाद की ओर मोड़ा । इसी समय श्रीरामकृष्ण परमहंस के शिष्य प्रेमानन्दजी से निरालाजी की मुलाकात महिषादल में हुई । उस समय " स्वामि परहंस ने बंगाल के धार्मिक जीवन में अपनी साधना से एक जबरदस्त क्रांति मचा दी थी । उनके शिष्य विवेकानन्द के वेदान्त ज्ञान से ब्रिटन और अमेरिका चमत्कृत हो उठे थे ।"[2] महावीरपूजा, रामायण पारायण और वेदान्त चर्चा ने निरालाजी की वैराग्य वृत्ति को और भी प्रबल बनाया । डा. शर्माजी के शब्दों में -' सूर्जकुमार को अब स्वप्न में कभी महावीर दिखाई देते, कभी स्वामी प्रेमानन्द, कभी मनोहरादेवी । मनोहरा-देवी साक्षात् सरस्वती के रूप में आती और माथे पर सिन्दूर दिखाकर कहती, महावीर को मैं मस्तक में धारण करती हुं । प्रिया जब सरस्वती बन गयी काम संस्कार भस्म होगये "।[3]

प्रथम विश्वमहायुद्ध की परिसमाप्ति, अंग्रेज़ों के रौलट एक्ट, जालियनवाला हत्याकांड जैसी राजनीतिक परिस्थितियाँ, असहयोग आन्दोलन, रूसीक्रांति के फलस्वरूप जन्मी नयी समाज की संरचना आदि से प्रभावित निरालाजी महिषादल के गाँवों में किसानों और जुलाहों का संगठन करके उन्हें स्वदेशी महत्व समझाने लगे । सन् 1920 के वसन्त में जन्मभूमि पर उन्होंने एक कविता लिखी जो उसी साल की "प्रभा" में प्रकाशित हुई । यहाँ नाम में थोडा परिवर्तन करके वे 'सूर्यकान्त त्रिपाठी" बन गये । बंगाल में रहकर सरस्वती पढकर उस समय तक वे हिन्दी साहित्य संसार से काफी परिचित हो चुके थे ।

अन्य रियासतों के समान महिषादल में जो शोषण नीति कायम थी, निरालाजी उससे घृणा करते थे । राज्य के सुपिरिटेंट के शराब पीने के बारे में उन्होंने शिकायत

---

1. निराला की आत्मकथा-पृ. सं 43
2. निराला की साहित्य साधना । - पृ. सं 35 - डा. रामविलास शर्मा
3. वही पृ. सं 38 वही

की तो राजा ने दोनों से मदन गोपाल के मन्दिर में कसम खाने को कहा । इसपर कवि के आत्माभिमान को धक्का लगा । देश की आज़ादी के साथ व्यक्तिगत आज़ादी के प्रति जागरूक कवि राज्य की नौकरी से इस्तीफा देकर सन् 1921 की गर्मियों में गढाकोला चले गये । सन् 1921 में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से जो उस समय सरस्वती से अवकाश प्राप्त गांव में रहते थे , निराला ने दौलतपूर में जाकर भेंट की। आधुनिक हिन्दी काव्य के उस महान आचार्य के व्यक्तित्व की सादगी और विद्वता का गहरा प्रभाव निरालाजी पर पड़ा । निरालाजी ने लिखा है-" जिस समय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी सरस्वती के संपादक थे, "जुही की कली" सरस्वती में छापने के लिए मैं ने उनकी सेवा में भेज दी थी । उन्होंने वापिस करते हुए पत्र में लिखा- "आप के भाव अच्छे है पर छन्द अच्छा नहीं , छन्द को बदल सकें तो बदल दीजिए।"[1] सन् 1921 में निरालाजी ने अपना परिचय देते हुए द्विवेदीजी को लिखा -" आप हिन्दी संसार के स्वनामधन्य पुरुष हैं । मैं आप को हृदय से पूजता हुँ । यही आपसे मेरा संबन्ध है, मैं कन्याकुब्ज कुलब्राह्मण हुँ । आपका पड़ोसी हुँ । अक्षर हुँ, न साक्षर न निरक्षर । विद्वत् मंडली के सामने मेरा परिचय मूर्खों में है ।"[2]

आर्थिक विपन्नता ने और एक बार निरालाजी को महिषादल की नौकरी में प्रवेश करने के लिए मज़बूर किया । डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में-" आर्थिक विपन्नता ऐसी थी कि उन दिनों रोजी के लिए तकुआ पर सूत कातने या कोरियों से कपड़ा बुनना सीखने तक की पेशकश उन्होंने की"[3]। सन् 1922 में सूर्यकान्त ने "भारत में कृष्णावतार" शीर्षक एक लेख "समन्वय" केलिए लिखा । इसके दार्शनिक विषय और भाषा से प्रभावित समन्वयवालों ने उनको संपादक नियुक्त किया । डा. शर्माजी के शब्दों में " दूसरे और अंतिमबार सन् 1922 की बरसात में महिषादल के राजभवन.... और अनेक बंगाली मित्रों को छोडकर सूर्यकान्त कलकत्ता आ गये "[4]। यहीं उनके जीवन में एक नया मोड उपस्थित हुआ । उनकी कवितायें "समन्वय" में छपने लगे । पर संपादक की जगह उनका नाम नहीं छपता था । "समन्वय" कार्यालय का शंकरघोष लेन में स्थानान्तरण हुआ तो बालकृष्ण प्रेस के सेठ महादेवप्रसाद से निरालाजी का परिचय हुआ ।

---

1. निराला की आत्मकथा-पृ.सं 93 - प्रस्तोता- सूर्यप्रसाद दीक्षित
2. निराला की साहित्य साधना 3-पृ.सं 216-डा. रामविलास शर्मा
3. निराला की साहित्य साधना । पृ.सं 49-डा. रामविलास शर्मा
4. वही पृ.स 53 वही

सन् 1923 में सेठ महादेवप्रसाद के नेतृत्व में "मतवाला" नामक हास्यरस प्रधान साप्ताहिक निकला। बिहार के लेखक शिवपूजन सहाय, सांस्कृतिक जागरण की उमंग में पत्रकार बने महादेवप्रसाद सेठ, बंगलापंडित नवजादिकलाल श्रीवास्तव, जैसे व्यक्तियों के साथ सेठजी के निमंत्रण पर निरालाजी भी मतवाला मंडल के सदस्य बन गये। मिशन के संपर्क से कवि श्री परमहंस और विवेकानन्दजी के अद्वैतवाद की ओर झुके थे। उनकी और तुलसी की विचारधारा की तुलना, रवीन्द्र का कविता पाठ आदि से उनमें विद्रोह की भावना जन्म ले रही थी। लेकिन सेठजी के संपर्क से निरालाजी को परमपदलाभ की कल्पना गिरने लगी। इसी समय अधिवास" नामक कविता का प्रणयन हुआ। " अधिवास" छूटने का अर्थ यह भी था कि सन्यासियों से संबन्ध शिथिल हो गये"[1]। "मतवाला" के अनुप्रास पर कवि ने अपना उपनाम "निराला" रखा। इसके संबन्ध में निरालाजी ने लिखा है – " श्रीमान सेठ को मेरी कविता में तत्व दिखलाई पड़ा। इसपर वेदान्त विषयक नीरस साम्प्रदायिक पत्र का संपादन भार छोड़कर "मतवाला" में आया। इधर कई प्रहार मिलने पर भी मैंने चुपचाप अपमान बरदाश्त कर लिया। असह्य उत्तेजना मिलने पर हमने उत्तर देने का विचार कर लिया। अब सबके प्रतिकूल लिखकर मैं दुखी हुआ हूँ। मेरा कवि सदा निरपराध रहा है। पर दुर्घटनायें मेरे ही साथ हुई।"[2] निरालाजी ने "मतवाला" को हिन्दी पत्रों का मुकुट बनाया। "मतवाला" के पहले अंक में निरालाजी द्वारा लिखित मोटो मुख पृष्ठ पर छपा –

अमित गरल शशि सीकर रविकर राग विराग भरा प्याला।
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह "मतवाला"।

सन् 1923 दिसंबर 22 को "मतवाला" में निरालाजी की युगान्तरकारी कविता "जुही की कली" प्रकाशित हुई। यहाँ उन्होंने पहलीबार अपना पूरा नाम "सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला" रखा। "मतवाला" से निरालाजी का संबन्ध तो पत्र के बन्द होने तक ज़ारी रहा, पर अलमस्तों की उस डेरे में कवि को पारिश्रमिक कम मिलता था, इसलिए विवश होकर उनको "मतवाला" छोड़ना पड़ा।

" मतवाला" से निवृत्त होकर, आर्थिक दृष्टि से विपन्न निरालाजी कुछ समय तक वाराणसी में जयशंकरप्रसाद, शिवपूजन सहाय और विनोदशंकर व्यास के संपर्क में रहे। इसके पहले उनका प्रथम काव्यसंग्रह "अनामिका" प्रकाशित हो चुका था। आर्थिक विपन्नता ने उन्हें गंगा पुस्तकमाला लखनऊ के दुलारेलाल भार्गव के पत्र "सुधा" में

---

1. निराला की साहित्य साधना। पृ.सं 59 – डा. रामविलास शर्मा
2. निराला की आत्मकथा पृ.सं 68

मासिक वेतन वालीस रुपये पर काम करने केलिए विवश किया । "सुधा"के संपादक होकर भी वे गांव में रहकर सामग्री तैयार करते थे । " निरालाजी ने "सुधा" को हिन्दी का श्रेष्ठ साहित्यक सामाजिक पत्र बना दिया । "सुधा " में उन्होंने आमूल सामाजिक क्रांति पर ज़ोर दिया"[1] सन् 1929 में कल्कत्ता के "रंगीला" पत्र के संपादक और अपने शिष्य शिवशेखर द्विवेदी से उन्होंने पुत्री सरोज की शादी पक्की की । अपने कुछ साहित्यक मित्रों को आमंत्रित किया और स्वयं पुरोहित बनकर विवाहसंस्कार पूरा किया । सन् 1929 अगस्त में ही उनका द्वितीय काव्य संग्रह "परिमल" प्रकाशित हुआ । कवि की लेखनी की जादू सबकहीं फैल गयी । डा. शर्माजी के शब्दों में -" गढाकोला से लखनाऊ और लखनऊ से कल्कत्ते तक छायावाद, नये साहित्य की चर्चा में निराला का नाम बराबर आता था "।[2]

उस समय हिन्दी पत्र कुकुरमुत्ते के समान उगते थे । दो चार वर्षों में पत्र की मृत्यु होती थी । हिन्दी साहित्यक और संपादक हवा खाकर जीने के लिए अभ्यस्त थे । इसके संबन्ध में बाद में निरालाजी ने 'सरोजस्मृति' में लिखा-

सोचा है नत हो बार बार
यह हिन्दी का स्नेहोपहार
यह नहीं हार मेरी भास्वर
यह रत्नहार लोकोत्तर वर ।

हिन्दी साहित्यकों में निरालाजी को प्रकाशकों के शोषण का सबसे बडा शिकार बनना पड़ा । क्योंकि आत्माभिमान हनन और स्वाभिमान विक्रय के लिए वे तैयार नहीं थे । इसलिए परणीता मनोहरा के स्वर्गवास के बाद जो दरिद्रता परणीता बनकर उनके जीवन में प्रवेश की, वह आजीवन कवि की संगिनी रही । अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने केलिए इस अवधि में निरालाजी उपन्यास और कहानी लिख रहे थे ।

पुरानी पीढी के साहित्यक जिनके प्रतिनिधि थे बनारसीदास चतुर्वेदी, निरालाजी को नीचा दिखाने में तुले थे । आचार्य शुक्लजी ने "पाखण्ड प्रतिषेध" शीर्षक में निरालाजी केमुक्तछन्द की कटु आलोचना की । उस समय हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के संपादकत्व में निकले पत्र "भारत" निरालाजी का समर्थन किया करते थे । शिवपूजन सहाय के "जागरण" भी छायावाद के समर्थन में

---

1. निराला की साहित्य साधना । पृ.सं 163 डा. रामविलास शर्मा
2. वही वही वही

लगे थे । सन् 1932 के "भारत" में निरालाजी का लेख "वर्तमानधर्म" प्रकाशित हुआ। सामाजिक रूढियों पर प्रहार करनेवाले इस लेख के आलोचक बनारसीदास चतुर्वेदी ने "विशाल भारत" में 'साहित्यक सन्निपात' शीर्षक से इस लेख की कटु आलोचना की । विवाद महीनों तक चलता रहा । सरोज की बीमारी, अर्थाभाव, साहित्यकों और आलोचकों के विरोध से पीडित निरालाजी की उस समय की मनोदशा के संबन्ध में डा. शर्मा ने लिखा है -" सन् 1932 की शरद में जबसे सन्निपात आन्दोलन शुरू हुआ था तब से लगभग छः महीने तक उनके मन की जो दशा थी उसे वही जानते थे "[1]।

"सुधा" का पारिश्रमिक बहुत कम था । इसलिए सरोज को रायबरेली अस्पताल में भर्ती करके निरालाजी कलकत्ता जाकर "रंगीला" का संपादन कार्य भी करने लगे थे । योजनाबद्ध साहित्यक विरोध, पुत्री की बीमारी, आर्थिक विपन्नता और स्वयं अपनी अस्वस्थता की इस अवधि में "अप्सरा," "अलका" नामक दो उपन्यास, कहानियाँ और लेखों का संकलन "प्रबन्ध पद्म" प्रकाशित हुआ । सन् 1935 में पुत्री सरोज भी उचित इलाज़ के अभाव में संसार छोड गयी । यह उनके जीवन का सबसे बडा वज्रापात था । इसके बाद निरालाजी ने गंगा पुस्तकमाला से अपना संबन्ध तोडा । "गीतिका" जो प्रेस में थी वापस ली । चारों ओर निराशा, मृत्यु और वेदना की अमावस्या रही । हृदय में जमे दुख को वे अनजाने में ही कविता में उतारने लगे । यहीं हिन्दी का एकमात्र शोकगीत "सरोजस्मृति" का प्रणयन हुआ । डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में "सीधे - सादे छन्द में, बडी ही समर्थ भाषा में, निराला ने अपना आवेग दृढ सीमाओं में बांध दिया । पीडित, जर्जर, शोकाकुल निराला 'सरोजस्मृति' जैसी कविता लिख सकता है, जीवन की सार्थकता का यह सबसे बडा प्रमाण है "[2]। जीवन के घात-प्रतिघात और उसकी असफलता के संबन्ध में महाकवि ने कहा-

दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज जो नहीं कही ।

सरोज की मृत्यु के बाद निरालाजी जीवन भर स्वतंत्र लेखन करते रहे । "माधुरी" और प्रेमचन्दजी द्वारा संपादित "हंस" में उनकी रचनायें प्रकाशित होने लगी । 'सरोजस्मृति' के बाद 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' नामक प्रबन्धात्मक कविताओं की

---

1. निराला की साहित्य साधना । पृ.सं 163 - डा. रामविलास शर्मा
2. वही पृ.सं 262 वही

सृष्टि उन्होंने की । " राम की शक्तिपूजा के बाद कवि का अन्तर्मुखी व्यक्तित्व दूर हो गया । निराला ने "राम की शक्तिपूजा" से जो ओज बचा था उसे "सम्राट एडवर्ड अष्टम" की कविता में लगा दिया ।"[1]

सन् 1927 से सन् 1942 तक निरालाजी लखनऊ में रहे । उनके शब्दों में -" "बंगाल मेरी जन्मभूमि है । इसलिए बहुत प्रिय है। लेकिन लखनऊ के चौदह साल में मेरा साहित्यिक सर्जन कलकत्ता के "परिमल" से अधिक महत्व रखता है ।"[2] "अनामिका" "कुकुरमुत्ता", "बेला", "नये पत्ते" आदि की रचना इसी अवधि में हुई । सन् 1942 के बाद उन्होंने प्रयाग के दारागंज मुहल्ले को अपना कार्यक्षेत्र बनाया । यहाँ कभी श्री नारायण चतुर्वेदी के यहाँ, कभी भगवतीप्रसाद वाजपेयी के यहाँ और कभी किराये पर मकान लेकर रहने लगे ।

इस समय हिन्दी काव्यसंसार महाकवि की काव्यप्रतिभा से पूरे परिचित हो चुके थे । लेकिन उनके जीवन निर्वाह का कोई स्थायी प्रबन्ध न हो पाया था । निरालाजी का स्वच्छन्दताप्रेमी मन किसी भी व्यवस्था को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था । नन्ददुलारे वाजपेयी, केदारनाथ अग्रवाल, अमृतलाल नागर और डा. रामविलास शर्मा ने लखनऊ में निराला परिषद् बनाने की योजना बनायी । कवि की रचनाओं के स्वतंत्र प्रकाशन की व्यवस्था और इसके द्वारा उनकी आर्थिक विपन्नता दूर करना ही परिषद् का लक्ष्य था । समाचार सुनकर निरालाजी ने केदारनाथ अग्रवाल को लिखा -" मेरे लिए विशेष उद्विग्न न हूजिए। क्योंकि लेखनी मेरे पास है और वह आपकी सभा परिषद् से कम शक्तिशाली नहीं"[3]। पन्द्रह मई 1945 में लिखे. इस पत्र में कवि को अपनी लेखनी पर पूरा विश्वास है ।

निरालाजी तथा अन्य रचनाकारों की रचनाओं के प्रकाशन और आर्थिक सहयोग को लक्ष्य बनाकर श्रीमति महादेवी वर्मा ने प्रयाग में "साहित्यकार संसद" का संगठन किया । सन् 1946 में इस संस्था से "अपरा" निकली । सन् 1935 के बाद की अर्थ विक्षिप्त स्थिति में निरालाजी मानसिक और शारीरिक रूप से नरकवासी बन गये थे । इस समय भी पुस्तक की रायलटी से लेकर बागों की डिकरी तक उनकी चिन्ता का विषय रहा । साले रामधनी द्विवेदी की अस्वस्थता का समाचार सुनकर वे डलमऊ गये । वहाँ स्वजनों की आर्थिक विपन्नता और पत्नी तथा पुत्री की क्रीडा भूमि ने उनकी

---

1. निराला की साहित्य साधना 1-पृ.सं 296- डा. रामविलास शर्मा
2. निराला की साहित्य साधना 3 पृ.सं 398 वही
3. वही पृ.सं 341 वही

स्मृति में प्रबल आघात किया । सन् 1945 में किसी से कहे बिना विवेकानन्द का राजयोग लेकर वे घर से निकले । इसके बाद वे युगमन्दिर, उन्नाव में श्रीमती सुभद्राकुमारी सिन्हा के यहाँ रहने लगे । उनकी विक्षिप्तावस्था साहित्यकों और समाचार पत्रों का विषय बन गया । इस अवस्था के संबन्ध में उनके आत्मज रामकृष्ण-त्रिपाठी ने सन् 16.2.46 में डा. शर्माजी को लिखा-" उनका रहन सहन देखकर मुझे दुख हुआ । निहायत गन्दे कपड़े, कई दिनों में खाना पकाते हैं, रेशन बगैरह के झंझट से सिर्फ साग ही उबालकर खा लेते है । सारा जाडा खतम हो गया, एक चादर तक न ओढी, यूही काट लिया । रास्ते में चाय ली, कुल्हड हाथ में लिए पीते हुए चले जा रहे हैं । उनकी बातें बहतोश में न समझ सकनेवाली होती है । रातभर जागते है , सोचते है , हंसते है "।

इसी अवधि में निकले " बेला" और "नये पत्ते" की रचनाओं में राजनीतिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ व्यंग भी बहुत पैना हो गया था । सन् 1947 को जनुवरी को निरालाजी का अभिनंदन समारोह संपन्न हुआ और महाकवि को मालूम हुआ कि उनका उचित मूल्यांकन और सम्मान हो रहा है । "अपरा" को उत्तरप्रदेश सरकार का पुरस्कार मिला जिसे महाकवि ने मित्र नवजादिकलाल श्रीवास्तव की विधवा को देने केलिए कहा । महादेवीजी ने उन्हें राखी बन्धु भाई बनाकर साहित्यकार संसद भवन में बसाया । लेकिन उनकी कारूणिक व्यवहार से वहाँ के अधिकारी नापसन्द थे । अतः वे संसद भवन छोडकर दारागंज में चित्रकार मित्र कमलाशंकर सिंह के यहाँ रहने लगे ।

बीमारी और आर्थिक विपन्नता के बीच उनकी साहित्यसाधना उत्तरोत्तर बढती रही । "अर्चना", "आराधना," "गीत गुंज" और उनके स्वर्गवास के बाद प्रकाशित "सांध्य-काकली" की कविताओं का सृजन अर्धविक्षिप्तावस्था में हुआ । सन् 1960 में राष्ट्रभाषा विद्यालय, काशी में उनकी जयन्ती मनायी गयी । दिल्ली में महाकवि का जन्मदिवस समारोह मनाया गया । सन् 1960 के बाद वे जलोदर या किसी न किसी बीमारी से लगातार अस्वस्थ रहे । उनके अंतिम दिन डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में -" अनेक बार मलेरिया से पीडित, हप्तों उपवास करनेवाला वह शरीर लाठी,

---

1. निरालाकी साहित्य साधना 3-पृ.सं 407 - डा. रामविलास शर्मा

ईंट, घूसों के आघात सह चुकनेवाले, राम सहाय त्रिपाठी का दिया हुआ बैसवाडे के किसान का वह मज़बूत दांवा जल्दी टूटनेवाला न था, मृत्यु से जूझती हुई उनकी अदम्य प्राणशक्ति दूसरे के मन पर यही प्रभाव डालती थी कि विजय की मंजिल पास है। राम का वह दूसरा मन जो कभी न थका था, जो कभी न हारा था, मृत्यु को देख रहा था"[1]।

हिन्दी का वह अपराजेय कवि जो अपने साहित्य और वैयक्तिक-जीवन में अपराजेय रहा, 15 अक्तूबर 1961 में मृत्यु की गोद में सो गया।

--

व्यक्तित्व विश्लेषण:

किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में परिवेश याने देश, काल, वातावरण का महत्व अवश्य होता है। परिवेश व्यक्तित्व का दांवा बनाता है। यह व्यक्तित्व व्यक्ति की निजी संपत्ति है, उसी व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति साहित्य में होती है। अत: कवि का अपना व्यक्तित्व और सृजनात्मक व्यक्तित्व भिन्न नहीं। निरालाजी के संबन्ध में कहें तो- "वास्तव में निराला का साहित्य और व्यक्तित्व दोनों अभिन्न है। उनके व्यक्तित्व की प्रामाणिकता उनका साहित्य है। साहित्य और व्यक्तित्व दोनों में वे क्रांतिकारी और विद्रोही रहे।"[2]

माता के असामयिक निधन और पिता के कठोर अनुशासन ने निरालाजी को बचपन में ही विद्रोही बनाया। बचपन में खाने पीने का बन्धन तक उन्हें पसन्द नहीं था। आठ वर्ष की उम्र में ही उन्होंने जातीय बन्धन तोडकर गढाकोला के वेश्यापुत्र के साथ भोजन किया यह घटना निरालाजी के शब्दों में -" जनेऊ के बाद दो दिन पतुरिया के घर न गया। तीसरे या चौथे दिन पं.फतहबहादुर दुबे कुएँ पर नहाने का डोल कर रहे थे, एकाएक मैं पहुँचा, मुझे देखकर पास पहुँचकर वह मुस्किराए। मेरे दिल में जैसे तीर चुभा... मैं ने पास पहुँचकर कहा ..." भैया पानी पिला दीजिए"। डोल से लोटे में पानी लेकर मुझे पिलाने लगे। पिलाते वक्त उन्हें गर्व का अनुभव हो रहा था। मुझे भी खुशी थी जैसे कोई किला तोडा हो, उन्होंने गाँव के अन्य लोगों

---

1. निराला की साहित्य साधना।-पृ.सं 413 - डा. रामविलास शर्मा
2. परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियाएँ - पृ.सं 96 - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।

को देखकर अपने ब्राह्मणत्व का गर्व किया था, मैं ने अपनी प्रतिज्ञा रक्षा का ।"[1] अंत में अनुशासन प्रिय पिता को स्वयं पराजय स्वीकार करना पडा । डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में -"जाति-बिरादरी की मर्यादा के लिए वह अपने प्यारे पुत्र को फिर ठुकराई करें, यह संभव न था ।"[2] निरालाजी के बचपन की इसप्रकार की अनेक घटनाएँ हैं जिनमें उनके विद्रोही व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । साहित्यक एवं सामाजिक रूढियों के बन्धन से मुक्ति का विद्रोही स्वर उनके काव्य में आद्यन्त मौजूद है ।

मातृहीनता, एकाकीपन और कठोर अनुशासन ने निरालाजी को बचपन में ही अन्तर्मुखी, चिन्तनशील, संघर्षशील, निर्भीक, कष्ट सहिष्णु और विद्रोही बनाया । बैसवाडे के किसान परम्परा से ही लडाका, उद्धत और आत्माभिमानी हैं । कविता और कुश्ती के शौकीन वे जीवन भर प्रकृति से संघर्ष करते हैं । डा. जयनाथ नलिन के शब्दों में-" पुरखों की जन्मभूमि और पारिवारिक परिस्थिति से ग्रामजीवन की सादगी ईमान्दारी, श्रम साधना, सबलता और पुष्ट देह तो निराला ने पायी थी । उद्धतपन, स्वाभिमान, धीरता, कष्टसहिष्णुता और तीखे तप्त स्वभाव के संस्कार भी पाये ।"[3] निरालाजी ने स्वयं अपना परिचय दिया है -" कन्याकुब्ज ब्राह्मण, डाक खाना बमियानी, मौजा गढाकोला, जिल्ला उन्नाव का कटीली बाशिंदा । मेरा नहीं मेरे पिताजी का, बल्कि उनके भी पूर्वजों का वहीं पुश्तैनी मकान है । मेरा उपनाम "निराला", "मतवाला" के अनुप्रास पर आया था । उम्र 45 वर्ष, शरीर पांच फीट, साढे चार लम्बा, छाती 39इंच चौडी, हृष्टपुष्टांग न तो स्थूल काय ।"[4]

पिता के फौजी संस्कार ने निरालाजी को जीवन में ही नहीं साहित्य में भी साहसी और निर्भीक बनाया । बरसात के रात में वे तैरकर सोन नदी पार करते थे । रातों रात श्मशान सेवा उन्हें प्रिय थी । अर्धरात्री में महिषादल के श्मशान में बैठते समय उन्हें जुही की सुगन्धी महसूस हुई । स्वयं "मलयानिल" और अंगिनी मनोहरादेवी की कल्पना "जुही की की कली" में करके उन्होंने काव्य देवी की पूजा आरंभ की । निराला की निर्भीकता से मिली सुगन्ध हिन्दी की युगान्तरकारी रचना "जुही की कली" के लिए प्रेरिका बन गयी । "सरोजस्मृति" जैसी रचना हिन्दी में निरालाजी ही लिख सकते थे । बंगाल के नवोत्थान ने उन्हें स्वाधीन चेता बनाया । वे स्वधीनता और निर्भिकता को परस्पर पूरक मानते हैं -

---

1. निराला की आत्मकथा - पृ.सं. 7-प्रस्तोता - डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित
2. निराला की साहित्य साधना । - पृ.सं. 21 -डा. रामविलास शर्मा ।
3. काव्यपुरुष निराला - पृ.सं. 3-डा. जयनाथ नलिन
4. निराला की आत्मकथा - पृ.सं. -3-प्रस्तोता-सूर्यप्रसाद दीक्षित ।

समझा मैं
भय ही व्यवस्था का जनक है
निर्भय अपने को
और दुर्बल समाज को
करके दिखाना है ।
"स्वाधीनता" का ही
एक और अर्थ "निर्भय" है ।[1]

बंगाल के नवजागरण की क्रोड में जन्मे निरालाजी का धार्मिक संस्कार बैसवाडियों का था । महावीर की पूजा, हनुमान चालीसा और रामचरित मानस का पारायण उन सिपाहियों का दैनंदिन कार्यक्रम था । श्रीराम, उनके भक्त हनुमान और तुलसी निरालाजी के जीवन में छा गये थे । तुलसीदास पर लिखी प्रबन्धात्मक कविता का मूल स्रोत भी दूसरा नहीं । "पंचवटी प्रसंग" नामक गीतनाट्य भी "मानस" की कथा के प्रभाव से जन्मी है । बैसवाडे की धार्मिक संस्कार से बनी बुनियाद में भव्य भवन खडा करने में सहायक बने विवेकानन्दजी के शिष्य स्वामि प्रेमानन्द महाराज । विवेकानन्दजी के व्यावहारिक वेदान्त और परमहंसजी की कर्मभक्ति से निरालाजी पहले ही आकृष्ट थे । स्वामि प्रेमानन्द को वे महावीर का अवतार मानते थे । निरालाजी की कविताओं में जो दर्शन है उसका मूलस्रोत बंगाल से मिली यह संस्कृति है । बंगाल की संस्कृति के प्रभाव स्वरूप निरालाजी के काव्य में कई जगह देवि दुर्गा की पूजा का उल्लेख है । निरालाजी का राम शक्ति की मौलिक कल्पना करता है और बंगाल की प्रथा के अनुसार 108 इन्दीवर से शक्ति की पूजा करता है । "पंचवटी प्रसंग" का लक्ष्मण भी उस शक्तिरूपिणी दुर्गा का उपासक है -

सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती हैं -
आदि शक्तिरूपिणी,
शक्ति से, जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है -
माता हैं मेरी वे ।

---

1. असंकलित कविताएँ - पृ. सं. 44

निरालाजी ने एकबार अपना परिचय देते हुए महावीरप्रसाद द्विवेदी को लिखा - "अक्षर हूँ, न साक्षर न निरक्षर। सगा यानि माता-पिता, भाई-बहन, चाचा-चाची, स्त्री संसार में कोई नहीं। जीवन का लक्ष्य निरे बाल्यकाल से है परमपदलाभ"[1]। "परमपदलाभ" की यह कल्पना निरालाजी को बंगाल की संस्कृति से मिली थी।

निरालाजी आत्माभिमानी थे। खुशामद और चापलूसी उन्हें पसन्द नहीं थी। एक बार ओच्छा नरेश को उन्होंने अपना परिचय दिया - "हम वह हैं जिनके बाप-दादों के बाप-दादा की पालकी तुम्हारे बापदादों के बाप-दादा उठाया करते थे"[2]। महाराज छत्रसाल ने कवि भूषण को पालकी उठायी थी। यह कहकर निरालाजी स्वयं साबित करना चाहते थे कि साहित्यकार राजा-महाराजा से बड़ा है। कवि सम्मेलनों में हमेशा अध्यक्ष के पद पर राजा-महाराजा आसीन थे। इसके प्रति अपना विरोध कवि ने व्यंग्यात्मक ढंग से प्रकट किया -

मैं भी होता
यदि राजपुत्र- मैं क्यों न सदा कलंक धोता
ये होते- जितने विद्याधर मेरे अनुचर
सम्मिलित कंठ से गाते मेरी कीर्ति अमर
इतना भी नहो, लक्ष्मपति का भी यदि कुमार
देश की नीति के मेरे पिता परमपंडित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें हो सुनिर्धार
पैसे में दस राष्ट्रीयगीत रचकर उनपर
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ-मर्दन स्वर
हिन्दी सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो डगमग
मैं पाता खबर तार से त्वरित समुद्र पार, - वनबेला[3]

---

1. निराला की साहित्यसाधना 3 पृ.सं. 216 डा. रामविलासशर्मा
2. वही पृ.सं. 3 वही

संघर्षों में पडे मनुष्य का व्यक्तित्व विभिन्न दिशाओं में मोड लेता है और संघर्ष उस व्यक्तित्व को दृढता प्रदान करता है । निरालाजी का जीवन संघर्षों पर पनपा । रूढियों की भूमि पर रूढियों को तोडनेवाली क्रांति और नव निर्माण में उनके व्यक्तित्व का दांवा बना । पुत्र और पुत्री की शादी में उन्होंने सामाजिक रूढियों के विरुद्ध संघर्ष किया । यहाँ उनकी व्यक्तिगत पीड़ा सामाजिकता का स्पर्श करती है । डा. प्रेमशंकर के शब्दों में- " सरोज स्मृति एक ओर निराला की अपूरणीय वैयक्तिक स्थिति है , पर साथ ही उन सामाजिक विषमताओं पर प्रहार भी, जिनमें कि यशस्वी कवि अपनी बेटी को खो देता है । यहाँ निराला अपनी बेटी के कारुणिक निधन के माध्यम से विषमता भरे समाज पर आक्रामक मुद्रा में प्रहार करते हैं। कन्याकुब्ज कुल ब्राह्मण के सम्बन्ध में कवि का विचार है -

सोचा मन में हत बार बार
ये कन्याकुब्ज कुल-कुलांगार ।
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके घर कन्या अर्थ खेद
इस विषय बेलि में विष ही फल
यह दग्ध मरूस्थल नहीं सुजल"

जाति बिरादरी की रीतियाँ बताते हुए निरालाजी ने स्पष्ट किया है कि "ऐसे शिव से गिरिजा विवाह" की उन्हें चाह नहीं है । पुत्र रामकृष्ण की शादी के अवसर पर भी कवि की आर्थिक विपन्नता ज़ोरों पर थी । इस विवाह के सम्बन्ध में निरालाजी ने लिखा है -" दहेज के आभास से लड़की के लिए योग्य वर न मिल रहा था । मैं ने दहेज छोडकर विवाह स्वीकार कर लिया । मुझे लडके के लिए कई हज़ार का दहेज अन्यत्र मिल रहा था ।"[2] निरालाजी को छोडकर दूसरा कन्याकुब्ज ब्राह्मण ऐसा थोडा ही कर सकते थे । डा. नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में -" ये दोनों पारिवारिक घटनाओं के समानान्तर रूप निरालाजी के साहित्यक व्यक्तित्व में देखे गये थे । "परिमल" का मुक्तक काव्य यदि सरोज की विवाह स्थिति का प्रतीक था तो "गीतिका" के गीत रामकृष्ण के वैवाहिक परिवेश के प्रतिरूप थे "।[3]

---

1. हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य पृ.सं. 250-251 - डा. प्रेमशंकर
2. निराला के पत्र - पत्र सं. 34. 16.6.1938 - संकलनकर्ता जानकीवल्लभ शास्त्री ।
3. कवि निराला पृ सं. 9 डा. नन्ददुलारे वाजपेयी ।

"उद्बोधन" नामक कविता में कवि बाधा, बन्धन और प्राचीनता को तोडने का आह्वान देते हैं-

गरज गरज घन अन्धकार में गा अपने संगीत
बन्धु वे बाधा-बन्ध-विहीन,
आँखों में नव-जीवन को तू अंजन लगा पुनीत
बिखर जाने दो प्राचीन ।

जाति बिरादरी और अन्य सामाजिक मान्यताओं को तोडकर स्वयं अपनी पुत्री के विवाह में पुरोहित बने कवि ने सन् 1958 में पौत्री छाया को लिखा-" किताबें लेकर हिन्दी पका लो । हमारा हिसाब तुम्हारी समझ में नहीं आएगा । वहाँ से गांव तक मिले खाते रहना। जाति, वर, घर आदि के निश्चय के बिना तुम्हारे विवाह को ठान नहीं ठान सकता । इतर विवाह हमको धोखे जान पडते हैं । तुम्हारे घर में बूढी-बूढे हैं उनकी सेवा कौन करेगा"।[1] कवि के विद्रोहात्मक व्यक्तित्व को झलक बुढापे में भी कम नहीं हुई ।

निरालाजी अच्छे गृहस्थ थे । लेकिन उनके फक्कडपन ने उनके गृहस्थ रूप को छिपाया । घर के हर एक सदस्य की चिन्ता उन्हें थी । घर के अनाज संकलन से लेकर विवाह, गौना सभी पर उनका ध्यान जाता था । उन्होंने आत्मज रामकृष्ण त्रिपाठी को लिखा -" आज 175 । एक सौ पचहत्तर। रुपये मनिआर्डर से भेजे । आशा है पत्र के साथ रथयात्रा से पहले ही मिल जाएँगे । अधिक रुपयों की अब गुंजाइश नहीं । केशव और सुखरानी बहिन का छोटा लडका इन्दमाऊवाला आये थे । विवाह साधारण रूप से करने केलिए उनसे कहा है । हम अपना हिसाब साल भर बाद देंगे । यह कह देना ।"[2] निरालाजी बाहरी दुनिया में विराट तो थे लेकिन मनोहरादेवी को माँ के सामने छाया चाहनेवाला बच्चा था । अपने तथा पत्नी के घरवालों से उनका अच्छा आत्मीय संबन्ध रहा ।

बंगाल में रहकर निरालाजी को ऐसा बोध हुआ कि वे और हिन्दी महान है, पर दोनों उपेक्षित हैं । साहित्यक एवं वैयक्तिक जीवन की दुर्घटनाओं और अवहेलनाओं ने उनको सब कुछ सहने का धैर्य दिया । उन्होंने अपनी भावना को सिंचित कर सफलता की लता पैदा की जो भावि पीढी की संपदा बन गयी । निरालाजी के शब्दों में -

---

1. निराला की साहित्य साधना 3 पृ.सं. 389 डा. रामविलासशर्मा
2. वही पृ.सं. 375 वही

खेत में पड भाव को जड गड गयो ,
धीर ने दुख नीर से सींचा सदा
सफलता को थी लता आशामयी
झूलते थे फूल- भावि संपदा[1] -

कवि ने अपने मन में जो समझा, लिख कर काव्यदेवता को समर्पित किया । बदले में कुछ पाने को इच्छा उनको नहीं थी । वे ख्याति के प्रति हमेशा विमुख रहे -

हुआ जो काव्य का सिंचन
नहीं है भूख षड्रस को ।
बढा कवि इयोट से देकर
तुम्हीं को दूध को लस को[2] ।

निरालाजी हमेशा देना ही जानते थे लेना नहीं ।

निरालाजी के व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी लगनेवाले तत्व मिलते है । डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में -" अपने बडप्पन के भाव के साथ होनता को भावना, आत्मग्लानि का भाव भी उनमें जुडा हुआ था ।[3]" महिषादल के बैसवाडियों के बीच निरालाजी का सम्मान था । साथ ही उनका व्यक्तित्व डा. जगनाथ नलिन के शब्दों में -" प्राचीन आर्य योद्धाओं के गवीले रूपाकार को जो कल्पना उनके बल विक्रम, साहस पौरुष के आधार पर हम करते है, बहुत कुछ वही दैहिक रूप निराला का था .... यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व को दृष्टि से हिन्दी में उनको तुलना में कोई नहीं आता ।[4]" इसी कारण उनमें बडप्पन को भावना थी । लेकिन मनोहरा देवी में जो घर को इकलौती बेटी थी, आत्म सम्मान को कमी नहीं थी । मनोहरादेवी के आत्मसमान को भावना के सामने, उनके हिन्दी ज्ञान के सामने, उनके सुरीले कंठ के सामने निरालाजी को आत्मग्लानि का अनुभव हुआ । इस आत्मग्लानि ने उनको बाद में हिन्दी का महान कवि बना दिया । इसको सूचना उन्होंने "गीतिका" के समर्पण में दी है । बंगाल को संस्कृति में अच्छाई के साथ तंत्र, मंत्र, उच्चाटन, वशीकरण को भरमार थी । अपने धार्मिक संस्कारों को विरोधिनी यह अन्धविश्वास भी अनजाने ही निरालाजी में शामिल हो गयी । बंगाल का वैभवशाली वातावरण, पद्माकर को रचनाएँ और शस्य श्यामला प्रकृति ने उनको भोगी बनाया,

---

1. आध्यात्मफल । 2. सांध्यकाकली-गीत - 55
3. निराला को साहित्य साधना -3 पृ.सं.216 डा. रामविलासशर्मा
4. काव्यपुरुष निराला पृ.सं.17 जगनाथ नलिन ।

साथ ही "परमफलाभ" को उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य माना। भोगी और योगी की परस्पर विरोधी चारित्रिक विशेषतायें निरालाजी में वर्तमान थी। निराला के आत्माभिमान को लोगों ने अहंकार की संज्ञा दी थी। उनका अपना अन्तःकरण भी मन की इस वृत्ति को अहंकार मानते थे। साथ ही वे विनम्रता और स्पर्धाहीनता के प्रतीक थे।

निरालाजी का काव्य भी परस्पर विरोधी वृत्तियों का समाहार है। उनकी "जुही की कली" से हिन्दी काव्य संसार में वसन्त का आगमन हुआ। काव्य आभिजात्य के वक्ता के रूप में हिन्दी काव्य क्षेत्र में प्रवेश करके उन्होंने आभिजात्य के स्थान पर सामान्य की प्रतिष्ठा की क्रांति मचायी। छायावादी काव्यधारा की अभिवृद्धि में योग देने वाले कवि ने प्रगतिवाद और प्रयोगशील नयी कविता का पथ प्रशस्त किया। "जुही की कली" जैसी मुग्धा नायिका के स्थानपर अपनी क्षमता पर गर्व करनेवाली कुकुरमुत्ता की प्रतिष्ठा निरालाजी ही कर सकते थे। विरोधों का यह सामंजस्य उनकी भाषा में भी वर्तमान है। "राम की शक्तिपूजा" के बाद "कुकुरमुत्ता" का प्रणयन हुआ था। कथ्य के समान इनकी भाषा भी परस्पर विरोधी है।

हिन्दी काव्य में जातिवाद और सांप्रदायवाद के खिलाफ आवाज़ उठानेवाले कवियों में निरालाजी की समता करनेवाला कोई दूसरा कवि नहीं। जातिसंकीर्णता और छुआछूत के जंजीर में जकडे गढाकोला में पलकर भी उन्होंने समाज की पर्वाह किये बिना बचपन में ही इसका उल्लंखन किया। चतुरी चमार के लडके को शिष्य बनाना, सुकुल की शादी मुसलमान लडकी से करा देना आदि उनकी सामाजिक क्रांति के उदाहरण हैं। इनका उल्लेख "चतुरी चमार" और "सुकुल की बीवी" में है। सन् 1926 के कलकत्ता के सांप्रदायिक दंगे के संबन्ध में उन्होंने समन्वय में "साहित्य की समतलभूमि" नामक लेख लिखकर स्पष्ट किया कि दोनों धर्म समान हैं। निरालाजी के शब्दों में -" इस लेख में हम यह दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि साहित्य की समतल भूमि कैसी है और रीति रिवाज़ों में हिन्दुओं से संपूर्णतः पृथक मुसलमान जाति भी साहित्य और ज्ञान की भूमि में हिन्दुओं के समान ही है।" निरालाजी की मित्रता मनुष्य मात्र के प्रति थी। उसमें जातीयता या सांप्रदायिकता का स्थान नहीं था।

---

1. निराला ग्रंथावली 1 - पृ. सं. 472 - निराला

निरालाजी का काव्य भी जातिवाद और सांप्रदायिकता के परे था। अपने काव्य में उन्होंने हिन्दू-मुसलमान संस्कृतियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। "कुकुरमुत्ता" में उन्होंने मुसलमान नवाबजादी बहार और हिन्दू मालिन की लड़की "गोली में" मैत्री स्थापित करके निम्न उच्चवर्ग तथा सांप्रदायिकता की खाई को एक साथ मिटाने की कोशिश की है। सन् 1939 में लिखी कविता "प्रेमसंगीत" में जाति का विरोध करते हुए ब्राह्मण के लड़के की कहारिन की लड़की से प्यार की संकल्पना की है -

ब्राह्मण का लड़का मैं
उसको प्यार करता हूँ
जात की कहारिन वह
मेरे घर की पनहारिन वह।

इसी प्रकार "नये पत्ते" की "गर्म पकौड़ी" में ब्राह्मण की अभिजात्य भावना के विरुद्ध आवाज उठाई है। निरालाजी जानते थे -" भारतीय समाज एक ऐसे दौर से गुजर रहा है, जब न केवल इन सभी वर्णों के बीच की कठोर दीवार का टूटना अनिवार्य है, बल्कि निम्न वर्ग के लोगों का उत्थान भी जरूरी है।"[1] ब्राह्मण होकर भी उन्होंने जीवन में और काव्य में अपने कुलरीतियों की भर्त्सना की।

निरालाजी के व्यक्तित्व और कृतित्व की और एक सामानता है, दुखियों के प्रति सहानुभूति एवं करुणा। उनकी दानशीलता एंव उदारता के संबन्ध में बहुत सी घटनायें हैं। कवि के शब्दों में -

देखा दुखी एक निज भाई
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आयी। (अधिवास)

x x x

मैं लख न सका वे दृग विपिन्न
अपने आँसुओं अत: बिम्बित
देखे हैं अपने ही मुख-चित्त

---

1. भाषा त्रैमासिक जून 1991 - पृ.सं. 22 - शिवनाथ पांडेय।

निरालाजी जीवन पर्यन्त दुख और दरिद्रता में व्यतीत करके अपनी कमाई का एक अंश दूसरों को बांटनेवाले थे । ऐसा व्यक्ति दुनिया में दूसरा नहीं होगा । करुणा की यह धारा उनकी कृतियों में प्रवाहित है ।

सन् 1935 से 46 की अवधि छायावाद का क्षीणकाल है । इसी अवधि में निरालाजी के वैयक्तिक जीवन में कई दुर्घटनायें हुईं । आत्मजा सरोज, प्रेमचन्दजी, प्रसादजी, नवजादिकलाल श्रीवास्तव, साले रामधनी द्विवेदी, पुत्रवधु फूलदुलारी सब इस अवधि में चल बसे । निरालाजी स्वयं अस्वस्थ रहे, उनकी मानसिक स्थिति कुछ डवांडोल थी । इसी अवधि में उनके काव्यबोध में कुछ परिवर्तन आ गया । डा. रामविलासशर्मा के शब्दों में -"उनके नवीन काव्यबोध का विकास उनके तीव्र आत्मसंघर्ष का परिणाम था । यह आत्मसंघर्ष उनके जीवन की बहुत विषम परिस्थितियों में चल रहा था । जितना ही यथार्थ की कटुता और दुख की गहराई प्रत्यक्ष होती थी उतना ही रूमानी कल्पनाएँ निस्सार प्रतीत होती थी"[1]। इस अवधि में "सरोजस्मृति" "राम की शक्तिपूजा" और "तुलसीदास" का प्रणयन हुआ । इन तीनों रचनाओं में आत्म साक्षात्कार की प्रमुखता है । डा. दूधनाथसिंह के शब्दों में -"निराला ने राम के संशय, उनकी छिन्नता, उनके संघर्ष और अन्ततः उनके द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना और साधना तथा अंतिम विजय में अपने ही रचनात्मक जीवन और व्यक्तिगतता के संशय, अपनी ही रचनाओं के निरन्तर विरोध से उत्पन्न आंतरिक छिन्नता, फिर अपने संघर्ष, अपनी प्रतिभा को अभ्यास, अध्ययन और कल्पनाऊर्जा द्वारा एक नयी शक्ति के रूप में उपलब्ध और प्रदर्शित करके अन्ततः रचनात्मकता की विजय का घोष ही इस कविता में व्यक्त किया है"[2] ।

निरालाजी की काव्यप्रतिभा और उनका व्यक्तित्व दोनों अपराजेय रहे । उनका व्यक्तित्व तो दुर्गम "पर्वत" के समान है । राम के समान निरालाजी का मन भी क्षत विक्षत था । कवि की अदम्य साहस एवं जीवनाभिलाषा का परिणाम है उनकी कविता । लेकिन सन् 1935 के बाद अपनी इस आशावादिता को बनाये रखने में वे असमर्थ रहे ।

"अभी न होगा मेरा अन्त
अभी अभी ही तो आया है
मेरे जीवन में मृदुलवसन्त [3]

की परिणिति के रूप में उन्होंने गाया -

---

1. निराला की साहित्यसाधना 3 पृ.सं. 47
2. निराला आत्महन्ता आस्था पृ.सं. 147 - डा. दूधनाथसिंह
3. ध्वनि - परिमल

होगया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार [1]

उनका आत्मसंघर्ष आक्रोश के रूप में फूट पड़ा । समाज को उन्होंने हास्यात्मक ढंग से देखा -

समाज के बड़े बड़े आदमी हैं
एक से है एक मूर्ख
उनको फंसाना है
ऐसा कोई साला एक धेला नहीं देने का [2] ।

निरालाजी की अंतिम रचनाओं में भी संतुलन एवं व्याप्ति है, करुणा एवं आक्रोश है, वहाँ भी वे जीवन से विच्छिन्न नहीं । डा. दूधनाथ सिंह का कथन अक्षरश: सत्य है-"निराला की रचनात्मकता का श्रेष्ठतम प्रतिफलन" अपने निजत्व को समोपम पहियान की अभिव्यक्ति में हुआ है । "[3]

निरालाजी के काव्य और उनके व्यक्तित्व को अभिन्न मानते हुए डा. रामरतन भटनागर ने लिखा -" पता नहीं निराला के व्यक्ति को काव्य ने गढा या काव्य को उनके व्यक्तित्व ने । परन्तु ऐसा सुसंपन्न, विराट, कोमल, कठोर, सहज संवेदित व्यक्तित्व ही काव्य में शताब्दियों तक सुरक्षित रह सकता है । अनागत पीढियों के लिए उनका काव्य ही उनका व्यक्तित्व रहेगा ।"[4]

निष्कर्षत: हम कह सकते हैं कि निरालाजी का कृतित्व आद्यांत उनके व्यक्तित्व का प्रतिफलन है । उनके व्यक्तित्व की सबसे बडी उपलब्धि है कि उनकी निजी क्षण पाठकों का क्षण बन गया है । उनका सुखदुख हिन्दी काव्य संसार का सुखदुख बन गया है । निरालाजी हिन्दी काव्य में वैयक्तिक जीवन और काव्य के अन्तर को समाप्त करनेवाले कवि है ।

काव्य-कृति - परिचय

प्रकाशन क्रम के आधार पर निरालाजी के काव्य संकलन नीचे दिये जाते हैं जिनकी संख्या कुलमिलाकर चौदह है -

अनामिका । । 1923। परिमल ।1929। गीतिका ।1936। अनामिका । 1938 ।,

---

1. अनामिका पृ.सं. 86 2. नये पत्ते पृ.सं. 26
3. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ.सं. 49 - डा. दूधनाथसिंह ।
4. निराला नवमूल्यांकन - पृ.सं. 29 - डा. रामरतन भटनागर ।

तुलसीदास ।।939।, कुकुरमुत्ता ।।942।, अणिमा । ।943 ।, बेला, नये पत्ते ।।946।
अर्चना ।।950 ।, आराधना । ।953।, गीतगुंज । ।954 ।, साध्य काकली ।।969।,
असंकलित कवितायें । ।98। ।

इनमें प्रथम काव्य संकलन "अनामिका" में कुल मिलाकर नौ कवितायें -आध्यात्म फल, माया, जलद, अधिवास, तुम और मैं, जुही की कली, पंचवटी प्रसंग, सच्चा प्यार, और लज्जित को छोडकर शेष कवितायें "परिमल" में संकलित है ।

"परिमल", "गीतिका", "अनामिका " और "तुलसीदास" में निरालाजी के काव्य जीवन के प्रथम वरण की कवितायें संकलित हैं । सन् ।939 से सन् ।949 तक के उनके काव्य जीवन के दूसरे वरण की कवितायें, "अणिमा", "कुकुरमुत्ता," "बेला" और "नये पत्ते" में संकलित हैं । सन् ।950 के प्रारंभ से सन् ।96। अक्तूबर तक का समय उनके काव्य जीवन का तीसरा वरण है । "अर्चना," "आराधना," "गीतगुंज " और "साध्यकाकली" इस वरण में रचित कविताओं का संकलन है । "असंकलित कवितायें" महाकवि का अंतिम संकलन है जिसका प्रकाशन सन् ।98। में हुआ था । निरालाजी के स्वर्गवास के बारह वर्ष बाद उनकी अधिकांश रचनायें " निराला ग्रंथावली" नाम के तीन खण्डों में प्रकाशित हुआ । सन् ।983 में उनका संपूर्ण साहित्य " निराला रचनावली" नाम से आठ भागों में निकला है ।

परिमल

"परिमल" की अधिकांश कवितायें निरालाजी के " समन्वय" और "मतवाला" संपादन काल की हैं । "जुही की कली " परिमल की प्रथम कविता है । गतानुगातिका के प्रति निरालाजी के विद्रोह का श्रीगणेश इस कविता द्वारा हुआ । इसके संबन्ध में निरालाजी ने लिखा-" एक दिन वह भी था जब हिन्दी संसार एक तरफ और मैं अपने अमित्र महाशय के साथ एक तरफ था । अब तो उस तरह की शैली में बहुत कुछ दूसरों को भी सफलता मिली है ।"[1] "परिमल" की भूमिका में निरालाजी ने लिखा -" इस युग के कुछ प्रतिभाशाली साहित्यिक प्राचीन गुरुडम के एकछत्र साम्राज्य में बगावत के लिए शासन दण्ड ही पा रहे है , अभी उन्हें साहित्य के राजपथ पर साधिकार स्वतंत्र रूप से चलने का सौभाग्य नहीं मिला "[2] मुक्तछन्द में लिखी "जुही की कली" छन्द की सीमा में रहकर भी मुक्त है, अपने ढंग की पहली कविता है ।

---

1. प्रबन्ध पद्म - पंत और पल्लव - पृ.सं 132
2. परिमल भूमिका पृ.सं. 7

छायावादी प्रेम और सौन्दर्य को अभिव्यक्ति देनेवाली कई कवितायें "परिमल" में संकलित हैं। "जुही की कली" और "शेफालिका" में प्रेम, प्रकृति और मानवीकरण है। "संध्या सुन्दरी" में संध्या का मानवीकरण हिन्दी काव्य में अनुपम है। "प्रिया के प्रति, नयन, स्मृति" आदि प्रेम और शृंगार संबन्धी कवितायें हैं। "बहु" में सुहागिन नारी का भव्य चित्रण है। कवि की वैयक्तिक पीडा और विपन्नता की ओर संकेत करने वाली एक कविता है "विफल वासना"। परिमल की चिन्तन प्रधान दार्शनिक अभिव्यक्ति की कविता है "तुम और मैं"। परिमल के कवि क्रांति चेतना के भी कवि हैं। यहाँ बादल क्रांति का प्रतीक है, शोषितों का बन्धु है, क्रांति और हलचल का आह्वान देनेवाला है।

परिमल संकलन की अन्य विशेषता है कि स्वच्छन्दतावादी युग में आत्माभिव्यक्ति के बीच निरालाजी ने सामाजिक चेतना को वाणी दी। "दीन" "भिक्षुक" "विधवा" आदि इस कोटि की कवितायें हैं। प्रगतिशील विचारधारा का विद्रोही स्वर इन कविताओं में काव्यधारा के उदय के बीस वर्ष पहले छिपा पडा है।

निष्कर्ष यह है कि "परिमल" में एकाध काव्य प्रवृत्तियों की विशेषतायें प्रकट करनेवाली कवितायें संकलित है। इस विविधता और अनेकरूपता ने निरालाजी को हिन्दी के सबसे महान कवि के रूप में प्रतिष्ठा दी।

गीतिका

"गीतिका" निरालाजी के कुलमिलाकर 101 गीतों का संकलन है। गीतों की ओर कवि की लगाव जीवन भर बनी रही। स्वर्गीया पत्नी को समर्पित इस काव्य संकलन में उन्होंने गीत और संगीत के संबन्ध में अपनी व्याख्या दी है -" गीत सृष्टि शाश्वत है। समस्त शब्दों का मूलकारण ध्वनियम ओंकार है। इसी अशब्द संगीत से स्वर सप्तकों की सृष्टि हुई है। स्वर संगीत स्वयं आनन्द है।[1]

गीतिका में स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवृत्तियों को अपनी पूर्णता में समाविष्ट करनेवाले गीत हैं, साथ ही यथार्थपरक और रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ प्रकट करने वाले गीत भी। इन गीतों को प्रार्थना परक, प्रकृतिचित्रण संबन्धी, राष्ट्रीयता प्रधान, दार्शनिक,

---

1. गीतिका की भूमिका पृ.स. 9

नारी सौन्दर्य सम्बन्धी इस प्रकार विभिन्न वर्गों में रख सकते है । अधिकांश गीतों में शृंगारिकता की प्रधानता है । इन गीतों का शब्दचयन संगीत शास्त्र के अनुकूल भी है । डा. नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में-"गीतिका" की यह शृंगारिकता, नारी और प्रकृति की अनुरागमयी भूमिकाओं का यह सधा-चयन निराला के काव्य के द्वितीय उत्थान का केन्द्रीय तत्व है"[1] ।

अनामिका

निरालाजी की 56 महत्वपूर्ण कवितायें "अनामिका" में संकलित हैं । इसकी पांच कवितायें-"तट पर, जेठ, कहाँ देश है, गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को, नाचे उसपर श्यामा" आदि अनूदित हैं । इसकी तीसरी कविता "सम्राट अष्टम एडवर्ड" में कवि ने धन, मान, मर्यादा और सिंहासन का बन्धन तोडनेवाले सम्राट अष्टम एडवर्ड का चित्रण करके रूढियों के विरुद्ध अपने विद्रोह का परिचय दिया । वैयक्तिक पीडा को सामाजिकता में बदलने की निरालाजी की क्षमता अद्भुत है । "दान", "तोडती पत्थर" आदि इस कोटि की कविताएँ हैं । "दिल्ली" "यहीं", "खण्डहर के प्रति" आदि भारतीय संस्कृति और इतिहास को विस्तार प्रदान करनेवाली रचनायें हैं । हिन्दी काव्य संसार ने निरालाजी को उपेक्षा की दृष्टि से देखा । इसका उल्लेख "हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र" में है । हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ शोकगीत "सरोज स्मृति" भी "अनामिका" में संकलित है। "रामकी शक्तिपूजा" अनामिका में संकलित छायावादी काव्यप्रवृत्ति की प्रौढतम कविता है । उनकी "वनबेला" शोषितों का प्रतीक है। इस कविता में निरालाजी के यथार्थवाद को हास्यात्मक परिणति हुई है ।

अत: अनामिका में महाकवि की रचनाशीलता के अनेक स्तर उद्घाटित हुए हैं। 'राम की शक्तिपूजा' में सांस्कृतिक कथ्य है तो "तोडती पत्थर" यथार्थवादी दृष्टि का परिचायक है। इस संकलन की कविताओं में क्रांति का सन्देश है, शृंगारिकता है, रूमानी कल्पना है, शोकगीत हैं, प्रगीत हैं, संबोधन गीत हैं । छन्दोबद्ध रचनाओं के साथ मुक्तछन्द की कवितायें भी हैं । संस्कृत प्रधान भाषा के साथ बोलचाल की भाषा में लिखी कवितायें हैं । "अनामिका" में छायावादोत्तर काव्य की सभी प्रवृत्तियों के बीजारोपण में निरालाजी सफल हुए हैं । विषय और संवेदना की दृष्टि से "अनामिका"

---

[1] कवि निराला-पृ.सं. 44 - नन्ददुलारे वाजपेयी

की अनेक कवितायें प्रगतिशील हैं। पर शिल्प पक्ष में छायावाद से कवि मुक्त नहीं हैं।

तुलसीदास

"तुलसीदास" महाकवि तुलसीदास के जीवन में घटित पत्नी रत्नावली की फटकार पर गृहत्याग की घटना पर आधारित एक लघु प्रबन्ध काव्य है। इसमें कुलमिलाकर एक सौ छन्द हैं। इस काव्य के प्रथम भाग में भारतीय संस्कृति के पतन एवं तुलसी के जन्म का चित्रण है। दूसरे भाग में तुलसीदास की प्रकृति द्वारा देश को ज्ञान-दान की प्रेरणा, पत्नी के प्रति आसक्ति का चित्रण है। अंतिम भाग में तुलसी का आत्मसंघर्ष, रत्नावली के फटकार पर भोग से तुलसी को विरक्ति और श्रीराम पर उन्मुख होने की कहानी है। भारतीय संस्कृति की ह्रासोन्मुखता, मुसलमानों का आक्रमण, बुन्देलखण्ड की वीरता का अस्त, कलिंजर के युद्ध वैभव का गायब होना आदि इस काव्य की पृष्ठभूमि है। डा. दूध नाथ सिंह के शब्दों में -" तुलसीदास के माध्यम से यह जनसाधारण की दुर्दशा और सांस्कृतिक अन्धकार की चिन्ता निराला के कवि की आधुनिक चिन्ता है।" "तुलसीदास" में भारतियों के लिए उत्थान का सन्देश है। इसमें निरालाजी ने वर्णाश्रम व्यवस्था पर प्रहार किया है जो उनके जनसाधारण के उन्नयन की निष्ठा का परिणाम है। इस काव्य में निरालाजी ने प्रकृति वर्णन के आधार पर तुलसी के मानसिक द्वन्द्व और संस्कृतियों के आपसी संघर्ष का चित्रण भी किया है। इस काव्य में कवि ने संस्कृत बहुल ओजपूर्ण भाषा में जीवन सत्य को वाणी देने का प्रयास किया है। संक्षेप में कहें तो "तुलसीदास" निरालाजी की उदात चिन्तनप्रधान प्रबन्धकाव्य है।

कुकुरमुत्ता

कुकुरमुत्ता निरालाजी की रचना प्रक्रिया में एक जोरदार परिवर्तन की सूचना देनेवाली कविता है। उनकी "जुही की कली" से हिन्दी काव्य में वसन्त का आगमन हुआ तो कुकुरमुत्ता ने युगपरिवर्तन की शंखध्वनि बजायी। सन् 1942 में प्रकाशित "कुकुरमुत्ता" के प्रथम संस्करण में "कुकुरमुत्ता" के अलावा "गरम पकौड़ी", "मास्को डायलाग्स", "प्रेमसंगीत" "रानी और कानी", "खजोहरा", "स्फटिक शिला" और "गेल" नामक सात कवितायें भी संकलित हैं। दूसरे संस्करण में निरालाजी ने लिखा -" कुकुरमुत्ते को फिर से संवारा है, अरहा है, अब को अकेला है बाकि रचनायें और कुछ इधर की मिलकर छोटा पड़ा

---

1. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ.सं. 157

तो कुकुरमुत्ता भी रखकर संग्रह "नये पत्ते" नाम से निकल रहा हूँ।[1]

यहाँ कुकुरमुत्ता और गुलाब को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत करके उनके बातचीत द्वारा कवि ने स्वनिर्मित काव्य आभिजात्य के विरूद्ध क्रांति मचा दी है। नयी विषयवस्तु, नयी भाषा, नये शिल्प एवं एकदम नयी संवेदना ने हिन्दी काव्य संसार में नूतनता लायी। यहाँ उपेक्षित के उन्नयन और सामान्य को प्रतिष्ठा के साथ निम्न वर्ग के जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति है। अत: यहाँ हास्य बोध के साथ निरालाजी के सामाजिक यथार्थबोध को वाणी मिली है। कुकुरमुत्ता में जो व्यंग्य है वह डा. दूधनाथ सिंह के शब्दों में- "इस व्यंग्य का निशाना सिर्फ गुलाब ही नहीं है, न ही सिर्फ नवाब या उनकी लड़की बहार। अभिजात्य पर कुकुरमुत्ता का व्यंग्य सिर्फ उसके विराट व्यंग्य का अंश मात्र है"[2]।

सन् 1943 के "तारसप्तक" के प्रकाशन के दो साल पहले की इस कविता की भाषिक संरचना प्रयोगशील है तो विषय वस्तु प्रगतिशीलता का परिचायक है। छायावादी काव्य भाषा का निषेध और भाषा की उपेक्षित क्षमता के प्रयोग के सफल शुभारंभ ने निरालाजी को एक आधुनिक विद्रोही कवि की भूमिका प्रदान की और इसी नूतन भाषा प्रयोग ने उनको हिन्दी का पहला प्रयोगवादी कवि सिद्ध किया।

अणिमा

अणिमा में संकलित कविताओं का प्रणयन दूसरे विश्वमहायुद्ध के अवसर पर हुआ था। अत: विश्व में व्याप्त निराशा एवं संघर्ष का प्रभाव कवि पर पड़ा। इस संकलन की कविताओं में विषाद और अवसाद के स्वर है, आत्मनिवेदनात्मक भक्तिपरक अभिव्यक्ति है, वैयक्तिक पीड़ा का चित्रण है, सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्यप्रहार है।

"परिमल" "अनामिका" के आत्मविश्वासी आशावादी कवि यहाँ एक प्रकार के अकेलापन और निराशा के शिकार हैं। "गगन है अन्धकारा", "मैं अकेला," "स्नेह निर्झर" जैसी कवितायें इसके उदाहरण हैं। "यह है बज़ार," "सड़क के किनारे दूकान है," जैसी कविताओं में कवि परिवेश के साथ अपनी यथार्थोन्मुखी मनोवृत्ति का परिचय देते हैं। "चूंकि यहाँ दाना है," व्यंग्यप्रधान कविता है, जिसमें भाषा आभिजात्य के प्रति विद्रोह भी है। "सहस्राब्दि" नामक कविता में भारत को

---

1. कुकुरमुत्ता दूसरा संस्करण
2. कुकुरमुत्ता - काव्य आभिजात्य से मुक्ति पृ.सं 29- दूधनाथसिंह।

ऐतिहासिकता और राष्ट्रीय जागृति को वाणी मिली है । 'भगवान बुद्ध के प्रति' शीर्षक कविता में बौद्ध दर्शन और गांधीवाद का समावेश है । 'अणिमा' में संकलित 'उद्बोधन' जो सन् 1941 की कविता है, विश्वमानवता केलिए जाति प्रथा को तोड़कर आगे बढ़ने का आह्वान है । 'दलित जन पर करो करुणा' 'धूलि में तुम मुझे भर दो', 'तुम्हीं हो शक्ति', 'तुम आये', 'मरण को जिसने वरा है' जैसी प्रार्थनापरक आत्मनिवेदनात्मक गीत भी इसमें संकलित हैं । 'तुम्हें चाहता वह भी सुन्दर' शीर्षक कविता में भिक्षुक कालीन दीनता नहीं यहाँ दलित वर्ग अपने अधिकार के प्रति सचेत हैं । अणिमा में संत रवीदास, आचार्य शुक्लजी, प्रसादजी, महादेवीजी, प्रेमानन्दजी, विजयलक्ष्मी पंडित आदि पर प्रशंसामूलक कवितायें भी लिखी हैं । अपने समकालीन पर कविता और अपने से बाद आनेवाले कवियों पर लेख लिखकर निरालाजी ने अपना आदर और स्नेह व्यक्त किया है । यह उनके सृजनात्मक व्यक्तित्व की विशिष्टता है ।

बेला

निरालाजी की मानसिक अस्वस्थता के समय में ही 'बेला' की कविताओं की रचना हुई । कुकुरमुत्ता में उन्होंने जिस व्यंग्य की शुरुआत की, 'बेला' में उसको विकास और स्थिरता मिली । बेला की कविताओं का विषय निरालाजी की चिरपरिचित जीवन भूमि है ।

बेला में विषय की दृष्टि से आध्यात्मिक, सामाजिक, देशभक्ति परक, प्रकृतिचित्रण संबन्धी गीत संग्रहीत हैं । निरालाजी के रचनात्मक संघर्ष को व्यक्त करनेवाले अनेक गीत इसमें शामिल हैं ।

उदा मुसीबत में कटे हैं दिन
मुसीबत में कटी रातें
लगी है चांद सूरज से
निरन्तर राहू की घातें ।

'जल्द जल्द पैर बढ़ाओ' में देश की गरीबी, पराधीनता, अपमान और उनके निवारण के लिए आह्वान है । 'केश रूखे अधर सूखे', 'भीख मंगता है वह राह पर' जैसी कविताओं में दलित समाज की करुणदशा अंकित है । 'काले काले बादल छाये' प्रतीकात्मक कविता है

जिसमें स्वतंत्रतापूर्व भारत के गांवों का चित्रण है । "बदी है आँख जहाँ की", "समर करो जीवन" आदि निरालाजी के प्रगतिशील चिन्तन के परिचायक हैं । ग्राम प्रकृति के अनेक दृश्यों का स्वाभाविक वर्णन राजे दिनकर जैसे, "आ रे गंगा के किनारे" जैसी कविताओं में हैं । "कैसे गाते हो; शांति चाहूँ मैं, "तुम्हारा दुख, कारागार है जग" जैसी कवितायें संसार की नश्वरता की ओर संकेत करती हैं । इसके उदात्त विषयों से युक्त प्रगीतों में भी उनकी जनचेतना कम नहीं ।

'बेला' की कविताओं में निरालाजी ने काव्यभाषा में संगीतिक संभावनाओं का अन्वेषण किया है । संगीत की शुद्धता को दृष्टि में रखकर निरालाजी ने यहाँ भाषा पर ध्यान दिया है । बेला के आवेदन में उन्होंने लिखा है -" प्राय: सभी तरह के गेयगीत इसमें हैं । भाषा सरल और मुहावरेदार है । बढ़कर नयी बात यह है कि अलग अलग बहारों की गजलें भी हैं, जिनमें फारसी के छन्द शास्त्र का निर्वाह किया गया है ।"[1] उर्दू, फारसी गजल परम्परा को अपने मौलिक प्रयोग से हिन्दी में स्थान देना " बेला " में निरालाजी का उद्देश्य रहा । कविता में उर्दू शब्दों का आधिक्य है क्योंकि निरालाजी उर्दू भाषा शैली को व्यंग्योक्ति की दृष्टि से अधिक सहज और सक्षम मानते हैं ।

नये पत्ते

प्रयोग के वैविध्य की दृष्टि से निरालाजी की काव्य कृतियों में सन् 1946 में प्रकाशित "नये पत्ते" का स्थान अद्वितीय है । कवि ने यहाँ भाव संवेदना एवं शिल्प संरचना में नये प्रयोग किये । कुकुरमुत्ता प्रथम संकलन की सात कवितायें इसमें संकलित हैं । इस संकलन में सामाजिक यथार्थ से जुड़ी हुई निरालाजी की हास्य दृष्टि अधिकाधिक प्रतिफलित हुई है । मिलमालिक, पूंजीपति, नेतावर्ग, सबके प्रति कवि ने अपनी धारणा व्यक्त की है । निरालाजी आजीवन खतिहर मजदूरों के वक्ता रहे । "झींगर डटकर बोला" " कुत्ता भौंकने लगा, "छलांग मारता चला गया " जैसी कविताओं में उन्होंने राजनैतिक नेता एवं अधिकारी वर्ग का निम्नवर्ग के लोगों पर किये जानेवाले शोषण का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है । "महंगू महंगा रहा" में अस्वतंत्र भारत के गांव का चित्रण है तो "मास्को डायेलाग्स" में सोशलिस्ट घोषित करनेवाले नेताओं पर व्यंग्य है ।

---

1. बेला - आवेदन निराला

"डिप्टी साहब आये " में उन्होंने किसान वर्ग के प्रति होनेवाले शोषण के विरूद्ध आवाज उठायी है । सदियों से शोषण के शिकार बनी जनता स्वयं उसे तोडने केलिए तैयार हो गयी है । "बरखा चला " शीर्षक कविता वैदिककाल को भारत की सामाजिक स्थिति के चित्रण से शुरू हुई है, साथ इस कविता में आधुनिक भारत की सामाजिक प्रगति भी अंकित है । "राजे ने रखवाली की" नामक कविता में राजा की चापलूसी करनेवाले वर्ग, जनता को पोथी में बांधनेवाले ब्राह्मण वर्ग और सभ्यता तथा धर्म के नाम पर खून बहानेवाले राजा का चित्रण है ।

"खजोहरा" और"रानी और कानी"में निरालाजी ने रोमांटिक सौन्दर्य बोध के विरूद्ध क्रांति मचा दी तो "गर्म पकौडी" में आभिजात्य के ऊपर सामान्य की प्रतिष्ठा की है । "प्रेमसंगीत" में ब्राह्मण युवा का कहारिन के साथ प्रेमसम्बन्ध स्थापित करके परम्परागत सामाजिक जातिगत रूढियों की भर्त्सना की है । "स्फटिक-शिला" कवि की चित्रकूट यात्रा पर लिखी कविता है । यहाँ प्रकृति का यथार्थ अंकन है । आर.एस.पंडित को श्रद्धांजलि अर्पित करके उन्होंने "तिलांजलि" शीर्षक कविता लिखी । "दगा की " " तारे गिनते रहे " जैसी कविताओं में ऐतिहासिकता है । "वर्षा " में अपनी प्रिय ऋतु का चित्रण उन्होंने ग्राम्य प्रकृति के सुरम्य वातावरण में किया है । "चौथी जुलाई के प्रति" और" कानी माता " विवेकानन्दजी की कविताओं का अनुवाद है।

निरालाजी की भाषा के संबन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा -"उनकी सी भाषा प्रयोग की अबाधगति अन्यत्र नहीं दिखाई देती । इन विभिन्न भाषा प्रयोगों में निरालाजी का इतना अधिकार है कि उनकी कृतियों में कहीं भी अशक्तता दृष्टिगत नहीं होती, बल्कि कहा जा सकता है कि उन्होंने शब्द चयन और काव्य व्यंजनाओं में क्रमगत भूमिकाओं को नया विस्तार दिया है "[1] । "नये पत्ते " की भाषा के संबन्ध में यह कथन अक्षरशः सत्य है ।

संक्षेप में हम कह सकते है कि यथार्थोन्मुखी दृष्टि एवं हास्य व्यंग्य की प्रवृत्ति "नये पत्ते" की बडी विशेषता है । भाषिक संरचना एवं भाव संवेदना की दृष्टि से "नये पत्ते" का हिन्दी काव्यक्षेत्र में अलग स्थान है ।

---

1. आजकल अंक 11 मार्च 1964 - प्रसाद और निराला-नन्ददुलारे वाजपेयी ।

अर्चना

"अर्चना" निरालाजी के सन् 1950 जनवरी 12 से अगस्त पन्द्रह तक लिखी 112 गीतों का संकलन है। 'अर्चना' की स्वयोक्ति में निरालाजी ने लिखा है -"प्रचलित कुल तालों से समन्वित "अर्चना" नामक आधुनिक गीतों का संग्रह, ईश्वर की इच्छा से प्रस्तुत होकर कलाकार कमलाशंकर सिंह की तूलिका से मनोरंजक बनाकर पाठक-पाठिकाओं के सम्मुख उपस्थित है। ......खड़ीबोली की गाड़ी कैअौर चलते रहने की आवश्यकता है, ये गीत जैसे उसकी पूर्ति करते हैं"[1]। इस समय निरालाजी का मन शांत और करुणा से भरा था। डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में -" निराला का मन 'राम की शक्तिपूजा' के महावीर की तरह पछाड़ खाते हुए जल के पहाड़ों से लड़ता रहा, अपनी अद्भुत क्रियायें देखकर गीतों में उनका चित्र बनाता रहा।"[2] ये गीत सतह से समर्पण भावमुद्रा के है लेकिन अन्तर्वस्तु में सुलगते हुए जनाक्रोश की आग है। 'अर्चना' हार को अस्वीकार करनेवाले निरालाजी के अपराजेय व्यक्तित्व की परिणिति है। कवि पराजय का अनुभव करने लगा था, पर संसार के प्रति उनके मन का आकर्षण यहाँ भी कम नहीं हुआ था।

'अर्चना' के गीतों में शांत रस की प्रधानता है, पर वे यथार्थवाद से दूर नहीं रहे। कुछ गीतों में व्यंग्य विनोद की प्रवृत्ति है। निरालाजी की प्रिय ऋतुएँ - वसन्त और वर्षा के गीत भी इस में संकलित हैं। माँ सरस्वती की अर्चना के गीत भी इसमें है। पुष्ट काव्यभाषा या आमजनता की काव्यभाषा इन गीतों की विशेषता है। 'अर्चना' की भाषा के बोलचाल के शब्दों के संबन्ध में निरालाजी ने लिखा है -" यथाशक्ति सुपरिचित शब्दों की श्रृंखला रखी गयी है जो सहज ही उच्चरित हो जाय जिससे आधुनिक गीतों की मोड़ों और स्वर-कंपन प्राचीन शब्दोच्चारण की दीवारें पार करके अपनी सत्यता पर समासीन हों"[3]। यह भाषा, यथार्थ की, परिवेश की असलियत की वाणी देने में सक्षम है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि 'अर्चना' में निरालाजी की सहज विशिष्ट भाषा शैली उनकी सामाजिक करुणा एवं यथार्थवादी दृष्टि को वाणी देने में सफल हुई है।

आराधना

'आराधना' निरालाजी के सन् 1951 से लेकर 1953 जनवरी 23 तक की अवधि में लिखित कविताओं का संकलन है। साथ ही सन् 1938 । सं 891 में लिखी एक कविता

---

1. अर्चना - स्वयोक्ति - पृ.सं. 6 - निराला
2. निराला की साहित्य साधना। पृ.सं. 389
3. अर्चना-स्वयोक्ति - पृ.सं. 6

भी है । श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में -" अविश्वास के इस अन्धकार युग में 'आराधना' के स्वर दीपकराग की भाँति संगीत और आलोक की समन्वित सृष्टि करने में समर्थ होंगे ।"[1] आराधना के गीत उनके अन्य काव्य संकलनों के समान अत्यन्त प्रौढ हैं । निरालाजी के जीवन के प्रति जो अर्चना है उसकी परिणिति है "आराधना"। इस संकलन के अधिकांश गीत आत्मनिवेदनात्मक और प्रार्थना परक है । लंबी अस्वस्थता और मानसिक असन्तुलन के बीच लिखी इन गीतों में भी उनका मन यथार्थ जीवन से सम्बन्ध नहीं तोडा । इसके आत्म निवेदनात्मक गीतों का व्यंग्यबाण लक्ष्य पर चुभ जाता है । ग्रामीण जीवन, संस्कृति और ग्रामीण जनता के प्रति कवि का जो आत्मीय भाव है "आराधना" के गीतो में मुखरित है । लोकगीतों के धुन में लिखी कवितायें भी इसमें संकलित हैं । समस्त मानव समाज के विकास केलिए लोक जीवन और संस्कृति की अनिवार्यता को पहचाननेवाले कवि के गीतों में लोकगीतों का भाव सम्बद्ध हो जाना स्वाभाविक है । गीत के विस्तार को संकुचित करते हुए भाषा को उन्होंने प्राणवान बना दिया है । इसलिए हर एक कविता के एक एक शब्द अपने स्थान पर अमूल्य हैं ।

गीतगुंज

'गीत-गुंज' का प्रथम संस्करण छब्बीस गीतों का संकलन है । इनमें सात पुराने गीत, अर्चना में संकलित एक गीत, आराधना के छः गीत और बारह नये गीत थे । इसके द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण में सन् 1953 से 1956 तक लिखे गीत संकलित हैं । इन गीतों में पौरुष, ओज और क्रांति के कवि एकदम आत्मगत हो गये हैं। प्रार्थना, विनय और आत्मनिवेदन सम्बधी इन कविताओं में वे मध्यकालीन भक्तकवियों की भाव भूमि पर आ गये हैं । इन गीतों में अद्वैत दर्शन से प्रेरित कवि की मानवतावादी दृष्टि अधिक स्पष्ट है । इसके अनेक गीत वसन्त ऋतु के बारे में है । इनमे सजीव सौन्दर्यपूर्ण यौवन के उल्लास पर आमोदित प्रकृति का चित्रण है । वर्षा के बाद वसन्त और शरद ऋतु से कवि प्रभावित हुए हैं । डा. शिवगोपाल मिश्र के शब्दों में " सन्यास लेने के बाद तो ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रकृति में जो ऋतु परिवर्तन होते हैं उन्हीं से उनका जीवन संचालित होता है "।[2] द्वितीय संस्करण की कविता "पथ" मुक्त छन्द में लिखी है, जो उनकी स्वच्छन्दता का परिचायक है ।

---

1. आराधना-दो शब्द - श्रीमती महादेवीवर्मा
2. गीत-गुंज - भूमिका पृ.स. 16

खड़ीबोली के संगीत पक्ष को मज़बूत बनाना ही इस गीत प्रधान रचना में कवि का उद्देश्य रहा है । इसके कई गीतों में लोकगीतों का धुन है । इनकी रचना सरल और जनजीवन की भाषा में हुई है । सरल भाषा, अनुप्रासात्मक प्रयोग, मुहावरों का सटीक प्रयोग आदि इस काव्य संकलन की विशेषतायें हैं । महाकवि के जीवन काल के अंतिम संकलन होने के नाते "गीत-गुंज" का हिन्दी काव्य संसार में अपना अलग महत्व है ।

साध्य- काकली

'साध्य काकली' का प्रकाशन निरालाजी के स्वर्गवास के साढे सात साल बाद सन् 1969 में हुआ । इसमें महाकवि के जीवन के साध्य काल में रचित तैंतालिस कविताओं के अलावा "गीत-गुंज' की पच्चीस कवितायें भी संकलित हैं । उनके जीवन के सायंकालीन रचनाओं में एक अधुरी कविता भी है ।

"पत्रोत्कंठित जीवन का विष बुझा हुआ है" शीर्षक कविता में निरालाजी ने अपने जीवन का सिंहावलोकन किया है । वहाँ भी उनकी अपराजेय आत्मा में निराशा का भाव नहीं । "रहोतुम" शीर्षक कविता में उन्होंने अपने स्वप्नहीन जीवन की व्यथा की है । आजीवन सरस्वती के वरणोपासक महाकवि ने 'साध्य काकली' में भी "हाथवीणा समासीना" देवी की स्तुति की है । वीणावादिनी सरस्वती पर लिखी 65वीं कविता को कुछ लोग उनकी अंतिम कविता मानते हैं । निरालाजी का सफल व्यंग्यकार रूप 'साध्यकाकली' में भी दर्शित है । इस संकलन की ध्वनिक्रीडा प्रधान कवितायें हैं- ताक कमसिनवारि, वारिवनवारि, डगमग डगमग आदि । इनमें कवि शब्दार्थ के आगे शब्द लय पर ज़ोर देते हैं । इस संकलन में ब्रजभाषा के दो गीत हैं साथ ही भोजपुरी भाषा में लिखी एक लोकगीत भी शामिल है । 'साध्य काकली' के आत्म परक गीतों में मनको उद्विग्न करनेवाली आध्यात्मिकता है क्योंकि वे कभी अपने परिवेश से मुँह नहीं मोड सकते थे । इनमें भी काव्यभाषा के कई मोड हम देख सकते हैं । "ताक कमसिनवारि" जैसी कविता की भाषा विवेकोत्तर भाव समाधि की काव्य भाषा के उत्तम उदाहरण हैं ।

डा. श्री नारायण चतुर्वेदी के शब्दों में इस संकलन की कविताएँ "उनके आस्थाओं और विचारों के सम्बन्ध में नहीं उनके मानसिक असन्तुलन की उग्रता के सम्बन्ध में भी लोगों में बडा मतभेद है । समर्थ और अधिकारी विद्वानों एवं आलोचकों को उनकी इन अंतिम

कविताओं से इन विवाद ग्रस्त विषयों पर विचार करने में सहायता मिलेगी ।[1] अत: निरालाजी के सायंकालीन कविताओं का यह संकलन उनके अंतिम दिनों के विचारों और आस्थाओं के सम्बन्ध में जो मतभेद है, उसे दूर करने के लिए सहायक है ।

असंकलित कविताएँ

सन् 1981 में प्रकाशित "असंकलित कविताएँ" निरालाजी का नवीनतम और अंतिम काव्यसंकलन है । कवि ने अपनी कई कविताओं को पहले संकलनों में स्थान नहीं दिया क्योंकि वे उनकी दृष्टि में कम महत्वपूर्ण और प्रारंभिक थीं । इस प्रकार की अनेक कवितायें इस काव्य संकलन में संकलित हैं । अत: निरालाजी के काव्यजीवन के शुभारंभ और विकास की जानकारी के लिए यह संकलन उपयोगी है । इसमें संकलित "सच्चा प्यार" एक ऐसी कविता है, जिसका निरालाजी के अन्य संकलनों में स्थान प्राप्त नहीं है । "लज्जिता" नामक कविता पर रवीन्द्र की कविता का आरोप लगाया था । निरालाजी ने "मतवाला" में "पुराने महारथी" नाम से रक्षाबन्धन" और "कृष्ण महात्मा" नामक ब्रजभाषा की दो कवितायें लिखी थीं । "कृष्ण महात्मा" देशभक्तिपरक कविता है तो "रक्षा बन्धन" में छायावादी संस्कार दर्शित है । ये दोनों कवितायें इस संकलन में है । सन् 1935 की "सुधा" में प्रकाशित अवधी भाषा के एक गीत-" किहि तनपिय मन धारों" - सो कहूँ" भी " असंकलित कविताएँ" में संकलित है । मतवाला में "शौहर" नाम से लिखी उनकी कविता 'देवि कौन वह शोर्षक कविता को भी इस संकलन में स्थान मिला है । "गीत -गुंज" के परिवर्द्धित संस्करण में संकलित अधूरी कविता "बापू के प्रति" पूरे रूप में इसमें मौजूद है । इस संकलन की "प्रणाम: और "गरीबों की पुकार" नामक दो कवितायें " बेला " नामक पत्रिका में छपी थीं । "सरोज के प्रति" शोर्षक कविता में प्रहारों को सहते अपने विश्वास पर अटल रहनेवाले सरोज का वर्णन है । 'कालेज का बबुआ' शुक्लजी पर लिखी एक व्यंग्यात्मक कविता है जिसमें हिन्दी कवि और आलोचकों के बीच के आक्रमण प्रत्याक्रमण का सुन्दर चित्रण है । नेहरूजी के राजनीतिक व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण घोषित करनेवाली एक कविता भी इस संकलन में है । "महाराज शिवजी का एक नया पत्र" नागरी प्रचारिणी पत्रिका के अंक में छपा था, इसका रूपान्तर है उनकी कविता 'महाराज शिवजी का पत्र"। वह

---

1. सांध्यकाकली-भूमिका पृ.सं. 16

भी इस संकलन में शामिल है । जुही की कली का आदित्य भी यहाँ सुरक्षित है जो इस संकलन की एक महत्वपूर्ण सामग्री है । आरंभिक और संशोधित रूप की तुलना से निरालाजी की रचना प्रक्रिया के विकास का पता चलता है । निरालाजी की प्रथम प्रकाशित कविता 'जन्मभूमि' से लेकर रीतिवादी प्रवृत्ति पर चोट करनेवाली 'विरहिणी पर व्यंग्य' नामक व्यंग्यात्मक कविता तक इसमें संकलित है ।

संक्षेप में निरालाजी ने हर एक काव्य संकलन में अपने कवि व्यक्तित्व और रचना स्तर को सुरक्षित रखा है । उन्होंने संकलन के चयन करते समय विषयवस्तु, शिल्प या भाषिक संरचना की एकरूपता पर ध्यान नहीं दिया । डा. दूधनाथ सिंह के शब्दों में -" निरालाजी की काव्यात्मक उपलब्धि उनकी शुरूआतों का कहीं अन्त न होना ही है । वह लगातार अपनी अर्थ छवियों और अपने मौन मधु से पाठक को आन्दोलित करते चलते है और सर्वथा नये असन्तोष का सृजन करती हैं । इस रूप में निराला का कहीं भी अन्त नहीं होता । उनकी रचनात्मकता का कोई आन्तिम पूर्ण विराम नहीं है ।"[1] अतः अनन्त भाव संवेदना और बदलती भाषिक संरचना उनकी अपनी विशेषता है जो हिन्दी के किसी अन्य कवि में नहीं ।

ठ ठ ठ ठ ठ

---

1. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ.सं. 29

अध्याय तीन

छायावाद और निराला

बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में हिन्दी काव्य संसार में पल्लवित नयी काव्यधारा को विद्वानों ने छायावाद की संज्ञा दी । यह आधुनिक हिन्दी काव्य का सबसे सशक्त काव्यान्दोलन कहा जा सकता है । भाव पक्ष और शिल्प पक्ष की दृष्टि से इस काव्यधारा ने अभूतपूर्व गरिमा का परिचय दिया ।

छायावाद नामकरण के संबन्ध में विद्वानों के बीच में मतभेद है । छायावाद का आरंभिक विवेचन जबलपुर से प्रकाशित "श्रीशारदा" में मुकुटधर पांडेयजी द्वारा हुआ । 16 जुलाई 1920 वर्ष, खण्ड 1 के अंक में पांडेयजी का लेख काव्यस्वातंत्र्य "हिन्दी छायावाद" के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ । अत: सन् 1920 के आसपास ही हिन्दी में "छायावाद" शब्द का प्रयोग होने लगा था । मुकुटधर पांडेयजी ने व्यंग्यात्मक ढंग से ही इस नयी काव्यधारा के लिए छायावाद शब्द का प्रयोग किया था । डा. गणपतिचन्द्रगुप्त के शब्दों में - " यह भी ध्यान रहे कि पांडेयजी ने इसका प्रयोग व्यंग्यात्मक में - छायावादी काव्य की अस्पष्टता । छाया। के लिए किया था । किन्तु आगे चलकर यही नाम स्वीकृत हो गया[1] । स्वयं छायावादी कवियों ने इस विशेषण को बडे प्रेम से स्वीकार किया था । " आचार्य शुक्लजी के अनुसार बंगला में आध्यात्मिक प्रतीकवादी काव्य का नाम छायावाद है, अत: इसी प्रकार की कविताओं के लिए हिन्दी में यह नाम उचित है[2] । प्रसादजी ने "छाया" शब्द का मोती की तरलता से सम्बद्ध करते हुए लिखा - " मोती के भीतर छाया जैसी तरलता होती है, वैसी ही कांति की तरलता अंग में लावण्य कही जाती है । छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर निर्भर करती है । ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्य प्रतीक विधान तथा उपचारवक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृत्ति छायावाद की विशेषतायें है । अपने भीतर से पानी की तरह अंतरस्पर्श करके आत्मसमर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति छाया .....

---

1. हिन्दी साहित्य का विकास - पृ.सं. 281. डा. गणपतिचन्द्रगुप्त ।
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास- पृ.सं. 453 आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ।

कांतिमय होतो है।[1] " प्रसादजो के समान श्रीमतो महादेवीवर्मा भी भावुकता पर बल देकर "छाया" शब्द को व्याख्या को है-" सृष्टि के बाह्याकार पर इतना लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अभिव्यक्ति के लिए रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित उन मानव अनुभूतियों का नाम छाया उपयुक्त था और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगता है "।[2] निरालाजो ने छायावाद को "सौन्दर्यवाद" कहकर छायावृत्ति का संबन्ध वैदिक साहित्य से जोडा। जो भी हो आज इस काव्यधारा के लिए छायावाद शब्द का प्रयोग रूढ हो गया है, यद्यपि प्रारंभ में इस शब्द का प्रयोग व्यंग्यार्थ में किया था।

स्वरूप

आचार्य रामचन्द्र शुक्लजो ने छायावाद को व्याख्या करते हुए लिखा है - "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए-एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबन्ध काव्य वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलंबन कर अत्यन्त चित्रमयो भाषा में प्रेम को अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। छायावाद का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है।"[3] यहाँ शुक्लजो ने छायावाद को रहस्यवाद से अभिन्न माना है। डा. रामकुमारवर्मा भी शुक्लजो के मत के पक्षधर है। उनके शब्दों में -"परमात्मा को छाया आत्मा में पडने लगतो है और आत्मा को छाया परमात्मा में यहो छायावाद है।"[4]

छायावाद को समीक्षाओं में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयो को व्याख्या का ऐतिहासिक महत्व है। उन्होंने छायावाद को उसकी समग्रता में परखने को कोशिश करते हुए लिखा है -" मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद को सर्वमान्य व्याख्या हो सकतो है"।[5]

---

1. कला तथा अन्य निबन्ध - पृ.सं. 143
2. साहित्यकार को आस्था तथा अन्य निबन्ध - पृ.सं. 65
3. हिन्दो साहित्य का इतिहास पृ.सं. 453 - आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
4. हिन्दी साहित्य का विकास - पृ.सं. 282 डा. गणपतिचन्द्रगुप्त
5. हिन्दो साहित्य बोसवों शताब्दो - पृ.सं. 163. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयो।

डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी छायावाद को मानवीय भूमि का काव्य मानकर उसकी जीवन व्याप्ति पर बल देते हुए कहते हैं कि छायावाद शब्द उस काव्यधारा की विशेषताओं से मेल नहीं खाती बल्कि इस शब्द से एक वायवीयता का आभास है । उनके शब्दों में -" छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, जिसमें कवि की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषा शैली में अपने को अभिव्यक्त किया । इन सभी उल्लेखनीय कवियों में (प्रसाद - पन्त, निराला तथा महादेवी) थोड़ी बहुत आध्यात्मिक अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी थी जिन कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढ़ियों के विद्रोह का भाव दिखाया था उनके इस भाव का कारण तीव्र सांस्कृतिक चेतना थी ।"[1] डा. द्विवेदीजी छायावाद को अंग्रेज़ी साहित्य से प्रभावित एवं भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के परिणाम स्वरूप उत्पन्न काव्यधारा मानते हैं । डा. नगेन्द्र ने छायावाद को "स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह " माना है ।[2]

श्री सुमित्रानंदनपंत के "पल्लव" की भूमिका को छायावाद का घोषणा पत्र माना जाता है । इसमें उन्होंने लिखा -" खड़ीबोली आगे की सुवर्णाशा है । उनकी बालकला में भावि की लोकोज्वल पूर्णिमा छिपी है, वह समस्त भारत को हत्कंपन है, देश की शिरेपशिराओं में नवजीवन संचारिणी संजीवनी है ।"[3] "चिदम्बरा" (1959) के "वरण चिन्ह" शीर्षक में पंतजी ने छायावाद की पुर्नव्याख्या की। उनके शब्दों में-"छायावाद की सार्थकता, मेरी दृष्टि में, उस युग के भावात्मक दृष्टिकोण तक ही सीमित है, जो भारतीय जागरण की चेतना का सर्वात्मवाद मूलक कैशोर समारम्भ भर था, उस युग की कविता में और भी अनेक प्रकार के अभिव्यंजना के तत्त्व, तथा स्थ शिल्प की विशेषताओं के व्यापक उपकरण है, जो खड़ीबोली गद्यपद्य के लिए स्थानीय देन के रूप में रहेंगे ।"[4]

छायावादी कवियों में निरालाजी ने काव्य को खुले मैदान में लाने का आह्वान दिया । उन्होंने मुक्तछन्द को जातीय छन्द और स्वच्छन्द छन्द पुकारा । भाव-प्रवाह और वाचन कला के आनन्द के लिए मुक्तछन्द को अनिवार्य मानते हुए उन्होंने

---

1. हिन्दी साहित्य - पृ.सं. - 461 डा. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ।
2. सुमित्रानन्दन पंत - पृ.सं. 2 - डा. नगेन्द्र
3. पल्लव प्रवेश - पृ.सं. 11-12
4. चिदम्बरा वरणचिन्ह - पृ.सं. 9 सुमित्रानंदन पंत ।

लिखा- " मनुष्यों को मुक्ति की तरह कविता को भी मुक्ति होती है । मनुष्यों को मुक्ति बन्धनों से छुटकारा पाना है और कविता को मुक्ति शब्दों के शासन से अलग हो जाना । .....मुक्तकाव्य कभी साहित्य के लिए अनर्थकारी नहीं होता, प्रत्युत उससे साहित्य में एक प्रकार की स्वाधीन चेतना फैलती है, जो साहित्य के कल्याण की ही मूल होती है ।"[1]

उपयुक्त विवेचनों में छायावादी काव्यधारा की अनेक विशेषतायें ज्ञातव्य हैं जो निम्नलिखित हैं -

छायावाद में प्रकृति का मानवीकरण होता है, एक भावात्मक दृष्टिकोण का नाम छायावाद है, वह स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है, छायावाद प्रेम और सौन्दर्याकंन से युक्त गीत काव्य है, वह स्वानुभूति निरूपिणी काव्य है, उसमें वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति है, साथ ही चिन्तन एवं अनुभूति की प्रमुखता है । इन तथ्यों को क्रमबद्ध करे तो इस काव्यधारा का विराट स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट हो जायगा । छायावादी काव्यधारा के स्वरूप की व्याख्या करते हुए डा. गणपतिचन्द्रगुप्त ने लिखा है -" भारतीय काव्य परम्परा में हिन्दी कविता की छायावादी धारा अपने पूर्ववर्ती युग की प्रतिक्रिया में प्रस्फुटित एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण, एक विशेष दार्शनिक अनुभूति और एक विशेष शैली है, जिसमें लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम के व्याज से लौकिक अनुभूतियों का चित्रण है, जिसमें प्रकृति को मानवी रूप में प्रस्तुत किया जाता है और जिसमें गीततत्वों की प्रमुखता होती है ।"[2] डा. गणपतिचन्द्रगुप्त ने छायावाद के स्वरूप की जो व्याख्या की है, उस काव्यधारा की समस्त विशेषताओं को समाविष्ट करती है

प्रेरणास्त्रोत और परिस्थितियाँ

भारत की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यक परिस्थितियों ने छायावाद के उदय और विकास में योग दिया ।

---

1. परिमल की भूमिका - पृ.सं. 8
2. हिन्दी साहित्य का विकास - पृ.सं. 283- डा. गणपति चन्द्रगुप्त

राजनीतिक परिस्थितियाँ

छायावाद दो विश्वमहायुद्धों के बीच हिन्दी में पल्लवित, पुष्पित काव्यधारा है । प्रथम विश्वमहायुद्ध ने भारतीय राजनीति में एक समूल परिवर्तन उपस्थित किया। इस समय भारतीय स्वातंत्र्य क्षितिज पर गांधीजी का उदय हुआ ।वे स्वतंत्रता आन्दोलन का बागडोर अपने हाथ में लेकर सत्य, अहिंसा और असहयोग की नीति का प्रयोग करने लगे । हिन्दी के कुछ विद्वानों ने छायावादी वेदना और निराशा को अंग्रेजी शासन का वचन न पूरा करना, रौलट एक्ट तथा 1919 के अवज्ञा आन्दोलन की असफलता के साथ जोडा । लेकिन डा. गणपतिचन्द्रगुप्त के शब्दों में -" इस असफलता के अनन्तर भी भारतियों के उत्साह, नीति एवं लक्ष्य में कोई परिवर्तन नहीं आया था, गांधीजी का नेतृत्व यथावत् चल रहा था ।"[1] अत: छायावादी कवियों की तत्कालीन राजनीतिक आन्दोलनों के प्रति उदासीनता का कारण उनका "वैयक्तिकता में लीन हो जाना है, राजनीतिक निराशा नहीं ।"[2] दूसरा कारण था कि छायावादी कवियों की प्रकृति कल्पना और प्रेम से मेल रखनेवाली थी, अत: तत्कालीन राजनीति से उनका उदासीन रह जाना स्वाभाविक था ।

भारत की राजनीति में जालियनवाला बाग हत्याकांड, भगतसिंह की फांसी, नमक कानून भंग, साइमन कम्मीशन बहिष्कार जैसी घटनायें छायावादी काल में हुई । लेकिन इनका कोई प्रत्यक्ष प्रभाव इन कवियों पर नहीं पडा, ऐसा कहना पूर्णत: सत्य नहीं । ये कवि भारत की राजनीतिक परिस्थितियों से निसंग तो नहीं थे । डा. प्रेमशंकर के शब्दों में -"हिन्दी स्वच्छन्दतावाद ने राष्ट्रीय चेतना को गहराई से ले लिया और उसे एक बौद्धिक आधार देने की चेष्टा की, इसे हम राष्ट्रीयता की आधुनिक पहचान कह सकते हैं ।"[3] पाश्चात्य अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति के प्रभाव स्वरूप भारतीय जीवन में जो परिवर्तन महसूस हुआ, वह छायावाद के लिए प्रेरक बन गया । डा. शिवदानसिंह चौहान के शब्दों में -" छायावादी कविता राष्ट्रीय आन्दोलन या जागृति का सीधा परिणाम नहीं बल्कि पाश्चात्य अर्थ व्यवस्था और संस्कृति के संपर्क में आने के परिणाम स्वरूप हमारे देश और समाज के

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.सं. 284 डा. गणपतिचन्द्रगुप्त
2. वही वही वही
3. हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य - पृ.सं. 32- डा. प्रेमशंकर

बाहरी और भीतरी जीवन में प्रत्यक्ष और परोक्ष परिवर्तन हो रहे थे, उन्होंने जिस तरह सामूहिक व्यवहार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाई और राष्ट्रीय संघर्ष को प्रेरणा दी, उसी तरह सांस्कृतिक क्षेत्र में उन्होंने स्वच्छन्दतावादी दृष्टि को प्रेरणा दी[1]। भारतीय राजनीतिक परिस्थितियों का ध्यान छायावादी कवियों में निराला को सबसे अधिक था। उनकी 'जागो फिर एक बार,' 'भारती जय विजय करे,' जैसी राष्ट्रीयता प्रधान कवितायें इसके उत्तम उदाहरण है। निष्कर्ष यह है कि हम यह नहीं कह सकते कि भारतीय राष्ट्रीय नवजागरण की क्रोड में पल्लवित, पुष्पित छायावादी काव्यधारा तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से प्रभावित नहीं हुई।

सामाजिक परिस्थितियाँ

सदियों की दासता ने भारतीयों को आत्मकेन्द्रित बनाया। पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के आगमन से भारत में जागृति का तूफान उठा, जिससे रूढ़ियों में सुप्त भारतीय जन समाज जाग उठा। पाश्चात्य शिक्षा एवं संस्कृति के फलस्वरूप भारत के शिक्षित जनसमुदाय के सामाजिक, वैयक्तिक और पारिवारिक दृष्टिकोण में एक परिवर्तन आ गया। अंग्रेज़ो के प्रभाव एवं उससे प्रभावित बंगला साहित्य के संपर्क एवं नवीन शिक्षा पद्धति के प्रभाव ने एक ओर राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय आन्दोलन की शुरूआत की तो दूसरी ओर स्वच्छन्दतावादी दृष्टि को आगे बढाया। इस स्वच्छन्दतावाद ने व्यक्तिवादिता को जन्म दिया। डा. तारकनाथबाली के शब्दों में -"छायावाद युग भारत केलिए अस्मिता के खोज का युग था"[2]। किन्तु दुख की बात यह थी कि स्वच्छन्दतावादी नवीन पीढी, धार्मिक, सामाजिक रूढियों, जाति पाँति अन्धविश्वासों और मिथ्याडंबरों को छिन्न भिन्न करने को सन्नद्ध थी, लेकिन उनके सामने पुरानी पीढी की समस्त रूढियाँ अटल चट्टान के समान थीं जो नयीपीढी के स्वप्नों के संस्कार को चकनाचूर करनेवाली थी। शिक्षित जनसमुदाय में अतृप्ति, विवशता निराशा एवं वेदना बद्धमूल होने लगी। क्योंकि अंग्रेज़ी शिक्षा ने जिन अनन्त संभावनाओं का उद्घाटन किया, भारत के शिक्षित वर्ग उसे पूरा करने में असफल रहे। इस असफलता ने विक्षोभ, कुंठा और कभी घोर व्यक्तिवादिता के स्वर को जन्म दिया। छायावादी

---

1. हिन्दी साहित्य के अस्सीवर्ष - पृ.सं. 84 - डा. शिवदानसिंह चौहान,
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ.सं. 538 - संपादक - डा. नगेन्द्र।

कवियों को निराशा, कुण्ठा, वेदना या व्यथा इस सामाजिक परिस्थिति को देन है।

धार्मिक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

छायावाद युग की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर श्री रामकृष्णपरमहंस, स्वामि विवेकानन्द, राजा राम मोहन राय, स्वामि दयानंद, बालगंगाधर तिलक, गोखले, महात्मागांधी, महर्षि अरविन्द जैसे महापुरुषों की विचारधारा का प्रभाव पड़ा है। अंगेज़ी शिक्षा ने भारतीय मनीषियों को भारत की त्रास पूर्ण विघटनमयी स्थिति के प्रति सजग बनाया। उन्हें सुधार की आवश्यकता महसूस हुई। इसी युग में ईसाई धर्म प्रचारकों ने पाश्चात्य जीवन पद्धति की महिमा का प्रचार किया, बीच में भारतीय सांस्कृतिक चेतना को निस्सार घोषित किया। इस सांस्कृतिक आक्रमण ने भारतीय मनीषियों को आन्दोलित किया। भारतीय पुनर्जागरण का आन्दोलन इन्हीं का परिणाम था, जिसके प्रवर्तक थे राजा राम मोहनराय। भारत के महापुरुषों ने भारत के अतीत परम्परा के मूल्यवान तत्वों को नये जीवन के अनुरूप ढालकर व्यापक विश्वधर्म की प्रतिष्ठा की। इसप्रकार यहाँ संकुचित हिन्दुत्व का ह्रास होने लगा। छायावाद युग का धार्मिक सांस्कृतिक वातावरण इन महानुभावों की देन थी। डा. तारकनाथ बाली के शब्दों में -"चाहे व्यक्तिगत रूप से कवियों की आस्था इनमें से किसी एक प्रचारक पर रही हो या न रही हो, यह स्पष्ट है कि ये कवि जिस वातावरण में सांस ले रहे थे उसका निर्माण इन्हीं महापुरुषों के अथक प्रयत्नों के फलस्वरूप हुआ था। इसलिए ज्ञात या अज्ञात भाव से छायावाद युग के अधिकांश कवि इन लोकपुरुषों के सिद्धान्त से प्रभावित हुए"[1]। गाँधीजी के विश्वशांति और विश्वकल्याण से अभिप्रेरित हैं छायावादी कवि। छायावादी कवियों की आध्यात्मिकता के सम्बन्ध में महादेवीवर्मा ने लिखा है -" छायावाद का कवि धर्म के आध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है, जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि के सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय को भावभूमि के स्थान पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति की और दोनों के साथ

---

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ.सं. 539 - सं. डा. नगेन्द्र

स्वानुभूत सुख दुखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य सृष्टि उपस्थित की जो प्रकृतिवाद हृदयवाद, आध्यात्मवाद, रहस्यवाद, छायावाद और सर्वात्मवाद आदि अनेक नामों का भार संभाल सकी"[1]। भारतीय आध्यात्मवाद और सर्वात्मवाद ने छायावादी कवियों को प्रभावित किया। पुष्करिणी काव्य संकलन की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा है कि विदेशी शिक्षा के प्रभाव से भारत के पुराने नैतिक मूल्य लडखडाने लगे थे। ईश्वर के इर्द- गिर्द घूमनेवाली नैतिकता के स्थान पर, "मानव परख नैतिकता" की प्रतिष्ठा हुई। छायावादी कवियों ने इस नयी नैतिकता को वाणी दी। इस नयी नैतिकता में आदर्शवादी आध्यात्मिकता है। निरालाजी की कविताओं में विवेकानन्द के व्यावहारिक दर्शन का प्रभाव है तो प्रसादजी शैव दर्शन के प्रति ममता रखते हैं। अरविन्द दर्शन के प्रति पंतजी की गहरी आस्था एवं भारतीय अद्वैतवाद के प्रति महादेवीजी का गहरा प्रेम इस नई नैतिकता के प्रभावस्वरूप जन्मी आदर्शवादी आध्यात्मिकता के उदाहरण हैं।

साहित्यक परिस्थितियाँ

हिन्दी छायावादी काव्यधारा को यूरोपीय विशेषतया अंग्रेज़ी रोमान्टिक काव्य-धारा के समानान्तर रखकर देखा जा सकता है। अंग्रज़ी स्वच्छन्दतावाद के प्रथम चरण में बर्डसवर्थ, कालरिज जैसे कवि आते हैं। इसके द्वितीय चरण में कीट्स, शेली, बायरन जैसे कवि अधिक विद्रोही भूमिका लेकर आये। इन्होंने प्रचीन संकुचित मान्यताओं के स्थान पर सरल स्वाभाविक काव्य पद्धति, प्रेम भावना एवं नवीन मानवता-वाद की प्रतिष्ठा की। अंग्रज़ी रोमान्टिक काव्यधारा की विशेषताएँ -"प्राचीन रूढियों के प्रति विद्रोह, वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यंजना, रहस्यात्मकता, सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण, प्रकृति में चेतना का आरोप, गीति शैली और व्यक्तिवाद आदि हिन्दी के छायावाद में समान रूप से मिलती है"।[2]यह तो दोनो काव्यधाराओं के दृष्टिकोण की समता का सूचक है। बंगाल के नवजागरण को निकट से जाननेवाले कवीन्द्र रवीन्द्र ने भारतीय राजनीति को प्रभावित किया, साथ ही भारतीय काव्य और दर्शन को आधुनिक रूप दे दिया। यह आश्चर्य की बात नहीं है कि नवीन मानवीय चेतना से सुसंपन्न रवीन्द्रजी अंग्रज़ी स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित हुए थे। रवीन्द्र की कविताओं

---

1. विवेचनात्मक गद्य - पृ.सं. - 61
2. हिन्दी साहित्य का विकास पृ.सं. 285 - डा. गणपति चन्द्रगुप्त।

में छायावाद का पूर्वाभास मिलता है । इसलिए इसमें सन्देह नहीं है कि हिन्दी के छायावादी कवियों पर रवीन्द्र तथा अंग्रेज़ी स्वच्छन्दतावादी कवियों का प्रभाव पडा है । इसका तात्पर्य यह नहीं है कि हिन्दी की छायावादी कविता अंग्रेजी स्वच्छन्दतावादी कविता की प्रेरणा से पैदा हुई है ।

छायावाद के अविर्भाव के मूल में यहाँ की साहित्यिक परिस्थितियाँ प्रधान रही हैं । भारतेन्दू युग में श्रीधर पाठक , चौधरी प्रेमधन जैसे कवि परम्परागत रीति परम्परा से मुँह मोडने लगे थे । सन् 1909 में सरस्वती में प्रकाशित, ललिता प्रसाद के लेख "कविता दरबार" के द्वारा भाषा प्रेम, विद्रोह, विप्लव प्रेम आदि से हिन्दी जनता परिचित हो चुके थे । द्विवेदीयुग के आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी भी बायरन, शैली जैसे रोमांटिक कवियों से प्रभावित थे । इसलिए डा. विश्वंभर नाथ उपाध्याय के शब्दों में -" जिसप्रकार अनन्त समुद्र में एक लहर से दूसरी लहर उत्पन्न होती है, उसीप्रकार द्विवेदीयुग के गर्भ से छायावाद का विकास हुआ । "[1] जीवन और जगत के प्रति छायावादी कवियों का दृष्टिकोण भारतीय है ।

पर यह एक निर्विवाद सत्य है कि छायावाद और रोमान्टिसिज्म को प्रभावित करनेवाले साहित्यिक परिस्थितियों में समानता है । रोमान्टिक कविता के उदय के पूर्व अंग्रेजी कविता में अनैतिकता, सुधारवाद, इतिवृत्तात्मकता, शुष्कता एवं शास्त्रीय रूढियों का बोलबाला था । हिन्दी में द्विवेदीयुग की परिस्थिति भी इससे भिन्न नहीं थी । द्विवेदीयुग की स्थूल इतिवृत्तात्मकता एवं सुधारवादिता के विरोध में छायावाद का उदय हुआ । रोमान्टिक काव्यधारा, फ्रान्स की राज्यक्रांति से प्रभावित थी तो छायावाद लोकमान्य तिलक जैसे उग्रदल के नेताओं की क्रांति से । डा. गणपतिचन्द्रगुप्त के शब्दों में -" फ्रान्स की राज्यक्रांति ने इग्लैंड के कवियों को वैयक्तिक स्वतंत्रता का सन्देश दिया तो दूसरी ओर "स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है", की घोषणा ने हमारे छायावादियों को गुलामी की भावना से मुक्त किया। रोमान्टिक युग के युवकों के सौन्दर्य एवं प्रेम की उन्मुक्त लालसा पर धार्मिक

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा - पृ.सं. 168
डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय ।

संस्थाओं एवं सामाजिक मान्यताओं का अंकुश लगाया हुआ था तो छायावादी युग के प्रेमियो पर हिन्दू समाज की रूढियों का नियंत्रण था । रोमांटिक कवि दैनिक जीवन की असंगतियों, विषमताओं एवं कटुता का त्राण प्रकृति एवं आध्यात्म में ढूंढने को विवश हुए थे, तो हिन्दी कवियों को भी इनसे बढकर कोई आश्रय प्राप्त नहीं था ।"[1]

लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि अंग्रेज़ी रोमान्टिसिज्म और हिन्दी का छायावाद दो शताब्दियों की उपज है । उनकी कालसीमा में पर्याप्त अन्तर है, प्रजातंत्र में जन्मी रोमान्टिक काव्यधारा और गुलामी में जन्मी छायावाद की मनोभूमि में पर्याप्त अन्तर है । डा. प्रेमशंकर के शब्दों में -"पश्चिम का रोमानी काव्य अठारहवीं शती की सांध्यबेला का शशांक है, जबकि हिन्दी का छायावादी काव्य बीसवीं शताब्दी के प्रभात का किरणाधार है । एक ने उस समय स्वयं को वाणी दी जब यूरोप प्रजातंत्र का सुख भोगने लगा था, और दूसरा कारागृह में संघर्ष करते हुए राष्ट्र का स्वर है ।"[2] अत: दोनों काव्यधाराओं की साहित्यक परिस्थितियों में कुछ समानतायें मौजूद हैं, पर दोनों में अन्तर अवश्य है जो बहुत स्पष्ट हैं ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि आधुनिक युगीन सामान्य परिस्थितियाँ भारत की राष्ट्रीय नव जागरण के समान स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के लिए प्रेरणास्त्रोत बन गयी । भारतीय नवजागरण से प्रेरित सांस्कृतिक चेतना और स्वच्छन्दतावादी वृत्ति छायावादी काव्य की मूल प्रेरणा बन गयी। प्रारंभ में पश्चिमी चिन्तन और रचना का प्रभाव इन कवियों पर था, लेकिन धीरे धीरे छायावाद ने अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण किया । अत: विदेशीशासन के परिणाम स्वरूप प्राप्त भारत के आधुनिकीकरण तथा भारत के सांस्कृतिक, साहित्यक, दार्शनिक परम्परा के स्थायन में सहायक देशीय पुनर्जागरण से प्रेरणाप्राप्त छायावाद भारतीय जीवन की एक महिमामयी भूमिका निभाती है ।

---

1. हिन्दी साहित्य का विकास - पृ.सं. 286-87 डा. गणपतिचन्द्रगुप्त
2. हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य - पृ.सं. 70. डा. प्रेमशंकर ।

निराला - छायावाद के प्रवर्तक

छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तक के रूप में महान छायावादी कवियों में किसको प्रतिष्ठित किया जाय, इसके सम्बन्ध में हिन्दी काव्य संसार में अब भी मतभेद समाप्त नहीं हुआ है । छायावाद का प्रवर्तक कौन है - यह अब भी एक पुर्नचिन्तन का विषय रह गया है ।

हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य रामचन्द्रशुक्लजी के अनुसार -"हिन्दी कविता की नयी धारा के प्रवर्तक इन्हीं को विशेषत: मैथिली शरण गुप्त और मुकुटधर पांडेय को समझना चाहिए "[1]। लेकिन शुक्लजी ने अभिव्यंजना शैली को छायावाद माना है । गुप्तजी की फुटकर कविताओं में स्वच्छन्द एवं नये तत्वदर्शन का सूत्रपात तो हुआ, पर उनकी मर्यादावादिता ने इन तत्वों पर प्रहार किया । सन् 1914 में प्रकाशित गुप्तजी के "नक्षत्रनिपात" का जो स्वच्छन्द प्रेम है, इसका उदाहरण है । मुकुटधर पांडेय की कविताओं में भी छायावादी तत्व गौण रूप में ही विद्यमान है । शुक्लजी के मत का खण्डन करते हुए अज्ञेयजी ने लिखा -"गुप्तजी की फुटकर कविताओं में छायावाद का असर तो मिलता है लेकिन उनका काव्य छायावादी काव्यधारा का काव्य नहीं कहा जा सकता । परम्परागत रूढ़ियों की मर्यादा न अलांघते हुए भी नयी संवेदना को ग्रहण करने में गुप्तजी के काव्य को असाधारण सफलता मिली । उनकी फुटकर कविताओं में छायावाद का प्रभाव न लक्षित होता हो ऐसा नहीं है, तथापि उनका काव्य इस धारा के अन्तर्गत नहीं माना जा सकता और उनके पच्चास वर्ष का काव्य कृतित्व नये का आग्रह न करती हुई परम्परा के निर्वाह का ही उदाहरण है ।"[2] डा. विनयमोहनशर्मा छायावाद के प्रवर्तक का श्रेय श्री.माखनलाल चतुर्वेदी को देने के पक्ष में है ।[3]

डा. इलाचन्द्रजोशी अविवादग्रस्त रूप से जयशंकर प्रसादजी को छायावाद के प्रवर्तक मानते है । उनके शब्दों में -" प्रसादजी अविवादग्रस्त रूप से हिन्दी के सर्वप्रथम छायावादी कवि ठहरते हैं । सन् 1913-14 के आसपास "इन्दु" में प्रतिमास

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.सं. 441 - आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ।
2. आज का भारतीय साहित्य - पृ.सं. 385 - श्री अज्ञेय
3. हिन्दी साहित्य का विकास - पृ.स. 287 - डा. गणपतिचन्द्रगुप्त ।

उनकी जिस ढंग की कविताएँ निकलती थीं; जो बाद में "काननकुसुम" के नाम से पुस्तकाकार में प्रकाशित हुई । वे निश्चित रूप से तत्कालीन हिन्दी काव्य क्षेत्र में युग विवर्तन की सूचक थी । श्री श्रीपालसिंह क्षेम भी छायावाद का प्रवर्तन प्रसादजी के भतीजे अम्बिकाप्रसादगुप्त द्वारा संपादित "इन्दु" के फाइलों से मानता है । छायावाद के उन्नायक कवि सुमित्रानंदन पंतजी ने "छायावाद पुर्नमूल्यांकन" में, "भावना की दृष्टि से" प्रसादजी का छायावाद का प्रवर्तक घोषित किया है । डा. गणपतिचन्द्रगुप्त ने अपने इतिहास में जयशंकर प्रसादजी को इस नयी काव्यधारा के प्रवर्तक घोषित करते हुए लिखा है -"हमारे दृष्टिकोण से मैथिली शरणगुप्त, मुकुटधर पांडेय और माखनलाल चतुर्वेदी में छायावाद की प्रवृत्ति गौण रूप में मिलती है, समग्ररूप से इन्हें छायावादी नहीं कहा जा सकता । ऐसी स्थिति में किसी अछायावादी को छायावाद का प्रवर्तक मानना अवास्तविक है । छायावाद का प्रवर्तक अवश्य ही कोई छायावादी होना चाहिए - चाहे प्रसाद हो या पन्त ।"[2] डा. विश्वंभर नाथ उपाध्याय जो प्रसादजी और निरालाजी को छायावादी गंगा को हिन्दी संसार में लानेवाले दो भगीरथ मानते हैं। उनके शब्दों में - " तृतीय प्रवाह के अवतरण में यदि एक भगीरथ की जगह दो भगीरथ स्वीकार किये जाएँ तो भी अनुचित नहीं होगा ।"[3] साथ ही निरालाजी के हिन्दी काव्यसंसार में पदार्पण, उनके शब्दों में -"निरालाजी के व्यक्तित्व और रचनाओं की स्वछन्दता की ओर पाठक द्रुत गति से आकर्षित हुए, अन्य किसी कवि की ओर नहीं हुए ।"[4]

श्री अज्ञेय, प्रसादजी की अपेक्षा पंतजी और निरालाजी को छायावादी काव्यधारा के प्रवर्तक मानने के पक्षधर हैं । उनके शब्दों में -"पंत और निराला की सूक्ष्म शब्द चेतना, स्वरों का उपयोग और भाषा संगीत का गहरा बोध और प्रकृति के प्रति उनका सहज स्फूर्त भाव उन्हें केवल अपने पूर्ववर्तियों और दूसरी शैली के परवर्तियों से अलग करता है, बल्कि नये छायावादी कवियों से भी ।"[5]

---

1. हिन्दी साहित्य का विकास पृ.सं. 287 डा. गणपति चन्द्रगुप्त
2. वही पृ.सं. 287
3. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा पृ.सं. 180
4. वही वही
5. आज का भारतीय साहित्य - पृ.सं. 406 - श्री अज्ञेय ।

यह तो हम सब जानते है कि मैथिलीशरण गुप्तजी, मुकुटधर पांडेयजी और माखनलाल चतुर्वेदीजी की कविताओं में छायावादी काव्य प्रवृत्ति गौण रूप में ही विद्यमान है । अब पुनर्चिन्तन का विषय यह है कि छायावाद के प्रवर्तक का श्रेय उस काव्यधारा के तीन महारथियों में किसको दिया जाय । प्रसादजी के "काननकुसुम" और" प्रेम पथिक" में एक नयी शैली एवं नयी चेतना का उदय तो हुआ था, लेकिन "झरना" के प्रथम संस्करण । 1919 । और "काननकुसुम" की अधिकांश कविताएँ द्विवेदीयुग के निकट हैं । "झरना" के दूसरे संस्करण का प्रकाशन सन् 1927 को हुआ था, प्रसादजी की छायावादी काव्य प्रवृत्तियों से युक्त अधिकांश कविताएँ इसी में संकलित हैं । पंतजी ने सन् 1918-19 काल में ही अपनी "वीणा" बजायी थी । "पल्लव" की रचनाएँ सन् 1923 में सरस्वती में पल्लवित होकर काव्यप्रेमियों के सामने प्रकट हुई थीं । इनमें छायावादी काव्य की विशेषताएँ मौजूद हैं । पर पंतजी ने स्वयं "भावना की दृष्टि से" प्रसादजी को इस काव्यधारा का प्रवर्तक घोषित किया है । तटस्थ दृष्टि से देखने पर पता चलता है कि निरालाजी की "जुही की कली" एक नवीन नाटकीयता एवं संपूर्ण क्रांति के साथ हिन्दी काव्यक्षेत्र में अवतरित हुई है । डा. नगेन्द्र के शब्दों में -" यद्यपि "जुही की कली " का कथ्य रीतिकालीन सा है तथापि अप्रस्तुत विधान, चित्रमयी भाषा, लाक्षणिक वैकिय एवं छन्दमुक्ति आदि सभी दृष्टियों से यह कविता हिन्दी काव्य मे एक स्पष्ट मोड की सूचक है ।[1] इस कविता का रचनाकाल सन् 1916 है । सन् 1923 में "अनामिका " में इसका संकलन हुआ । मतवाला के अठारहवीं संख्या में पहलीबार "जुही की कली" छपी । इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में निरालाजी ने लिखा -"जिस समय आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी "सरस्वती" के संपादक थे, "जुही की कली" "सरस्वती" में छपने के लिए मैंने उनकी सेवा में भेजी थी । उन्होंने उसे वापस करते हुए पत्र में लिखा - आपके भाव अच्छे हैं, पर छन्द अच्छा नहीं, इस छन्द को बदल सकें तो बदल दीजिए । मेरे पास ज्यों ही त्यों तीन-चार साल पडी रही ।[2]" इसी कविता के सम्बन्ध में निरालाजी ने अन्यत्र लिखा -" व्याकरण की शिक्षा पूरी करने के पहले, 'जुही की कली" लिखी थी, जो

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास पृ.सं. 406
2. प्रबन्ध पद्म । पंत और पल्लव । पृ.सं 129

व्याकरण की दृष्टि से बाद की पूरी उतरी"[1]। "जुही की कली" का आदिरूप अब "असंकलित कविताएँ" में संकलित है जिसका प्रकाशन श्री शिवपूजन सहाय द्वारा संपादित "आदर्श" मासिक कलकत्ता वर्ष 1. संख्या 2. मार्गशीर्ष, 1979 में सबसे पहले हुआ था। इसके बाद ही "मतवाला" और "अनामिका" में संशोधित रूप प्रकाशित हुआ था। अतः "जूही की कली" के रचना काल और प्रकाशन काल में पर्याप्त अन्तराल अवश्य है। कवि वचन को सत्य मान लें तो इसका रचनाकाल सन् 1916 है। इसकाल में प्रसादजी और पंतजी की कोई ऐसी कविता नहीं मिलती जिसकी "जुही की कली" से तुलना की जाय प्रकाशन काल के संबन्ध में देखें तो भी प्रसादजी या पंतजी की उस समय की रचनाओं की तुलना में "अनामिका" की कविताएँ अत्यन्त प्रौढ हैं। जूही की कली "अपनी स्वच्छन्दता अप्रस्तुत विधान, प्रकृति चित्रण, तुकान्त हीनता आदि के कारण पूर्वप्रचलित मान्यताओं से एकदम भिन्न थी। विषयवस्तु, अभिव्यक्ति, शैली, भाषा, भाव, छन्द सब में इस कविता ने एक समूल क्रान्ति उपस्थित की। इस प्रकार, निरालाजी की "जुही की कली" छायावादी काव्यधारा की संपूर्ण विशेषताओं को एक साथ उद्घाटित करनेवाली हिन्दी की पहली कविता है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि तटस्थ दृष्टि से विचार करने पर छायावाद के प्रवर्तक का श्रेय निरालाजी को देना उचित है। कविवचन को हम सत्य मान सकते हैं क्योंकि अपने संपूर्ण वैयक्तिक और साहित्यिक जीवन में वे समय के आगे चलनेवाले थे। युगीन आदर्श उनकेलिए पुराने निकले, उनके आदर्श आगामी पीढी के आदर्श बन गये। ऐसे महान सर्जनात्मक व्यक्तित्ववाले निरालाजी के लिए सन् 1916 में "जूही की कली" जैसी युगान्तरकारी कविता का प्रणयन कोई असंभाव्य घटना नहीं हो सकती।

छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

छायावादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं- वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति, विद्रोह की भावना, प्रेमभावना एवं सौन्दर्यचेतना, आध्यात्मिकता,

---

1. निराला की आत्म कथा - पृ.सं. 61। मेरी पहली रचना - प्रस्तोता सूर्यप्रसाद दीक्षित।

राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक चेतना एवं नवीन अभिव्यंजना पद्धति ।

वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति :

वैयक्तिकता या आत्माभिव्यंजकता छायावादी कविता की सबसे बडी विशेषता है । छायावादी कविता व्यक्तिप्रधान कविता है, अत: इसमें वैयक्तिक भावनाओं का होना स्वाभाविक है । छायावादी कवि के लिए अपने अहं की चेतना ही सर्वत्र व्याप्त थी । दुनिया के केन्द्र में वह स्वयं अपने को स्थित देखता था । अत: छायावादी कवि संसार भर की सारी वस्तुओं पर स्वयं को आरोपित करता है । इसलिए उसकी कविता स्वानुभूति निरूपिणी और व्यक्तिनिष्ठ हो गयी है । छायावादी कविता एकप्रकार से आत्माभिव्यंजना की कविता है । उनकी आत्माभिव्यंजना में एक ओर अपनी भावना का आरोप करके बाह्य वस्तुओं का चित्रण किया है तो दूसरी ओर अपने सुखदुख, आशा-निराशा और संघर्ष की सीधी अभिव्यक्ति हुई है । "पल्लव" की कविताओं में पहले प्रकार की सीधी अभिव्यक्ति है तो पंतजी ने " वीणा"और "ग्रंथि" में दूसरे प्रकार की अभिव्यक्ति को अपनाया है । प्रसादजी की "आंसू" और "लहर" में अपने वैयक्तिक सुख-दुखों की सीधी अभिव्यक्ति हुई है । महादेवीजी ने निजी आध्यात्मिक अनुभूतियों की सीधी अभिव्यक्ति दी है ।

रूढियों एवं पराधीनता में बन्धी वैयक्तिकता को पहचानकर, उसकी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति के साथ-स्वर में स्वर मिलाकर आगे बढने के लिए छायावादी कवि आगे आये । अत: छायावादी कवियों की आत्मीयता एवं निजता में अपने व्यक्तित्व के साथ आधुनिक युग के साधारण मनुष्य का व्यक्तित्व भी जुड़ा हुआ है । छायावादी कवियों ने निजी अनुभूति को कल्पना के सहारे अपनी प्रतिभा द्वारा परिष्कृत करके सहृदय पाठक के लिए आसक्त बनायी है । इस अनुभूति प्रधानता ने छायावादी काव्य को सूक्ष्म बनाया है । स्वानुभूति की अभिव्यक्ति गीतिकाव्य में ही अधिक संभव है, इसलिए छायावादी कविता का प्रगीतात्मक बन जाना भी स्वाभाविक था ।

विद्रोह की भावना

छायावादी काव्य में पूंजीवादी युग के मध्यवर्गीय कवि की विद्रोह भावना की अभिव्यक्ति हुई । सब प्रकार के विद्रोह- साहित्यक एवं सामाजिक - उनके काव्य में वर्तमान हैं । साहित्यक दृष्टि से उनका विद्रोह भावपक्ष एवं कला पक्ष दोनों में दिखाई पडता है । उन्होंने परम्परागत काव्य विषयों और काव्य रूढियों के विरूद्ध विद्रोह करके स्वच्छन्द पथ प्रशस्त किया । सामाजिक बन्धनों, मर्यादाओं को वर्जना करते हुए निर्भय होकर छायावादी कवियों ने नवीन विषयों एवं अनुभूतियों को अभिव्यक्ति प्रदान की । अत: छायावादीयुग में काव्यविषयों का विस्तार हुआ - लोकतंत्रिक भावना, सामाजिक भावना, राष्ट्रीयता की भावना - सब की अभिव्यक्ति यहाँ हुई । प्रारंभ में छायावादी कवियों ने द्विवेदीयुगीन स्थूल सौन्दर्य की जगह सूक्ष्म अतीन्द्रिय सौन्दर्य का उद्‌घाटन करके परम्परा के विरूद्ध विद्रोह किया । उन्होंने सामन्ती सामाजिक मान्यताओं के विरूद्ध विद्रोह करके व्यक्ति स्वातंत्र्य का क्रांतिकारी मार्ग अपनाया । छायावादी युगीन राष्ट्रीय भावना में भी विद्रोह का यह स्वर मुखरित है । द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता प्रधान कविता में सुधारवादिता एवं समझौते की भावना थी, लेकिन छायावादी कविता की राष्ट्रीयता में गांधीवाद के प्रभाव स्वरूप प्राप्त खुली और निर्भीक विद्रोह की भावना है । छायावादी काव्य का शिल्प पक्ष भी विद्रोहात्मक था । द्विवेदीयुगीन अभिधाप्रधान काव्यभाषा के स्थान पर छायावाद में लक्षणिक चित्रात्मक भाषा का प्रयोग हुआ । यह चित्रात्मक भाषा द्विवेदीयुगीन भाषा के विरुद्ध विद्रोह का ही परिणाम था । छायावादी काव्य में काव्य मुक्ति की सूचना देकर अवतरित मुक्तछन्द का प्रयोग प्रचलित छन्द के प्रति विद्रोह था ।

छायावादी कवियों की विद्रोहात्मक प्रवृत्ति की विशेषता रही कि उन्होंने जो नया मार्ग अपनाया वह भी बाद में रूढ हो गया। परवर्ती काव्य में छायावादी कवियों ने स्वयं बनायी रूढियों के विरूद्ध विद्रोह किया । पूंजीयुग की स्वतंत्रता का ह्रास हो जाने पर उन्होंने प्रारंभिक छायावादी काव्य की अतिशय कल्पना एवं भावुकता के विरूद्ध विद्रोह करके परवर्तीयुग में जीवन यथार्थ की अनुभूतियों को

अभिव्यक्ति दी । उनकी आदर्शवादी स्वतंत्रचेतना एवं मानववादी आदर्श से प्रेरित विद्रोह भावना की प्रतिक्रिया के रूप में वर्ग संघर्ष एवं वर्ग चेतना का उदय हुआ । यह सामान्य का असामान्य के विरुद्ध विद्रोह कहा जा सकता है । यह विद्रोह वैयक्तिक रूप में प्रयोगवाद में और सामाजिक रूप से प्रगतिवाद में अभिव्यक्त हुआ है । अत: छायावादी काव्य आधन्त विद्रोहात्मक रहा । डा. शंभुनाथ सिंह के शब्दों में -" इस तरह छायावाद की समस्त विकास प्रक्रिया की प्रेरक शक्ति विद्रोह की भावना ही थी ।"[1]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छायावाद में सामाजिक, ऐतिहासिक एवं साहित्यक रूढियों के प्रति विद्रोह के साथ उनसे मुक्ति की आकांक्षा भी निहित है ।

प्रेम भावना

व्यक्तिमूलक विषयीप्रधान छायावादी काव्य की विषयवस्तु प्रेम है । प्रकृति और मनुष्य तथा मनुष्य - मनुष्य का पारस्परिक सम्बन्ध ही इस प्रेम संवेदना का आधार है । कल्पनाशील छायावादी कवियों की प्रेमसंवेदना बहुरंग, बहुमुख और विशाल है । वैयक्तिकता और स्वच्छन्द कल्पना के प्रभाव ने इस प्रेम भावना को उत्प्रेरित किया । वैयक्तिकता ने मानवीय सम्बन्धों का रूप बदल दिया । छायावादी युग में समानता, स्वतंत्रता, विश्वबंधुत्व की भावना और लोकतांत्रिक दृष्टिकोण के कारण स्त्री पुरुष के समानाधिकारिणी और सहयोगिनी बन गयी । इन्हीं विशेषताओं के साथ रतिभाव का चित्रण भी हुआ । पूर्ववर्ती युग के समान प्रेम के लौकिक और अलौकिक रूप की अभिव्यक्ति छायावाद में हुई । डा. रवीन्द्रकुमार के शब्दों में -" छायावादी प्रेम की एक प्रमुख और भास्वर दिशा लौकिक सांसारिक प्रणय की है जो अनुभूति एवं वर्णन की सूक्ष्मता के कारण क्रमश: आध्यात्मिक अलौकिक प्रणय तक का आभास देती है "।[2] छायावादी प्रेम वैयक्तिक था, रतिभाव का आश्रय स्वयं कवि था । दुनिया की सारी वस्तुएँ उनके रतिभाव के आलंबन बन गये । स्त्री के सम्मान के साथ छायावादी काव्य का प्रेम आध्यात्मिक प्रतीत होने लगा ।

---

1. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती - पृ.सं. 116 सं. डा. नगेन्द्र ।
2. छायावाद पुनर्मूल्यांकन पृ. सं. 63

छायावादी कविता में मिलन की अपेक्षा विरहानुभूति का चित्रण अधिक हुआ है। प्रसादजी के "आंसू" और पंतजी के "पल्लव" की अनेक कविताओं में सूक्ष्म आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति है। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर, स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढने के कारण कतिपय छायावादी कविताएँ रहस्यवाद के छोर को छूने लगती हैं। प्रसादजी के प्रेम में भोगवाद और दुखवाद का समन्वय है तो कवि निरालाजी के प्रेम में स्वच्छन्द और मुग्ध श्रृंगार की अभिव्यक्ति है। पंतजी प्रकृति प्रेम के वक्ता रहे। महादेवीजी ने वियोग को काव्य प्रेरणा का स्त्रोत स्वीकार किया है।

संक्षेप में छायावादी कवियों का प्रेम पवित्र और सार्वभौम रहा। उन्होंने प्रेमानुभूति में अपनी मानसिक रागात्मिकता को वाणी देने का प्रयास किया और प्रेम को एक जीवन दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित किया। छायावादी आदर्शवाद ने व्यक्तिगत प्रेम को विश्व प्रेम में और मानवीय प्रेम को प्रकृति प्रेम में बदल दिया। अतः छायावादी कवियों का प्रेम देश, जाति, संस्कृति की विस्तृत धरातल तक फैली हुई है।

सौन्दर्य चेतना:

प्रेम और सौन्दर्य का अटूट सम्बन्ध रहा है। अतः छायावादी काव्य प्रेमकाव्य होने के साथ साथ सौन्दर्य काव्य भी है। महाकवि निरालाजी ने छायावाद को "सौन्दर्यवाद" कहा। छायावादी कवियों ने प्रकृति और नारी से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हुए अपनी सौन्दर्य चेतना का उद्घाटन किया। अतः उनकी सौन्दर्य चेतना दो प्रकार की है -

1. प्रकृति सौन्दर्य।
2. नारी सौन्दर्य।

प्रकृति सौन्दर्य

प्रकृति चित्रण की सचेतन प्रक्रिया छायावाद में उपलब्ध है, जो पूर्ववर्ती काव्यधारा से एकदम भिन्न है। डा. रवीन्द्रभ्रमर के शब्दों में -" छायावाद के अन्तर्गत प्रकृति से जैसा अनुरागपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किया गया है, प्राकृतिक सौन्दर्य को जिसप्रकार की भावानुभूति और रचना का विषय बनाया है, पूर्ववर्ती काव्य में दुर्लभ है।"[1] प्रकृति सौन्दर्य ने छायावादी कवि की भाववेतना को आन्दोलित किया। परम्परा स्वीकृत रीतियों को अपनाते हुए छायावादी कवियों ने प्रकृति चित्रण में एक नया आयाम उपस्थित किया। द्विवेदीयुगीन प्रकृतिचित्रण शुष्क था, जबकि छायावादी प्रकृतिचित्रण उन्हें अपने पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवियों से एकदम अलग करता है।

छायावादी कवियों ने प्रकृति को आलम्बन और उद्दीपन रूप में चित्रित किया है। रीतिकालीन श्रृंगारवर्णन से भिन्न दृष्टिकोण को लेकर प्रकृति को आलम्बन बनाकर उन्होंने चित्रित किया। यहाँ प्रकृति चित्रण में सात्विकता है, श्लीलता है। प्रसादजी की कविता "नागरी -

कहता दिगन्त से मलयपवन,
प्राची की लाज भरी चितवन
है रात घूम आयी मधुवन,
यह अलस की अंगराई है।

प्रकृति के नाना रूपों का चित्रण छायावादी कविता में हुआ है। प्रकृति के कवि पंतजी ने लिखा -

छोड द्रुमों की मृदु छाया
तोड प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बालजाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन
भूल अभी से इस जग को।

छायावाद एक पुनर्मूल्यांकन - पृ.सं. 72

प्रकृति का मानवीकरण छायावादी काव्य की एक देन है । प्रकृति को नारी रूप में चित्रित करते हुए कामायनीकार ने लिखा-

पगली, हाँ संभल ले कैसे छूट पड़ा तेरा अंचल
देख बिखरती है मणिराजी अरी उठा बेसुध चंचल[1]

यहाँ रात्री का मानवीकरण है ।

छायावादी कवि के लिए प्रकृति कुतूहल की वस्तु बन गयी है । प्रकृति सौन्दर्य में मुग्ध कवि यहाँ रहस्यात्मकता की ओर उन्मुख हैं। महादेवीजी के शब्दों में -" इस युग की सब प्रतिनिधि रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यष्टि-गत सौन्दर्य पर चेतना का आरोप भी"[2] महादेवीजी के लिए प्रकृति प्रिय के आगमन की सूचना देती है -

मुस्काता संकेत भरा नभ
अलि ! क्या प्रिय आनेवाले है ।[3]

पंतजी भी विश्वप्रकृति में प्रिय का प्रतिबिम्ब देखता है -

प्रिय कलि कुसुम में आज
मधुरिमा मधु सुषमा सुविकास
तुम्हारी रोम रोम छबि व्याज
छा गया मधुवन में मधुमास

छायावादी कवि ने वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से व्यक्त की है -

क्या यह जीवन, सागर में जलभार मुझे भर देना ।
कुसुमित पुलिनों की क्रीड़ा क्रीड़ा से तनिक न लेना
। पंत, गुंजन ।

---

1. कामायनी प्रसाद
2. स्वाम्बरा संपादकीय लेख पृ.सं. 10
3. संधिनी - महादेवीवर्मा ।

छायावादी कवि ने प्रकृति के कोमल और कठोर रूपों का साकार चित्रण किया है । प्रसादजी की कविता "जागो विभावरी जागरी;" पंतजी की कविता "नौका विहार" आदि प्रकृति के कोमल रूप के निदर्शन है ।

अधिकांश कविताओं में इन कवियों ने प्रकृति के कोमल रूप को ही वाणी दी है । लेकिन पंतजी के " परिवर्तन; निरालाजी के " बादल राग" और "कामायनी" के प्रलयवर्णन में कठोर प्रकृति का साकार रूप अंकित है -

अरे वासुकि सहस्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिन्ह निरन्तर
छोड रहे हैं जग के विक्षत वक्ष स्थल पर
शत शत फेनोच्छ्वसित, प्रबल फुंकार भयंकर
घुमा रहे हैं घनकार जगती का अम्बर
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर
अखिल विश्व ही विवर वक्रकुण्डल दिग्मंडल । [1]

।परिवर्तन पंत।

यहाँ संहारकारिणी प्रकृति का कठोर दृश्य पाठकों के सामने प्रस्तुत है । छायावादी प्रकृतिवर्णन के संबन्ध में अज्ञेय ने लिखा -" छायावाद ने प्रकृति को नया सौन्दर्य और अर्थ दिया, जो उसे न केवल उससे तत्काल पहले खडीबोली के युग से अलग करता है, बल्कि खडीबोली के उत्थान से पहले के सभी युगों से अलग करता है । " [2] अज्ञेयजी का यह कथन अक्षरश: सत्य है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छायावादी कविता में प्रकृति अनेक रूपों में प्रकट होती है । छायावादी कवि के लिए वह मानवी है, संगिनी है, प्रेयसी है । आलंबन, उद्दीपन जैसे परम्परा स्वीकृत रीतियों को भिन्न दृष्टिकोण से अपनाने

---

1. आधुनिक कवि - पृ.सं. 36 - पंत
2. स्वाम्बरा संपादकीय लेख - पृ.सं. 10 श्री अज्ञेय

के साथ नाना रूपों में प्रकृति का वर्णन छायावाद में हुआ है । पंतजी के शब्दों में कहें तो -"समस्त काव्य प्राकृतिक सुन्दरता के धूप - छांह से बना हुआ है"[1]।

नारी सौन्दर्य

छायावादी काव्य में पहली बार स्त्री के नैसर्गिक सौन्दर्य एवं उन्मुक्त व्यक्तित्व को प्रतिष्ठा हुई । द्विवेदीयुगीन नारी अबला थी, यहाँ अबला के व्यक्तित्व एवं सौन्दर्य को स्वीकृति मिली ।प्रेमजन्य वेदना की स्वाभाविकता के कारण इन कवियों का नारीवर्णन स्वाभाविक रहा । छायावादी नारी माँ है, सहचरी है जननी है, प्रेयसी है । वह पुरुष के लिये कौतूहल की वस्तु नहीं, बल्कि उसके व्यक्तित्व का निर्माता है इसी कारण उनका नारीचित्रण अपेक्षाकृत सूक्ष्म और गहरा है। कामायनी में प्रसादजी ने नायिका श्रद्धा का सौन्दर्यांकन किया है -

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ वन बीच गुलाबी रंग ।[2]

डा.विश्वंभरनाथ आध्याय ने लिखा है कि छायावादी कवियों ने नारी की कोमल भावनाओं के साथ समरस होकर पुरुष और पुरुष के सहयोग से नारी के व्यक्तित्व को विकसित किया है । प्रेम की परिणिति छायावाद की महान उपलब्धि है ।[3]

---

1. मैं और मेरी कला - पृ.सं. 41
2. कामायनी - पृ.सं. 46 प्रसाद
3. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा - पृ.सं. 216 ।

नारी का प्रेयसि रूप छायावादी कवि के लिए सबसे प्रिय है । छायावादी काव्य में वह प्रेम का प्रतीक है, गंगाजल के समान शीतल और पवित्र है । कामायनी में वह सजल संसृति के पतवार को हाथ में लेकर जीवन को आगे बढानेवाली है । प्रसादजी के शब्दों में -

नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पगतल पर
पीयूष स्रोत सी बहा करो
जीवन के सुन्दर समतल में ।[1]

छायावादी नारी सौन्दर्य वर्णन में स्थूल क्रियाव्यापारों की अपेक्षा भाव दिशाओं का चित्रण अधिक है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छायावादी कवियों ने परम्परा से अलग एक दृष्टिकोण को लेकर नारी सौन्दर्य का वर्णन किया है । यहाँ नारी के व्यक्तित्व को प्रतिष्ठा मिली है ।

राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिकचेतना

छायावादी कवियों की राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक चेतना में तत्कालीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक परिस्थितियों का प्रभाव है । इस युग में पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के फलस्वरूप भारत में राष्ट्रीय एकता का जन्म हुआ । इसके अतिरिक्त छायावादी काव्य पर श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामि विवेकानन्द, रवीन्द्र, महात्मागांधी, महर्षि अरविन्द जैसे महापुरुषों की विचारधारा का प्रभाव पड़ा । द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता का उदात्त रूप छायावादी कविता में प्रस्फुरित हुई है । अतः छायावदी कवि का देशप्रेम सूक्ष्म और भावात्मक रहा । छायावादी कवियों ने अपने भावात्मक दृष्टिकोण के द्वारा राजनीतिक अस्वतंत्रता जैसी युगीन समस्याओं की ओर दृष्टि डाली और इन्हें सुलझाने के लिए इतिहास, वेद और उपनिषदों का सहारा लिया ।

---

1. कामायनी - पृ.सं. 106 - प्रसाद

प्रसादजी अरुण यह मधुमय देश हमारा, हिमाद्रि तुंग श्रृंग से" जैसी कविताओं में भारत के अतीत गौरव का वर्णन करते हैं और यवनों के भारत आक्रमण की पृष्ठभूमि में अस्वतंत्र भारत की जनता को जागरण का सन्देश देते हैं -

हिमाद्रि तुंग श्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्वला
स्वतंत्रता पुकारती
अमर्त्य वीर पुत्र हो
दृढ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पंथ है
बढे चलो बढे चलो ।

यहाँ विदेशी कार्नेलिया भारत की महिमा का गीत गाती है । निरालाजी का "तुलसीदास" मुगल शासनकालीन भारत की राजनीतिक धार्मिक परिस्थितियों का चित्र प्रस्तुत करता है । छायावादी कवियों में निरालाजी तत्कालीन राष्ट्रीयता के प्रति अधिक सचेत रहे ।

संक्षेप में राष्ट्रीयभावना से ओतप्रोत देशप्रेम छायावादी कविता की प्रमुख विशेषता रही । इस राष्ट्रीयता में स्वतंत्रता की व्यापक भावना है जिसमें मानव की नैतिक सांस्कृतिक मुक्ति की भावना भी निहित है ।

शिल्पपक्ष

छायावादी कवियों ने अपने नवीन कथ्य की अभिव्यक्ति के लिए नवीन अभिव्यंजना पद्धति का सहारा लिया । इसलिए उनके काव्य का शिल्प पक्ष सर्वाधिक समृद्ध है । इस शिल्प पक्ष के अन्तर्गत काव्य भाषा, बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत विधान, छन्द एवं काव्यरूप आते हैं ।

चन्द्रगुप्त । नाटक । प्रसाद

काव्यभाषा

द्विवेदीयुग में काव्यभाषा के रूप में खडीबोली को स्वीकृति हुई । भाषा का परिष्कार और संस्कार तो द्विवेदीयुग में हुआ लेकिन इन कवियों को भाषा के अभिधात्मक प्रयोग से तृप्त हो जाना पड़ा । ऐसी भाषा में सौन्दर्य और सौकुमार्य लाने का कार्य छायावादीयुग में संपन्न हुआ । छायावादी कवियों ने भाव समन्वित भाषा से लेकर लाक्षणिक चित्रमय भाषा तक का प्रयोग करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया । छायावादी काव्य भाषा डा. रवीन्द्रभ्रमर के शब्दों में -" छायावाद युग के कवियों ने अपने अन्तर्मन को सुकुमार गोपन एवं गूढ अनुभूतियों को वाणी देने के लिए भाषा के इस नवीन स्वप्न की साधना की थी । अतएव यह भाषा इशारों में बात करती है, संकेतों में मुस्कराती है, और जब कभी मुखर होती है तो इसमें आभ्यन्तर की अनगूंज सुनाई देती है । भाषा का ऐसा परिष्कृत, अनुशासित, सूक्ष्म एवं सहज सुन्दर विधान छायावादी शैली की अद्वितीयता का एक अनिवार्य लक्षण बन गया है ।"[1] बिम्बविधान के द्वारा छायावादी कवियों ने भाषा की अभिव्यंजना क्षमता को बढाने का प्रयास किया है । शब्दों का सांगीतिक विधान छायावाद में हुआ है ।

उदा: पंतजी की कविता -

बांसों की झुरमुट लता का झुटपुट
है चहक रही चिडियाँ टीवी टी टुट -

भाव और प्रसंग के अनुसार बदलती है छायावादी कवियों की भाषा।पंतजी के"परिवर्तन" और निरालाजी की "राम की शक्तिपूजा " की भाषा इसके उत्तम उदाहरण है । प्रसादजी की रसात्मकता, पंतजी की कोमलता, निरालाजी की ओजस्विता और महादेवी की मधुरिमा ने छायावादी भाषा को संवारा ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि अलंकृत, भावानुगामिनी, प्रसंगानुकूल काव्यभाषा छायावादी काव्यधारा की अपनी संपत्ति है ।

---

1. छायावाद एक पुनर्मूल्यांकन - पृ.सं.175 -डा. रवीन्द्रभ्रमर
2. आधुनिक कवि पृ.सं - 67 - पंत ।

बिम्बविधान

कवि की सौन्दर्यचेतना की उत्कृष्टता उसके बिम्ब विधान में परिलक्षित होती है । मौलिक बिम्ब विधान की दृष्टि से छायावादी कविता में शब्द बिम्ब, समानुभूतिक बिम्ब, व्यंजनाप्रधान समानुभूतिक बिम्ब और असंवेष्टित बिम्ब की प्रधानता है।

शब्द बिम्ब के लिए निरालाजी की, "संध्या सुन्दरी" उत्तम उदाहरण है । वर्णबिम्ब के प्रयोग के लिए उनकी कविता -

झर झर झर निर्झर-गिरि सर में
घर मरु तरु मर्मर सागर में[1] - उदाहरण के रूप में किया जा सकता है । पंतजी की कविता -

बासों की झुरमुट, संध्या का झुटपुट
है चहक रही चिड़ियाँ टीवी टी टुट् टुट्[2] - श्रावण बिम्ब के लिए प्रसिद्ध है । समानुभूतिक बिम्ब में द्रष्टा, दृश्य, विचारक और वस्तु भावधन होकर मानसिकधरातल पर एकाकार हो जाते हैं । व्यंजना प्रधान सामासिक बिम्ब में एक उत्प्रेक्षासुलभ संक्षिप्तता है । उदा: प्रसादजी की आंसू कविता से -

संध्या की मिलन प्रतीक्षा
कह चलती कुछ मनमानी
उषा की रक्त निराशा
कर देती अन्त कहानी ।[3]

असंवेष्टित बिम्ब में मालोपमा या सांगरूपक के सादृश्य का विस्तार है । कामायनी में अमूर्तभावों का मूर्तिकरण बिम्ब पर्यवसायी बन जाता है -

नीरव निशीथ में लतिका सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती?
कोमल बाहें फैलाए सी
आलिंगन का जादू बढ़ती ।[4]

5 ---

1. परिमल - पृ.सं. 13? 2. आधुनिक कवि पृ.सं. 67 - पंत
3. आंसू - प्रसाद पृ.सं. 52 - पंचम संस्करण आंसू पृ.सं. 52 प्रसाद
4. कामायनी - पृ.स. 97 - प्रसाद

यह असंवेष्टित बिम्ब का उत्तम उदाहरण है । छायावादी कवियों में वास्तु बिम्बों का नयनाभिराम दृश्य पंतजी की कविताओं में अधिक है । वस्तुकला, मूर्तिकला , संगीतकला एवं चित्रकला से गृहीत शब्दावली से निर्मित बिम्ब, ऐन्द्रिक बोध पर निर्मित बिम्ब सब छायावादी कविता में मौजूद है । छायावादी कवियों ने संस्कृत काव्य से भी जीर्ण बिम्बों को नयी संवेदना के सन्दर्भ में नयी अर्थ शोभा प्रदान की और कहीं संस्कृत के पुराने बिम्बों का सीधा प्रभाव ग्रहण किया ।

संक्षेप में कह सकते हैं कि छायावादी कविता का बिम्ब विधान अनुपम है, वह उसके कोमल प्रकृति और सुकुमार भावों के अनुकूल है ।

प्रतीक

छायावाद के महान कवि प्रसादजी ने प्रतीक के सम्बन्ध में अपनी धारणा व्यक्त की है । उनके शब्दों में -" आलंबन के प्रतीक उन्हीं के लिए अस्पष्ट होंगे, जिन्होंने यह नहीं समझा है कि रहस्यानुभूति युग के अनुसार अपने लिए विभिन्न आधार चुना करती है ।"[1] कलाजगत में सौन्दर्य बोध को मूर्त बनाने और संवेदनों को आकार देने का कार्य प्रतीकों द्वारा ही होता है । पंतजी ने प्रतीकों का सम्बन्ध मानव चेतना से जोडा है । उनकी "वाणी" शीर्षक कविता में प्रतीक अव्यक्त को व्यक्त बनाती हें -

जो अव्यक्त रहा अन्तर में
मुक्त अगीत रहा ध्वनिस्वर में
उसे प्रतीकों ही में बिम्बित [2]
रहने दो, रहने दो

पंतजी ने भावात्मक अर्थ द्योतक प्रतीकों का चयन किया । "पल्लव" और "गुंजन" की कविताओं में भावात्मक प्रतीकों की भरमार है । प्रसादजी की कविताओं में दार्शनिकता प्रतिपादन के सन्दर्भ में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग किया है । उनके प्रतीक मनोदशा के व्यंजक होते हैं और प्रकृति से गृहीत हैं । उनके प्रतीक स्वस्थ उपमान के उदाहरण देखिए -

---

1. गीतिका के दो शब्द - प्रसाद
2. वाणी - पृ.सं. 41 - पंत

झंझा झकोर गर्जन था,
बिजली थी, नीरदमाला
पाकर इस शून्य हृदय को
सबने आ डेरा डाला ।[1]

छायावादी कवियों में निरालाजी ने प्रसंगानुसार साधनामूलक प्रतीकों का चयन किया है । उनकी "राम की शक्तिपूजा" इसका उदाहरण है । श्रीमती महादेवीवर्मा ने अपने प्रारंभिक कृतियों में जिन अप्रस्तुतों का प्रयोग बिम्ब के धरातल पर किए हैं वे उनकी परवर्ती रचनाओं में प्रतीक बन गये हैं । भावों की व्यंजना के लिए उन्होंने प्रकृति के अनेक प्रतीकों को अपनाया है, उनमें रहस्यात्मकता है ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि छायावादी कविता में प्रतीकों की अपेक्षा प्रकृति के विशाल क्षेत्र से गृहीत प्रतीक स्वल्प उपमान हैं । उनके प्रतीकों में अनेकार्थता और अभिव्यक्ति के नये नये मार्गों की तलाश की आकुलता है । समृद्ध कलाचेतना से संपुष्ट छायावादी कविता में काव्येतर ललित कलाओं के प्रतीक भी हैं । उनके प्रतीकों में कहीं कहीं उपनिषद का प्रभाव है ।

अप्रस्तुत विधान

छायावादी कवियों ने अपने काव्य में सूक्ष्म और परोक्ष सौन्दर्य का अधिक उद्घाटन किया है । अलंकार तो काव्य के शरीर से सम्बन्धित है, आत्मा से नहीं । भावात्मक सत्ता को सौन्दर्य मानकर उन्होंने अलंकार को अधिक महत्त्व नहीं दिया । अतः स्थूल सामंती अलंकृति के विरोध में जन्मी छायावादी कविता में केवल स्वाभाविक स्वतः स्फूर्त अलंकारों का ही प्रयोग हुआ । वे अलंकार काव्यशरीर के अंग बन गये है । डा. शंभुनाथ सिंह के शब्दों में -" भाषा की शक्ति के उच्छल प्रवाह के साथ उनकी कविता में बहुत से अलंकार स्वतः आ गये है ।"[2] छायावादी कवियों ने भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों प्रकार के अर्थालंकारों का अधिक प्रयोग किया है । यह अलंकार

---

1. आंसू - प्रसाद - नवम संस्करण - पृ.सं. 15
2. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती - पृ.सं. 123 - संपादक - डा. नगेन्द्र

योजना भावसाम्य के आधार पर हुई है । उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों की योजना में उन्होंने नवीन अप्रस्तुतों का प्रयोग किया । छायावादी कवि ने मूर्त उपमेय के लिए अमूर्त उपमान और अमूर्त केलिए मूर्त उपमान की सुन्दर योजना की । विरोधाभास जैसे विरोधमूलक अलंकारों का चयन भी उन्होंने सफलता पूर्वक किया है । पाश्चात्य अलंकारों में मानवीकरण, ध्वन्यात्मकता, विशेषण विपर्यय और विरोध उनकेलिए प्रिय रहे । अलंकार रहित कविता छायावाद की अपनी विशेषता है । उनकी कविता का सौन्दर्य अलंकार के बिना भी आकर्षित करनेवाला है । संस्कृत परम्परा से चले आ रहे अलंकारों के अपमेय व उपमान में उन्होंने नूतनता लाने का प्रयास किया ।

छन्द: छायावादी कवियों को नये छन्दों की अनिवार्यता महसूस होने लगी । उन्होंने प्रचलित लोक धुनों को मात्रिक छन्द पद्धति में ढाल दिया । उसमें परिमार्जन , परिवर्धन करके संस्कार किया और हिन्दी छन्दों की परम्परा में इन्हें भी जोड दिया । इस प्रकार उन्होंने हिन्दी काव्य के लिए नये छन्दों का मार्ग खोला । लोकप्रचलित गान शैली "आल्हा" छन्द के आधार पर उन्होंने नय विधान का अविष्कार किया । प्रसादजी ने कामयनी में इसी छन्द का आविष्कार किया है । पंतजी ने आल्हा के लावणी गीतों की पद्धति अपनायी । महाप्राण निरालाजी की मुक्ति की तीव्र आकांक्षा नेमुक्तछन्द या स्वच्छन्द छन्द को जन्म दिया । तुक और लय छायावादी संगीत के प्राण हैं ।

उदा पंतजी की कविता "नौका विहार" ।

इस प्रकार छायावादी कवियों ने पूर्ववर्ती छन्द की अपर्याप्तता पहचानकर हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल पुराने छन्दों का संस्कार किया जिसे परवर्ती कवियों ने स्वीकार किया ।

काव्यरूप

काव्यरूपों की समृद्धता छायावाद की विशेषता है । इस युग मेंमुक्तछन्द के गीतों

की रचना पर्याप्त मात्रा में हुई । "आंसू" "तुलसीदास" जैसे खण्डकाव्यों का प्रणयन भी इस युग में हुआ । "कामायनी" छायावाद युग का एकमात्र महाकाव्य है जिसमें छायावादी संवेदना, अपनी समग्रता के साथ मूर्तिवत् बन गयी है । "सरोज स्मृति" छायावादी काल का शोकगीत है । "राम की शक्तिपूजा" जैसी लम्बी प्रबन्धकाव्यात्मक कविताओं का प्रणयन भी छायावाद की विशेषता है, इस विधा को परवर्ती कवियों ने स्वीकार किया । अतः काव्यरूप की दृष्टि से छायावाद परम्परित ढांचे के बाहर है । सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि वैयक्तिकता के इस युग में गीत-प्रगीतों की प्रधानता रही ।

निराला की कविता में छायावादी काव्य प्रवृत्तियाँ

सन् 1916 में हिन्दी काव्यक्षेत्र में पदार्पण करनेवाले श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के काव्य में छायावादी काव्य प्रवृत्तियों का विश्लेषण उनकी "परिमल" "गीतिका", "अनामिका" और "तुलसीदास" जैसी कृतियों के आधार पर ही किया जा सकता है ।

वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति

छायावादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषता, वैयक्तिकता या आत्माभिव्यक्ति का जितना आभास निरालाजी की छायावादी कविताओं में है, उतना किसी अन्य कवि में नहीं । लेकिन अपने वैयक्तिक संवेदन को सामाजिक संवेदन के साथ जोडने में निरालाजी सिद्धहस्त है । उन्होंने सन् 1916 में जुही की कली" को प्रिया और मलयानिल को चिरन्तन प्रेमी घोषित किया । रोमानी काव्य की नयी संभावनाओं की ओर संकेत करनेवाली इस प्रौढ रचना में, महिषादल में रहनेवाले कवि स्वयं मलयानिल हैं । मनोहरादेवी को " जुही की कली" के रूप में अवतरित करके अपनी वैयक्तिक अनुभूति को भारतीय समाज के जीवन की प्रणयप्रसंग, उसकी सफलता और सफलता के मार्ग की बाधाओं की ओर संकेत करके अपनी वैयक्तिक अनुभूति को अधिक

उदात्त समाज सापेक्ष बनाने में निरालाजी सफल हुए हैं ।

"परिमल"के प्रारंभिक गीतों में वैयक्तिक अनुभूतियों का योग है । "विफल वासना" शीर्षक कविता में निरालाजी अपने वैयक्तिक जीवन की पीड़ा और विपन्नता की ओर संकेत करते हैं -

चुभते पर हाय नाथ,
मर्मस्थल में जो शूल,
तुम्हें कैसे प्रिय बतलाऊँ मैं '
कैसे दुख गाथा गाऊँ मैं ।[1]

बौद्धिक प्रतिक्रियाओं से युक्त वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति निरालाजी की कविता में देखिए -

सरल अति स्वच्छन्द
जीवन, प्रात के लघु-पात से
उत्थान-पतनाघात से
रह जाय चुप, निर्द्वन्द[2]

"गीतिका" निरालाजी की वैयक्तिक अनुभूतियों की विजय गाथा है । यहाँ भी उनका व्यक्तिसंवेदन समाज संवेदन के साथ एकाकार हो जाता है । गीतिका के कई गीतों में उनके पार -छः वर्ष की जीवन संगिनी मनोहरादेवी इतनी समाई हुई है कि उनके काव्य से उसे अलग करने का सामर्थ्य किसी में नहीं । "गीतिका" के स्नेह भरे समर्पण में तथा गीतों में कविप्रिया का आभास सब कहीं है । वे प्रिया के चले जाने के बाद इस संसार को सूना कहते हैं -

तुम छोड गये पार
तब से यह सूना संसार ।
अपने घुंघट में मैं ढककर

---

1. परिमल पृ.सं. 124 - 125
2. परिमल -पृ.स. 23

देखती नहीं भीतर रखकर
पवनाग्वन में जैसे सुखकर
मुकुल सुरभिभार ।
गये सब पराग, नहीं ज्ञात
शून्यडाल, रही अन्ध रात ।

"गीतिका" के एकाध गीतों में "मनोहरा" नाम तक आया है -

रंग गयी पग पग धन्यधरा
जग जगमग मनोहरा [2]

"अनामिका" निरालाजी के काव्यजीवन की एक महत्वपूर्ण मोड को सूचना देती है । इसमें संकलित "सरोज-स्मृति" निरालाजी के वैयक्तिक जीवन की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति है, साथ ही उसमें सामाजिक विषमताओं और रूढियों के प्रति कवि की प्रतिक्रिया व्यक्त की है । वैयक्तिक हानि के अवसर पर भी वे सामाजिक सांस्कृतिक हृदय के प्रति बोधवान रहे । अपने पारिवारिक एवं साहित्यक जीवन के संघर्षों को उन्होंने "सरोजस्मृति" में वाणी दी है । वैयक्तिक जीवन के इन संघर्षों एवं पराजयों को उन्होंने हिन्दी का स्नेहोपहार मानकर स्वीकार किया -

सोचा है नत हो बार बार
यह हिन्दी का स्नेहोपहार,
यह नहीं हार मेरी, भास्वर
यह रत्नहार - लोकोत्तर वर । [3]

अतः संरोजस्मृति" कवि के वैयक्तिक जीवन की पीड़ा, वेदना, दुखदर्द और उतार-चढाव का इतिहास है । लेकिन इसका उत्तरदायी समाज है ।

हिन्दी संसार ने निरालाजी के काव्य और छन्द की उपेक्षा की दृष्टि से देखा । इसकी वेदना और दुख उन्होंने हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र में व्यक्त किया -

ईर्ष्या नहीं मुझे, यद्यपि
मैं हो वसन्त का अग्रदूत

---

1. गीतिका पृ.सं. 55,
2. गीतिका पृ.सं. 79
3. अनामिका पृ.सं. 123

ब्राह्मण समाज में ज्यों अछूत
मैं रहा आज यदि पार्श्वच्छवि [1]

निरालाजी की वैयक्तिकता में ओज, पौरुष एवं आत्म विश्वास है-

अभी न होगा मेरा अन्त ।
अभी अभी ही तो आया है
मेरे जीवन में मृदुल वसन्त
अभी न होगा मेरा अन्त [2]

इस आत्मविश्वास के साथ कवि अपने काव्य जीवन में उत्तरोत्तर अग्रसर होते दिखाई देते हैं। "वनबेला" वास्तव में गलत सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध न समझौता करनेवाले कवि की वैयक्तिक प्रतिक्रिया है। "दुख ही जीवन की कथा रही, क्या कहूँ आज जो नहीं कही"- सरोजस्मृति के इन पंक्तियों में निरालाजी के हृदय की वेदना समाज की वेदना के साथ एकाकार हो गयी है तो "वनबेला" में कवि ने अपने काव्य जीवन की असफलता की ओर संकेत किया है -

हो गया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार [3]

वैयक्तिक जीवन की अभिव्यक्ति का प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप निरालाजी की कविता में है। "राम की शक्ति पूजा" में निरालाजी की वैयक्तिक अनुभूति की अभिव्यक्ति परोक्ष रूप में हुई है। यहाँ कवि ने अपने वैयक्तिक जीवन के परोक्ष रूप का चित्रण राम के संघर्षपूर्ण जीवन की भर्त्सना के माध्यम से किया है -

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध! [4]

राम के मन का संघर्ष युग बोध से जुड़े हुए निराला का आत्मसंघर्ष है। यहाँ राम संशयग्रस्त है। घोर अन्धकार में समुद्र की पृष्ठभूमि पर राम की सभा का चित्रण है -

---

1. अनामिका पृ.सं. 118
2. परिमल - पृ.सं. 93
3. अनामिका - पृ.सं. 86
4. अनामिका पृ.सं. 167

है अमा निशा उगलता गगन घन अन्धकार;
हो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध है पवन चार
अप्रतिहत गरज रहा अम्बुधि विशाल !
भूधर ज्यों ध्यान मग्न, केवल जलती मशाल ।[1]

यहाँ का "घन अन्धकार" कवि के अन्धकारमय वैयक्तिक जीवन की ओर संकेत करता है । अन्धकार के बीच का मशाल राम के उस चेतन अपराजेय व्यक्तित्व का प्रतीक है, जो कभी न थकनेवाला है, जिसे संघर्ष का नेतृत्व करना है -

वह एक और मन रहा राम का जो न थका
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय ।[2]

यह राम विपन्नता और संघर्ष में अटूट रहनेवाले महाकवि निराला के अपराजेय व्यक्तित्व का प्रतीक है । डा. प्रेमशंकर के शब्दों में - 'राम की शक्तिपूजा' में पौराणिक आख्यान के साथ निराला का व्यक्ति भी अन्तर्निहित है और कहा जा सकता है कि राम में कई बार स्वयं निराला इस रूप में प्रवेश कर गये हैं कि दोनों को अलग पाना कठिन है । कवि के जीवन संघर्ष राम में मौजूद है ।[3]

निरालाजी के खण्डकाव्य "तुलसीदास" की नायिका रत्नवली में भी कविप्रिया मनोहरादेवी का आभास है । लेकिन कवि की विद्रोहात्मकता, यथार्थवाद और वेदान्ती दर्शन ने मनोहरा को वैयक्तिक संवेदन से ऊपर उठाकर और अधिक उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित किया । तुलसीदास का आत्मसंघर्ष निरालाजी का आत्मसंघर्ष है ।

विद्रोह की भावना

महाकवि निरालाजी की जीवन गाथा ही विद्रोह की कहानी है, उनकी छायावादी कविताओं का भावपक्ष और शिल्पपक्ष विद्रोहात्मक रहा । "परिमल" का कवि निरालाजी भाव, भाषा और छन्द की दृष्टि से विद्रोही हैं । "परिमल" की भूमिका में उन्होंने साहित्य के राजपथ पर साहित्यकों के स्वतंत्र विहार के लिए मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की मुक्ति घोषित की । "परिमल" में संकलित

---

1. अनामिका पृ.सं. 154
2. अनामिका पृ.सं. 167
3. हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य - पृ.सं. 253 डा. प्रेमशंकर

"जुही की कली" इस मुक्ति की घोषणा करनेवाली हिन्दी की प्रथम कविता है । छायावादी काव्य की नयी संभावनाओं का उद्घोष करनेवाली "जुही की कली" की रचना मुक्तछन्द में हुई है । मुक्तछन्द में लिखी यह कविता छन्दगत बन्धन से विद्रोह की घोषणा करती है । गतानुगतिका के प्रति निरालाजी के विद्रोह का श्रीगणेश इस रचना द्वारा हुआ, ऐसा कहा जा सकता है ।

"परिमल" में बादल से सम्बन्धित छः कविताएँ हैं । "बादलराग" शीर्षक कविता विद्रोही चेतना से भरपूर है । इसमें बादल स्वच्छन्द, उद्दाम और बाधा रहित है, सावन के घोर गगन का सम्राट है । साथ ही-

> कम्पित जंगम - नीड विहंगम
> ये न व्यथा पानेवाले
> भय के मायामय आँगन पर
> गरजो विप्लव के नव जलधर[1]

यहाँ गरजनेवाले बादल क्रांति के अग्रदूत हैं, उनके गरजन सुनकर भूमि के हृदय की अभिलाषायें जग उठती है, पौधे हँसकर खुशी प्रकट करते हैं । लेकिन "विप्लव के वीर" बादल के आगमन पर धनी काँप उठते हैं -

> रुद्ध कोष है क्षुब्ध तोष
> अङ्गना - अंग से लिपटे भी
> आतङ्क - अङ्क पर काँप रहे हैं
> धनी, वज्र गर्जन से बादल ।[2]

उनके बादल कहीं विप्लव के नव जलधर है तो कहीं व्याकुल श्यामा के अधरों की प्यास बुझानेवाले धरा के सेवक हैं । क्रांति के द्वारा नयी व्यवस्था की आकांक्षा रखनेवाले विद्रोही कवि निरालाजी ही बादल के निर्माणकारी एवं संहारकारी रूप देख सकते हैं ।

स्वच्छन्दतावादी आत्माभिव्यक्ति के युग में निरालाजी के "दीन", "भिक्षुक", "विधवा" जैसी कविताओं में सामाजिक मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोही स्वर मुखरित है ।

---

1. परिमल - पृ.सं. - 134
2. परिमल - पृ.सं. - 139

स्वच्छन्दतावादी युग की यह यथार्थवादी चेतना उनके विद्रोही कृतित्व का परिचायक है ।

इतिहास साक्षी है कि वैयक्तिक एवं साहित्यक जीवन में विद्रोही होने के कारण कवि को हर क्षेत्र में संघर्ष और पीडा सहनी पडी । अत: कवि के विद्रोह की चरम परिणिति है उनकी वेदना । इस वेदना ने कहीं उनकी विद्रोही चेतना को व्यंग्यात्मक रूप दिया है । आर्थिक विपन्नता के साथ कवि की नयी भावभूमि को न समझनेवाले आलोचकों के शिकार बनी कवि की प्रतिक्रिया "सरोजस्मृति" में है -

कवि जीवन में भी व्यर्थ व्यस्त
लिखा अबाध गति मुक्तछन्द
पर संपादक गण निरानन्द
वापस कर देते थे पढ तत्वर
दे एक-पंक्ति-दो में उत्तर ।[1]

"सरोज स्मृति" में कवि जातिगत, समाजिक, साहित्यक रूढियों पर प्रहार करते हुए कनौजियों के सम्बन्ध में कहते हैं -

ये कन्याकुब्ज कुल-कलंगार
खाकर पत्तल में करें छेद
इनके कर कन्या, अर्थ खेद,
इस विषय बेलि में विष ही फल
यह दग्ध मरुस्थल - नहीं सुजल ।[2]

निरालाजी ने कनौजियों की पुरानी मान्यताओं के विरुद्ध अपनी पुत्री का विवाह स्वयं पुरोहित बनकर विद्रोहात्मक ढंग से किया । "भाग्य अंक" को तोडने की वह विद्रोह की प्रवृत्ति छायावादी कवियों में निरालाजी में ही है ।

"वनबेला" का कवि स्त्री या फूल को "बोझ" कहकर बेचने - खरीदनेवाली सामन्ती व्यवस्था के प्रति आक्रोश प्रकट करते हैं -

केवल आधा खोया, खेला
इस जीवन में । 3

---

1. अनामिका पृ.सं. 126
2. अनामिका पृ.सं. 132-133
3. अनामिका - पृ.सं. 91

"तुलसीदास" खण्डकाव्य के नायक तुलसी मध्ययुगीन चरितनायक नहीं बल्कि विद्रोही छायावादी कवि निराला हैं । इसमें कवि अपनी विद्रोही चेतना को सांस्कृतिक नवोत्थान से जोडकर, परम्परा के प्रगतिशील तत्वों के विकास की ओर अग्रसर होते हैं। कवि की विद्रोही चेतना ने भाव, भाषा, छन्द, साहित्य, जीवन, समाज, सभी की बाधा और बन्धन के विरुद्ध लडने की प्रेरणा दी । विद्रोहात्मकता से उत्पन्न इस स्वच्छन्दता और फक्कड्पन में वे भक्तकवि कबीर के निकट हैं ।

अत: संक्षेप में हम कह सकते हैं कि विरोध और संघर्ष का सामना करते हुए, रूढियों को तोडकर छायावादी हिन्दी कविता को नये मार्ग की ओर प्रवाहित करनेवाले निरालाजी में विद्रोह अन्य छायावादी कवियों की तुलना में सर्वाधिक मात्रा में लक्षित होता है ।

सौन्दर्यचेतना

निराला के व्यक्तित्व के समान उनके काव्य में भी जीवन सौन्दर्य का सन्निवेश है । मानव और प्रकृति के भावात्मक सौन्दर्य का जैसा वैविध्यपूर्ण चित्रण उन्होंने किया है, उतना किसी अन्य कवि ने नहीं । अत: उनकी सौन्दर्य चेतना को हम दो शीर्षकों में बांट सकते हैं -

1. प्रकृति सौन्दर्य 2. नारी सौन्दर्य

प्रकृति सौन्दर्य

निरालाजी के काव्य में मानव और प्रकृति का समान हिस्सा है । डा.प्रेमशंकर के शब्दों में -"प्रकृति उनके लिए सहचरी मात्र न थी, जिसके प्रति वे केवल रागात्मक बनकर रह जायें, अथवा रोमानी दृष्टि डालकर सन्तुष्ट हो लें, वे प्रकृति को उसके व्यापकत्व में स्वीकारते है और उसकी असंख्य छवियों पर उनकी दृष्टि जाती है।[1] प्रकृति में निरालाजी का संवेदन अधिक व्यापक है । "जुही की कली" में रोमानी

---

1. हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य - पृ.सं. 217 - डा. प्रेमशंकर

वातावरण में प्रकृति का मानवीकरण है । "विजन वन वल्लरी पर शिथिल पत्रांक में सोनेवाली जुही की कली" में स्वाभाविक रूप से मुग्ध श्रृंगार की निष्पत्ति हुई है । "संध्या सुन्दरी," "शेफालिका" जैसे गीत जो प्रकृति सौन्दर्यचितना एवं कोमलता से संपुष्ट है, मुग्ध श्रृंगार की भावना है । निरालाजी ने "प्रति" का मानवीकरण सद्य-स्नात सुन्दरी के रूप में किया है -

सौध शिखर पर प्रात मनोहर
कनक - गात तुम अरुण-चरण धर
सरणि सरणि पर उतर रही मर
छन्द भ्रमर गुंजित नीलोत्पल ।[1]

प्रकृति पर मानवीय भावों का आरोप निराला में अधिकाधिक संश्लिष्ट है । वे प्रकृतिदृश्य के साथ विशाल मानव जगत और उसके प्रति अपनी जिम्मेदारी व्यक्त करते हैं -

मुद्रित दृग खोलो
जीवन प्रसून वह वृन्त- हीन
खुल गया उषा-नभ में नवीन
धाराएँ ज्योति-सुरभि उर भर
वह चलीं, चतुर्दिक कर्म लीन,
तुम भी निज तरुण-तरंग खोल
नव-अरुण- संग हो लो -[2]

यहाँ मानव जगत को अपने कर्मपथ पर अग्रसर होने का आह्वान भी कवि देते है ।

"यमुना के प्रति" में निराला ने राधाकृष्ण और गोपियों के विहार स्थल की कल्पना की है । यहाँ कृष्ण की लीला के बदले पुरुष और नारी के अन्तःप्रकृति का चित्रण है । इस अंतरंग मानवीय प्रकृति का सौन्दर्य वर्णन एकदम अनूठा है ।

---

1. गीतिका पृ.सं. 116,
2. परिमल पृ.सं. 28

कोमल प्रकृति के साथ निरालाजी ने "बादल-राग" में कठोर प्रकृति का चित्रण किया है और इस प्रकृति के माध्यम से युग के अत्याचारों को चुनौती दी है। मेघ उनके लिए अनुभूतियों का वाहक है, जीवन धन है। निरालाजी मेघगर्जन को साधारण मानव के लिए उपयोगी सिद्ध करते हैं -

ऐ अटूट पर छूट टूट पडनेवाले-उन्माद !
विश्व विभव को लूट लूट लडनेवाले -अपवाद !
श्री-बिखेर, मुख-फेर कली के निष्ठुर पीडन !
छिन्न भिन्न कर पत्र-पुष्प-पादप-वन उपवन,
वज्र घोष से ऐ प्रचंड !
आतंक जमानेवाले
कम्पित जगम-नीड-विहंगम
ऐ न व्यथा पानेवाले
भय के मायामय आंगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर !

निरालाजी के कतिपय प्रकृतिपरक कवितायें रहस्यवाद का आभास दिलाती है। डा. विजयेन्द्र स्नातक के शब्दों में -" प्रकृति के सुन्दर पदार्थों में निहित चरम सौन्दर्य को पा लेने की इच्छा कवि के अन्त में सतत विद्यमान रही है, जिसके फलस्वरूप प्रकृतिचित्रण पर रहस्यवाद का झीना आवरण पडना स्वाभाविक है।"[2]

रोमानी युग में निरालाजी ने ग्राम प्रकृति का यथार्थ चित्रण किया है। "अनामिका" के "खुला आसमान" शीर्षक कविता में छायावादी प्रकृति के साथ सामाजिक यथार्थ की ओर उन्मुख होने की कवि की आकांक्षा की अभिव्यक्ति है।

छायावादी कवियों में ऋतुगीतों का प्रणयन निरालाजी ने अधिक किया है। " गीतिका" के ऋतुगीत निरालाजी के प्रकृतिप्रेम और प्रकृतिनिरीक्षण की क्षमता की

---

1. परिमल पृ.सं. 134 - 135
2. आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि पृ.स. 354

व्यक्त करती हैं । वर्षाऋतु हमेशा उनकी प्रिय ऋतु रही है -

घन, गर्जन से भर दो वन
तरु-तरु पादप-पादप -पतन
गरजो हे मन्द्र वज्र स्वर
थर्राये भूधर-भूधर
झर झर झर झर धारा झर
पल्लव पल्लव पर जीवन ।[1]

वर्षा के बाद वसन्त ऋतु का चित्रण निरालाजी ने अधिक किया । शिशिर के बाद वसन्त का आगमन निरालाजी एक गीत में तपस्या में लीन पार्वती के प्रतीक से स्पष्ट करते हैं । "गीतिका" में वसन्त का चित्रण -

किसलय वसना - नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय - उर तरु पतिका,
मधुप-वृन्द-बन्दी
पिक-स्वर नभ सरसाया ।[2]

निरालाजी ने ग्रीष्म को भी अपनी कविता का विषय बनाया -

यह सांध्यसमय,
प्रलय का दृश्य भरता अम्बर,
पीताभ, अग्निमय, ज्यों दुर्जय
निर्धूम, निरभ्र दिगन्त प्रसर,
कर भस्मीभूत समस्त विश्व को शेष
उड़ रही धूल, नीचे अदृश्य हो रहा देश ।[3]

यहाँ धूल उड़नेवाली, तपनेवाली ग्रीष्म का चित्रण है ।

"तुलसीदास" में प्रकृति कवि तुलसी की प्रेरक शक्ति है । प्रकृति पर उसे अमर सत्य का आभास होता है । "वनबेला" तो कवि के साथ वार्तालाप करती दिखाई देती है ।

---

1. गीतिका पृ.सं. 87 2. गीतिका पृ.सं. 35
3. अनामिका पृ.सं. 86

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि निरालाजी के अधिकांश प्रकृतिपरक गीत स्वच्छ और मुग्ध प्रेम भावना को अभिव्यक्ति देते हैं। वहाँ ऐन्द्रिकता नहीं। फिर भी अपने प्रकृतिचित्रण में भी उन्होंने विशाल मानव जगत से अपना सम्बन्ध बनाये रखा। निरालाजी के काव्यजीवन के प्रथम क्षण से लेकर प्रकृति मुख्य भूमिका बनी रही।

नारी सौन्दर्य

महाकवि निरालाजी की कविताओं में नारी सौन्दर्य के अनेक रूप उद्घाटित हैं। उनकी नारी प्रेयसि है, वधु है, विधवा है, माँ है, मज़दूर वर्ग का प्रतिनिधि है। अतः अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा निरालाजी का नारी संबन्धी दृष्टिकोण अधिक विशाल है। नारीपात्र के चुनाव और रूपवर्णन में वे हमेशा विद्रोही रहे। अनामिका' के गीत "प्रिया से" में प्रिया का स्मरण है, वहाँ उनकी स्वच्छन्दतावादी चेतना को अतीन्द्रियता प्राप्त हुई है -

मेरा इस जीवन की है तू सरस साधना कविता,
मेरे तरू की है तू कुसुमित प्रिये, कल्पना-लतिका
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय, है तु कमल कामिनी
मेरे कुंज कुटीर द्वार की कोमल चरण कामिनी।[1]

यहाँ उनकी प्रिया कविता है, कुसुमित लतिका है, कुंज कुटीर में मंदचरण से आनेवाली सुन्दरी है।

"पंचवटी प्रसंग" में महाकवि ने परम्परागत मान्यताओं से एकदम अलग होकर शूरपणखा का सौन्दर्यांकन किया है। शूर्पणखा के राक्षसी रूप के बदले मानवीय भावनाओं से युक्त एक रूप गर्विता नारी की झाँकी है -

रानी हूँ,
प्रकृति मेरी अनुचरी है;
प्रकृति की सारी सौन्दर्य - राशि लज्जा से
सिर झुका लेती जब देखता मेरा रूप -
वायु के झोंके से वन की लताएँ सब
झुक जाती - नज़र बचाती हैं -

---

1. अनामिका - पृ.सं. 42

G5625

अंजल से मानों छिपतो मुख
देख यह अनुपम स्वरूप मेरा ।[1]

"पंचवटी प्रसंग" के दूसरे भाग में लक्ष्मण माता के सम्बन्ध में कहता है -

माता की चरण रेणु मेरी अपार शक्ति है -
माता की तृप्ति मेरे लिए अष्ट सिद्धियाँ -
माता के स्नेह - शब्द मेरे सुख साधन है ।[2]

मनुष्य को भवसागर पार करने की शक्ति देनेवाली, जगत को बनने बिगडने के लिए शक्ति प्रदान करनेवाली, समस्त विश्व में विराजित वह देवी -

नारियों की महिमा - सतियों की गुण-गरिमा में ,
जिनके समान जिन्हें छोड कोई और नहीं
माता हैं मेरी वे ।[3]

यहाँ कवि का नारी वर्णन बंगाल की दुर्गा पूजा से प्रभावित है, माता के प्यार से वंचित कवि के सामने नारी देवी स्वरूपा है ।

"प्रिय यामिनी जागी" में प्रकृति के माध्यम से कवि ने कौटुम्बिक जीवन का सौन्दर्यांकन किया है । रात्रि के अंतिम पहर में दिनचर्या शुरू करनेवाली, धान कूटनेवाली ग्रामीणवधु का चित्रण इसमें है । इस कविता में प्रेयसी की बिदाई है. गृहणी का सौन्दर्य वर्णन है -

अलस पंकज-दृग अरुण-मुख
तनु अनुरागी ।
हेर उरपट फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक चली मन्द मराल,

गेह में प्रिय स्नेह की जय मान ,
वासना की मुक्ति , मुक्ता
त्याग में तागी ![4]

---

1. परिमल - पृ.सं. 190-91 2. परिमल पृ.सं. 187
3. परिमल - पृ.स. 188 4. गीतिका - पृ.सं. 34

नारी सौन्दर्य वर्णन में "अनामिका" की कविताएँ निरालाजी के विद्रोही कृतित्व के उदाहरण हैं साथ ही उनमें वैयक्तिक संवेदन की गुंजाइश भी है । "सरोज स्मृति" में कवि ने बेटी सरोज के यौवन का वर्णन किया है -

धीरे धीरे फिर बढ़ा चरण
बाल्य की केलियों का प्राङ्गण
पार, कुंज कर तारूण्य सुघर
आयी, लावण्य भार थर थर
कांपता कोमलता पर सस्वर
ज्यों मालकौश नव-वीणा पर ।[1]

यहाँ बाल्य से यौवन पर कदम रखनेवाली बेटी के सौन्दर्य को उन्होंने नववीणा का मालकौश राग बताया है । निरालाजी का यह नारी सौन्दर्यवर्णन संयत् एवं मार्मिक है । बेटी के सौन्दर्य का चित्रण करनेवाले हिन्दी के अकेले कवि हैं निरालाजी। डा. नामवरसिंह के शब्दों में -" यह निराला ही है जो तमाम रूढियों को चुनौती देते हुए अपनी सद्यः परिणीता कन्या के रूप का खुलकर वर्णन करते हैं और यह कहना नहीं भूलते कि 'पुष्प-सेज तेरी स्वयं रची है,' किसी कवि में इतना साहस और संयम"।[2]

निरालाजी की प्रेयसि सम्बन्धी विचार "अनामिका" की कविताओं में अधिक प्रकट है । प्रिया से, प्रेयसि जैसी कवितायें इसके उदाहरण हैं । उनकी प्रेयसि भारतीय समाज में हमेशा दिखाई देती है ।

बेटी सरोज के रूपवर्णन करनेवाले निरालाजी ने इलहाबाद के पथ पर पत्थर तोडनेवाली मज़दुरानी के बन्धे यौवन का चित्रण किया है ।

कोई न छायादार
पेड वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार
श्यामतन, भर बन्धा यौवन,
नत नयन, प्रियकर्म रत मन [3]

---

1. अनामिका पृ.सं. 34
2. छायावाद ऐतिहासिक सामाजिक विश्लेषण पृ.सं. 18 डा. नामवरसिंह
3. अनामिका - पृ.सं. 81

यहाँ वातावरण पर ध्यान न देकर अपने काम में तन मन से रत भारत के निम्नवर्गीय मज़दूरानी का जीता-जागता चित्रण उस युग में निरालाजी को छोडकर कोई दूसरा कवि नहीं कर सकता ।

"तुलसीदास" में निरालाजी ने नारी के प्रेरक और शक्तिरूप की उद्भावना की है । निरालाजी ने चित्रकूट यात्रा के बाद घर लौटे तुलसीदास के जीवन में रत्नावली के महत्त्व को विस्तृत वर्णा की है । तुलसी का पत्नी के प्रति जो प्यार था, उसका प्रतिरूप निरालाजी अपनी पत्नी मनोहरा के प्रति देखते हैं । पत्नी के माध्यम से तुलसीदास को अनुपम ज्ञान मिला, उसी प्रकार निरालाजी को भी पत्नी मनोहरा से ही अनुपम ज्ञान मिला था, जिसके सम्बन्ध में उन्होंने "गीतिका" के समर्पण में लिखा है । पत्नी के कटुवचन से तुलसी का संस्कार जाग उठता है, उसकी कामवासना भस्मीभूत हो जाती है । यहाँ तुलसी को पत्नी के स्थान पर नीलवसना शारदा दिखाई देती है -

> देखा, शारदा नीलवसना,
> है सम्मुख स्वयं सृष्टि रशना
> जीवन समीर-शुचि-निश्वसना, वरदात्री ।[1]

इस भारती रत्नावली के दर्शन से तुलसी चेतना के ऊर्ध्वतम लोक पर पहुँच जाता है और विशुद्ध आनन्द में लीन हो जाता है । यहाँ निरालाजी ने नारी को शारदा, ज्ञान की ज्योति और आदिशक्ति का प्रतीक माना है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि निराला का नारी सौन्दर्य चित्रण परम्परा से अलग, विशाल एवं अनुपम है ।

राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक चेतना

निरालाजी युग चेतना को वाणी देनेवाले कवि हैं । उस समय की सांस्कृतिक चेतना और राष्ट्रीयता उनकी कविता में स्थापित है । निराला की राष्ट्रीयता रचनात्मक और सांस्कृतिक है । बंगाल के नवजागरण के निकट संपर्क में रहे निरालाजी की राष्ट्रीयता में आध्यात्मिक चिन्तन एवं विवेकानन्द की व्यावहारिक विचारधारा

---

1. तुलसीदास - निराला

का प्रभाव है । डा. भगीरथ मिश्र के शब्दों में -" निराला की राष्ट्रीयता भारत की इस मिट्टी में उगती, पनपती है, परन्तु इसमें प्रफुल्लित एवं पल्लवित होती हुई बहुत दूर जाकर वह समस्त मानवता को अपने में समेट लेती है "[1]।

राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना से संपन्न अपनी कविताओं में उन्होंने एक यथार्थवादी दृष्टि अपनायी है। "परिमल" की "यमुना के प्रति" शीर्षक कविता में भारत के पराजित वर्तमान का चित्रण है साथ ही कवि बार बार वैभवपूर्ण अतीत का स्मरण करता है । "परिमल" में "जागो फिर एक बार" शीर्षक दो गीत हैं । पहले गीत के आरंभ में श्रृंगार भावना है साथ ही यह गीत तत्कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थिति में भारतियों के लिए उद्बोधन गीत है -

उगे अरुणाचल में रवि
आई भारती- रवि कण्ठ में,
क्षण क्षण परिवर्तित
होते रहे प्रकृति-पट
जागो फिर एक बार [2]

दूसरी कविता ओजगुण युक्त है । यहाँ कवि गुरू गोविन्दसिंह के वीरतापूर्ण व्यक्तित्व के माध्यम से अपने देशप्रेम की अभिव्यक्ति का प्रयास करते हैं। "महाराणा शिवाजी का पत्र " भी भारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक अतीत की ओर संकेत करनेवाली कविता है ।

"गीतिका" में सांगीतिक तत्वों का निर्वाह करते हुए निरालाजी ने अपनी राष्ट्रीय भावना की व्यापकता का विस्तार दिया है

नर जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ,
मेरे श्रम - संजित सब फल।
जीवन के रथ पर चढकर ,

---

1. निराला काव्य का अध्ययन पृ.सं. - 65 - डा. भगीरथ मिश्र ।
2. परिमल - पृ.सं. 156

सदा मृत्यु पथ पर बढ़कर
महाकाल के खरतर शर सह
सकूँ, मुझे तू कर दृढ़तर,
जागो मेरे उर में तेरी
मूर्ति अश्रुजल धौत विमल
दृग जल से पा बल, बलि कर दूँ,
जननि, जन्म-श्रम-संचित फल ।

यहाँ कवि भारतीयों से अपनी स्वार्थता को भारत-माता के चरणों पर अर्पित करने का आह्वान देते हैं ।

निरालाजी के राष्ट्रीय गीतों में, "भारती जय विजय करे" का अधिक महत्व है । यहां कवि ने प्राचीन सांस्कृतिक प्रतीकों के माध्यम से गीत के सौन्दर्य को बढ़ाया है, देश के उत्कर्ष एवं गौरव की भावना से समन्वित है यह गीत -

भारती जय विजय करे !
कनक शस्य कमल धरे!
लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण युगल
स्तव कर, बहु-अर्थ-भरे । [2]

यहाँ हिमालय से लंका तक फैली भारत भूमि की विराटता का चित्रण है ।

निरालाजी की राष्ट्रीयता में देश के उत्कर्ष के साथ उसके पतन, भौतिक अवनति और विषमता की वाणी मिली है । प्रसादजी की राष्ट्रीयता में काल्पनिकता एवं पंतजी की राष्ट्रीयता में दैन्यता है । इनकी तुलना में निरालाजी के राष्ट्रीयगीत अधिक महत्व रखते हैं । निरालाजी विदेशी शासन से भारत की मुक्ति के लिए श्यामा का आह्वान करते हैं -

---

1. गीतिका - पृ.सं. 52 2. गीतिका - पृ.स. 101

एक बार बस और नाच तू श्यामा ।
सामने सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर, वाहिर कितने तुझको हार
कर-मेखला-मुण्डमालाओं से बन मन अभिरामा-
एक बार बस और नाच तू श्यामा ।[1]

निरालाजी के "तुलसीदास" की पृष्ठभूमि भारतीय संस्कृति की ह्रासोन्मुखता, मुसलमानों का आक्रमण, बन्देलखण्ड की वीरता का अस्त आदि है । भारतीय संस्कृति का यह ह्रास निरालाजी के शब्दों में -

वीरों का गठ, वह कलिंजर
सिंहों के लिए आज पिंजर
नर है भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते,
पीकर ज्यों प्राणों का आसव
देखा असुरों ने दैनिक दव
बन्धन में फंस आत्मा- बांधव दुख पाते ।[2]

भारत के इस सांस्कृतिक बौद्धिक और राजनीतिक अधपतन के चित्रण के बाद ही इस कविता में तुलसी का आगमन होता है । यहाँ तुलसी की वाणी मुक्ति का मार्ग है । निराला अब तुलसी के साथ एकाकार हो जाते हैं । डा. दूधनाथसिंह के शब्दों में -" तुलसीदास के माध्यम से जनसाधारण की दुर्दशा और सांस्कृतिक अन्धकार की चिन्ता निराला के कवि की आधुनिक चिन्ता है"।[3]

संक्षेप में छायावादी कविता की राष्ट्रीयता और सांस्कृतिक चेतना निरालाजी की कविताओं में लक्षित होती है ।

---

1. परिमल - पृ.सं. 115, 2 तुलसीदास - निराला
3. निराला आत्महन्ता आस्था - पृ.सं. 157 - डा. दूधनाथसिंह

आध्यात्मिकता

निरालाजी की कविता में आध्यात्मिक विचारों का स्त्रोत बहुत गहरा है। श्रीरामकृष्ण परमहंस, स्वामि विवेकानन्द, प्रेमानन्दजी महाराज, स्वामि माधवानन्द आदि के विचारों से वे प्रभावित थे। निरालाजी के जीवन में आध्यात्मिक भावना का अंकुर उस समय पनपने लगा था, जब वे रामकृष्ण मिशन की पत्रिका के संपादक रहे थे। अतः निराला के काव्यदर्शन पर रामकृष्णमिशन का प्रभाव पडा है। निरालाजी के दर्शन में कर्मण्यता को प्रमुखता है। डा. प्रेमशंकर ने ठीक ही लिखा है - "कुछ कुछ मार्क्स की तरह जिसने घोषणा की थी कि दार्शनिकों ने अभी तक जगत की व्याख्या की है, हमारा दायित्व है इसे बदल दे। इसे निराला का व्यावहारिक दर्शन कहा जा सकता है, जो सन्यास वैराग्य में अधिक समय तक ठहर नहीं पाता। यह एक ऐसी रागात्मिकता है, जिसमें जीवन के प्रति गहरी सदाशयता तथा मानवीयता के उच्चतम भाव छिपे हुए हैं"।[1] जिसप्रकार गैरिक वस्त्र पहनकर भी विवेकानन्दजी सामाजिक बदलाव की मांग कर रहे थे, उनकी राष्ट्रीयचेतना और आध्यात्मिक चिन्ता अभिन्न है, उसी प्रकार वेदान्त के निकट होकर भी निराला ने जीवन की रागात्मिकता को स्वीकार किया। निरालाजी की "जागो फिर एक बार" में विवेकानन्द के व्यावहारिक दर्शन का प्रभाव है -

पर क्या है,
सब माया है, माया है
मुक्त हो सदा हो तुम
बाधा विहीन बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द रूप।[2]

परिमल के गीत नाट्य " पंचवटी प्रसंग "
में कवि आत्मा के विस्तार को बल देनेवाले जीवन दर्शन को अभिव्यक्ति करते हैं। यहाँ राम प्रेम के व्यापकत्व के सम्बन्ध में कहता है। राम के इस कथन में विवेकानन्द के 'संकुचन मृत्यु है, विस्तरण जीवन है" वाला दर्शन है।

---

1. हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य - पृ.सं. 220 - डा. प्रेमशंकर
2. परिमल - पृ.सं. 158

निरालाजी के काव्य में दर्शन के अनेक पक्ष हैं। 'अधिवास' में कल्पना की धारा प्रवाहित है। 'तुम और मैं' में आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध निरूपित है -

तुम तुङ्ग हिमालय श्रृंग
और मैं चंचल गति सुर सरिता
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कान्त कामिनी कविता [1]

'मां' 'देवि' जैसी कविताओं में शक्ति की महत्ता का उल्लेख है।

'गीतिका' के गीतों में अद्वैतीभाव है, यहाँ कवि आत्मसाक्षात्कार को ब्रह्मज्ञान मानता है -

कहीं भी नहीं सत्य का रूप
अखिल जग एक अन्धतम कूप
ऊर्मि - धूर्णित रे, मृत्यु महान,
खोजता कहाँ यहाँ नादान। [2]

ब्रह्म की चेतन सत्ता के साथ कवि जगत के उत्थान पतन, आरोह- अवरोह को बांधता है। यहाँ ब्रह्म सगुण, साकार और प्रत्यक्ष बन जाता है -

जग का एक देखा तारा।
कंठ अगणित, देह संयुक्त
मधुर स्वर झंकार
बहु सुमन, बहुरंग निर्मित एक सुन्दर हार;
एक ही कर से गूंथा, उर एक शोभा भार!
गन्ध - शत - अरविन्द - नन्दन, विश्व-नन्दन-सार,
अखिल उर-रंजन निरंजन एक अनिल उदार। [3]

---

1. परिमल - पृ.सं. 64, 2. गीतिका - पृ.सं. 57, 3. गीतिका पृ.सं. 54

निरालाजी ने भावना के स्तर पर आत्मा और जगत का विश्लेषण अद्वैतवाद के आधार पर किया है। अज्ञात सत्ता के छवि का आभास उनके गीतों में हैं -

कौन तम के पार । रे, कह ॥
अखिल पल के स्त्रोतजल-जग
गगन घन-घन-धार । रे, कह ॥
गन्ध व्याकुल कूल उर सर ।

निरालाजी ने स्वयं को आत्मा बनाकर, स्त्री के रूप में चित्रित किया है। "गीतिका" के अनेक गीत ऐसे हैं। एक में कवि बादल में प्रियतम का आगमन देखता है-

बादल में आये जीवन धन
अपल-नयन सुवास-यौवन नव
देख रही तरुणी कोमल-तन
मञ्जु पुलक भर अङ्ग प्रकम्पित,
बार बार देखती चपल-चित्त
स्पर्श चकित कर्षित हो हर्षित
लक्ष्य पार करती चल चितवन ।[2]

"राम की शक्तिपूजा" श्रीरामकृष्णदेव और विवेकानन्दजी के शक्तिसिद्धान्त से प्रभावित है। यहाँ नारी (सीता) श्रृंगार का उद्बोधन है, शक्तिसाधना के पूर्वाभास का प्रतीक है। यहाँ शक्त दृष्टि से तांत्रिक प्रतीकों का काव्यात्मक निबन्धन है।

निरालाजी को निरन्तर गतिशील बनाये रखने में उनका वेदान्त सफल रहा है। उच्चतम मानव मूल्यों पर बल देनेवाली उनकी आध्यात्मिक चेतना काव्य के स्तर पर कवि को आत्म विश्वासी बनाता है।

खोले दृगों के द्वयद्वार
मृत्यु-जीवन-ज्ञान-तम के
करण - करण - पार ।
उधर देखोगे, सुधरतर तुम्हीं दर्शन सार,
मोह में ये दृप्त, जगा परितृप्त बारम्बार [3]

---

1. गीतिका पृ.सं. 44
2. वही पृ.सं. 45
3. गीतिका पृ.सं. 76

संक्षेप में निरालाजी की कई कविताएँ आध्यात्मिकता और दार्शनिकता से संपृक्त हैं ।

मानवतावाद

निरालाजी की कविता में मानववाद की अभिव्यक्ति हुई है । यह मानववाद उनकी गहरी संवेदना एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम था । निरालाजी के मानववाद की आधारशिला तो परस्पर विरोधी विचारधाराएँ हैं । उनके मानववाद में आदर्शात्मकता है साथ ही यथार्थता भी । रचनात्मकता के साथ ध्वंस की भावना भी उसमें सन्निहित है ।

निरालाजी ने साधारण मनुष्य को महान घोषित करके दीन दुखियों का यथार्थ चित्रण छायावाद के वैभव काल में ही किया । भिक्षुक, दीन जैसी कविताओं में दलित पीडित मानव का चित्रण है । "विधवा" निरालाजी की हृदयस्पर्शी रचना है । इसमें भारतीय विधवा का दयनीय चित्रण है । प्रस्तुत रचना ब्रह्मसमाज के नारीमुक्ति की मानववादी दृष्टिकोण के प्रभाव का परिणाम है । विधवा का दुख निरालाजी के शब्दों में -

यह दुख वह, जिसका नहीं कुछ छोर है
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है ।
क्या कभी पोंछे किसी के अश्रुजल
या किया करते रहे सबका विकल ।

"अनामिका" की दान शीर्षक कविता में कवि ने धर्म के नाम पर लिए जानेवाले पाखण्डों के चित्रण के साथ पथ पर बैठनेवाले भिक्षुओं का चित्र उपस्थित करके अपने मानववादी दृष्टिकोण का परिचय दिया । निरालाजी की इस मानववादी करुणा का विकास परवर्ती कविताओं में व्यंग्य के रूप में हुआ ।

संक्षेप में निरालाजी ने अपने काव्य द्वारा दलित मानव की आत्मा का गीत लोगों को सुनाया। ऐसे गीतों के रचनाकार निरालाजी सच्चे अर्थ में मानवतावादी हैं ।

शिल्पपक्ष

काव्यभाषा निरालाजी ने 'प्रबन्ध प्रतिमा' में भाषा संबन्धी अपनी धारणा व्यक्त

---

1. परिमल - पृ.सं. 98

को है । उनके शब्दों में -"भाषा बहु भावात्मिका रचना को इच्छा मात्र से बदलनेवाली देह है । इसलिए रचना और भाषा के अगणित रूप भिन्न भिन्न साहित्यकों की विशेषतायें जाहिर करते हुए दीख पडते हैं"[1]। निरालाजी के पहले द्विवेदीयुग में हिन्दी की काव्यभाषा शक्तिशालिनी नहीं थी । वह भाषा अभिधात्मक थी, उसमें लाक्षणिकता एवं नाद क्षमता का यथेष्ट विकास नहीं हुआ था । विस्तार एकत्रीकरण और व्यवस्था काव्य भाषा की तीन प्रक्रियाएँ हैं। निरालाजी ने विस्तार एवं एकत्रीकरण को प्रधानता दी । इसी कारण महाकवि की भाषा में समरसता नहीं बल्कि प्रयोग बहुलता है । छायावादी बृहत्रयी में निरालाजी को छोडकर अन्य तीन कवियों की काव्य सीमा के समान उनकी भाषा भी सुनिर्दिष्ट है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में -" जो कवि अनेक भावों, अनेक रसों और अनेक स्तरों की जीवन भूमिका को चित्रित करता है वह अपनी भाषा को एक ही ढाँचे में ढाल नहीं सकता"[2]। इसलिए अन्य छायावादी कवियों की भाषा सौन्दर्योन्मुखी और सुन्दर है, लेकिन उनकी भाषा निरालाजी की काव्य भाषा के समान विस्तृत और वैविध्यपूर्ण नहीं । निरालाजी अपनी काव्यभाषा में समासबहुल संस्कृत शब्दों से लेकर बोलचाल की भाषा के शब्दों तक का यथेष्ट प्रयोग करते हैं । इन दो सीमाओं के बीच की उनकी व्यापक काव्यभाषा रसों के अनुरूप निर्मित होती है ।

निरालाजी की काव्यभाषा विभिन्न सौन्दर्यछवियों के अंकन में सक्षम है जब कि अन्य छायावादी कवियों के सौन्दर्यांकन की अपनी सीमा है । उनके सौन्दर्यांकन में स्वच्छन्दता और प्रयोग बहुलता अपनी चरम सीमा पर है । इसलिए निरालाजी केलिए विविध भाषा प्रतिमान की ज़रूरत है । विषयानुकूल भाषा निर्माण की उनकी शक्ति अनुपम है । काव्य भाषा के लिए आवश्यक संगीतात्मक, लयात्मक पदविन्यास निराला की कविता में है । उनके काव्य के शब्दालंकार और संगीतात्मक ध्वनियाँ उनके काव्य-कौशल के द्योतक हैं । छन्दानुरूप भाषा का विन्यास उनकी कविता की विशेषता है।

"परिमल" की भाषा तत्सम प्रधान है । " यमुना के प्रति" में तत्सम आलंकारिक भाषा है । "गीतिका" के गीतों की भाषा संस्कृत के सौन्दर्य से युक्त हिन्दी की पदावली

---

1. प्रबन्ध प्रतिमा पृ.सं. 86
2. कवि निराला - पृ.सं. 91

की भाषा है । निरालाजी के ऋतुवर्णन और प्राकृतिक सौन्दर्यचित्रण की भाषा संस्कृत और हिन्दी के बीच की मध्यवर्ती भाषा है ।

"राम की शक्तिपूजा" की भाषा तत्सम शब्दावली से युक्त है। यहाँ संस्कृत शब्दों के बीच केवल समास चिन्ह है जो पारस्परिक संबन्ध स्थापित करता है । यह भाषा महा काव्योचित उदात्तता से युक्त है ।

उदा उद्धत - लंकापति मर्दित - कपि-दल-बल-विस्तर,
अनिमेष-राम-विश्व जिदिदव्य- शर भङ्ग - भाव
विद्धाङ्ग - बद्ध - कोदण्ड - मुष्टि -खर - रुधिर - स्राव
रावण-प्रहार-दुर्वार- विकल-वानर-दल--बल ।[1]

"राम की शक्तिपूजा' में निरालाजी के भाषा कौशल का संपूर्ण वैभव दिखाई देता है । यहाँ भाषा शास्त्रीय दृष्टि से बहुत आगे है, पदयोजना और नाटकीयता की दृष्टि से उसका महत्व अप्रतिम है ।

निरालाजी ने विषय के अनुरूप भाषा को क्लिष्ट, सरल, ओजपूर्ण और मधुर रखने का प्रयास किया है । एक ही कविता में उनकी भाषा के विविध रूप हैं। उदा केलिए सांस्कृतिक वातावरण के सन्दर्भ में "तुलसीदास" की भाषा परिष्कृत है । इसी कविता में रत्नावली के भाई द्वारा धरवालों के सन्देश की भाषा ठेठ बोलचाल की है ।

निरालाजी की भाषा में कालिदास का सा प्रसादगुण है, जयदेव की सी सामासिक शब्दावली है । भाषा द्वारा व्यंजित सांगीतिक ध्वनियों, अनुप्रास तथा यमक को उन्होंने रवीन्द्र की भाषा के आधार पर किया । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में -"विभिन्न भाषा के प्रयोग में निरालाजी का इतना अधिकार रहा कि उनकी कृतियों में कहीं भी अशक्तता दृष्टिगत नहीं होती। बल्कि कहा जा सकता है कि उन्होंने शब्दचयन और वाक्य योजनाओं में क्रमगत भूमिकाओं को नया विस्तार दिया है ।"[2]

---

1. अनामिका - पृ.सं. 152
2. कवि निराला- पृ.सं. 181

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि निरालाजी ने अभिधा से लेकर लक्षणा व्यंजना तक के विभिन्न भाषा प्रयोग का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है ।

बिम्ब

छायावादी बिम्ब विधान का पूरा निर्वाह निरालाजी की कविता में हुआ है । निरालाजी ने अर्थातिशयोक्ति से युक्त एक शब्द का दुहरा या तिहरा आवृत्ति करके "संध्या सुन्दरी" में शब्द बिम्ब का विधान किया है -

नूपरों का रुनझुन रुनझुन नहीं,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा चुप चुप[1]

यहाँ "चुप" शब्द की आवृत्ति से संध्या की नीरवता को अधिक स्पष्टता मिली है ।

निरालाजी ने वर्णविन्यास वक्रता से वर्णबिम्बों का चयन किया है -

उदा झर झर झर निर्झर गिरि सर में
घर मरु, तरु- मर्मर, सागर में [2]

यहाँ "झ" और "र" की आवृत्ति से वर्णबिम्ब की सृष्टि हुई है ।

समानुभूतिक बिम्ब में द्रष्टा, दृश्य, आश्रय और आलम्बन एक मानसिक धरातल पर आ जाते हैं । यहाँ संवेदनशील, इन्द्रिय ग्राह्य तादात्मय चित्रण है ।

उदा: है अमा निशा, उगलता गगन घन अन्धकार,
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे, अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यानमग्न, केवल जलती मशाल ।[3]

असंवेष्टित बिम्ब में सांगरूपक के सादृश्य का केन्द्रापगामी विस्तार है

उदा इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी
दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन
दुर काल तांडव की स्मृतिरेखा सी
वह टूटे तरु की छूटी लता सी दीन [4]

---

1. परिमल - पृ.सं. 104
2. परिमल - पृ.सं. 133
3. अनामिका - पृ.सं. 154
4. परिमल - पृ.सं. 98

ऐन्द्रिय बोध की दृष्टि से निरालाजी की कविता में चाक्षुष बिम्बों की प्रधानता है । अमूर्त भावों एवं सूक्ष्म अनुभूतियों को कवि ने मूर्त और इन्द्रिय गम्य बनाया है -

उदा "पंचवटी प्रसंग" में शूर्पणखा का स्वगत कथन-

चाहता जी -
नील- जल-सरोवर पर
प्रेम- सुधा- कौमुदी पी
खिल- खिलकर हंसती हुई
भाग्यवती कुमुदिनी- सी
सांवरे का अधरमधु पानकर
सुख से बिताऊं दिन ।[1]

यहाँ नीलजल सरोवर और सांवलेराम, कुमुदिनी और शूर्पणखा कौमुदी और अधरमधु सब का युग्म, वर्णबोध पर आश्रित है । निरालाजी की कविता में नादसौन्दर्य प्रेषणीयता द्वारा प्रकट करता है । यहाँ श्रावण बिम्ब का चयन हुआ है ।

निरालाजी की "वनबेला" में घ्राणिक बिम्ब विधान है -

यह कहाँ-कहाँ बामालक- चुम्बित तुलक गन्ध ?[2]

"राम की शक्तिपूजा" में कवि ने स्मरण के सहारे दृश्यों वस्तुओं स्थितियों को मानसिक पुनरावृत्ति के लिए गत्वर बिम्ब विधान का सहारा लिया है -

याद आया उपवन
विद्रोह का प्रथम स्नेह का लतान्तराल मिलन
नयनों का नयनों से गोपन -प्रिय संभाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थानपतन[3]

निरालाजी की कविताओं में उदात्त बिम्बों का पूरा निर्वाह हुआ है। निरालाजी ने उदात्त बिम्ब को " विराट चित्र" कहा है । "वनबेला" में ग्रीष्म के सूर्य को नायक और पृथ्वी को नायिका के रूप में चित्रित करके उदात्त बिम्ब का चयन उन्होंने

---

1. परिमल - पृ.सं. 197 - 198 2. अनामिका - पृ.स. 81
3. अनामिका पृ.सं. 155

किया है । राम की शक्तिपूजा" में पर्वत के रूप में शक्ति की कल्पना करके उदात्त बिम्ब योजना की है ।

संक्षेप में छायावादी कविता में निरालाजी का बिम्बविधान सुस्पष्ट, सुसम्बद्ध और ऐन्द्रियात्मक है ।

प्रतीक

अन्य छायावादी कवियों की भांति निरालाजी के काव्य में प्रतीकों का विधान मिलता है । उनके अधिकांश प्रतीक प्रकृतिसौन्दर्य एवं दर्शन शास्त्र से सम्बन्धित है । उनके "बादल राग" का बादल क्रांति का प्रतीक है । निरालाजी ने "राम की शक्तिपूजा" में प्रसंगानुसार साधनामूलक प्रतीकों का प्रयोग किया है । राम के द्वारा दुर्गापूजा के सन्दर्भ में योग साधना के गुह्य प्रतीक का प्रयोग है -

क्रम क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस
चक्र से चक्र मन चढता गया ऊर्ध्व निरलस,
संवित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी-पद पर
जप के स्वर लगा कांपने थर-थर थर अम्बर ।[1]

नया तुला साधनामूलक प्रयोग तो आधुनिक हिन्दी कविता में निरालाजी ने ही किया है । निरालाजी के कई गीत ऐसे हैं जिनमें दो से अधिक अर्थव्यंजना होती है । उदा: वसन वासन्ती बन लेंगी, शेफालिका आदि । शेफालिका आत्मा का प्रतीक है, कंचुकी बन्द, उसकी मायाबद्ध दशा और बिन्दु चुम्बन, परमात्मा के चुम्बन स्पर्श का प्रतीक है । निरालाजी के प्राकृतिक प्रतीकों में उपवन, जीवन का, घन अन्धकार का, दुख निराशा का और वसन्त यौवन का प्रतीक है ।

गये सब पराग, नहीं ज्ञान
शून्य डाल, रही अन्य रात
आएगा फिर क्या वह प्रात[2]

यहाँ पराग, अन्यरात, प्रात आदि प्रतीक है ।

संक्षेप में निरालाजी की कविताओं में छायावादी प्रतीक विधान लक्षित होती है ।

---

1. अनामिका - पृ.सं. 166
2. गीतिका - पृ.सं. 55

अप्रस्तुत विधान

निरालाजी की छायावादी कविताओं की अप्रस्तुत योजना सुन्दर है जो उनकी कल्पना शक्ति और भाव संवेदना में सहायक है । निरालाजी रूपकों के राजा हैं । परम्परागत और नवीन उपमानों को अपनाकर उन्होंने अपने काव्य में रूपकालंकार का वयन किया है । कवि कई कविताओं में प्रकृति और भावों का रूपक बाँधते है। "रूखी री यह डाल" शीर्षक कविता में एकाधिक अर्थों की व्यंजना है ।

रूखी री यह डाल,
वसन वासन्ती लेगी
देख, खडी करती तप अपलक
हीरक से समीर माला जप,
शैल सुता, अपर्ण अशना
पल्लव वसना बनेगी -
वसन वासन्ती लेगी ।

अपने कई गीतों में कवि दोहरे सांगरूपक बाँधते हैं । "अनामिका" की कविता "प्रिया से" में परम्परित रूपक की शोभा है । "राम की शक्तिपूजा और "तुलसीदास" में विराट रूपकों की सुन्दर सृष्टि है । "भारती जय विजय करे" कविता भी सांग-रूपक का उत्तम उदाहरण है ।

निरालाजी का उपमा विधान अनूठा है । वे उपमाओं के प्रभाव साम्य पर बल देते हैं। विधवा के लिए उन्होंने मूर्त, अमूर्त उपमाओं का प्रयोग किया है । यहाँ "इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी," और "कूर काल तांडव की स्मृति रेखासी" अमूर्त उपमान हैं तो "दीप शिखा सी शान्त भाव में लीन" "वह टूटे तरू की छूटी लता सी दीन" मूर्त उपमान हैं । परिमल की "स्मृति " में सुन्दरी की मुस्कुराहट के लिए उपमाओं की पंक्ति है । "राम की शक्तिपूजा" में घोर निराशा के गहन अन्धकार में, राम की आंखों में सीता की छवि अन्धकार घन में दिप्त की कौंध" के समान छा गयी । " तुलसीदास " में कवि की उपमा योजना अत्यंत भव्य है ।

---

1. गीतिका - पृ.सं. 46

रूपकातिशयोक्ति और उल्लेख अलंकार निरालाजी की कई कविताओं में पायी जाती है। "जूही की कली," शेफालिका समासोक्ति प्रधान है तो परिमल की "माया" शीर्षक कविता में सन्देह अलंकार है। प्रकृतिगत मानवीकरण निरालाजी की छायावादी काव्य की सबसे बडी विशेषता है। "संध्या सुन्दरी" शीर्षक कविता में रूपक और उपमा के सहारे संध्या का मानवीकरण है -

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह संध्या सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।[1]

शब्दालंकारों में कवि ने अनुप्रास का अधिक प्रयोग किया है। श्लेषालंकार उनके काव्य में यत्र तत्र है। उदा: "धन्ये मै पिता निरर्थक था" में "निरर्थक" शब्द श्लिष्ट है। भाव और भाषा के सामंजस्य से उन्होंने ध्वन्यर्थ व्यंजना का पर्याप्त प्रयोग किया। "बादल-राग" की शब्द ध्वनि से अर्थबोध हो जाता है।

संक्षेप में निरालाजी के छायावादी युगीन कविताओं का अलंकार विधान अनूठा है।

छन्द

छायावादी कवियों में निरालाजी का काव्य संगीत और छन्दयोजना उत्कृष्ट है। इनकी संगीतचेतना की विशिष्टता ताल निर्वाह पर निर्भर है, जो उनके मुक्तछन्द में मिलता है। मुक्तछन्द के सम्बन्ध में उसके प्रवर्तक निरालाजी ने कहा है - "मुक्तछन्द वह है जो छन्द की भूमि में रहकर भी मुक्त है उसमें नियम कोई नहीं, केवल प्रवाह कवित्त छन्द का सा जान पडता है। कहीं कहीं आठ अक्षर आप ही आप आ जाते हैं। मुक्तछन्द का समर्थक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छन्द सिद्ध करता है और उसका नियमराहित्य उसकी मुक्ति हिन्दी में मुक्तकाव्य कवित्त छन्द के बुनियाद पर सफल हो सकता है।[2] निरालाजी की राय में मुक्तछन्द और

---

1. परिमल - पृ.सं. 105
2. परिमल की भूमिका

मुक्तगीत काव्य को बन्धन मुक्त करने के लिए आवश्यक है ।

छन्द की दृष्टि से निरालाजी के "परिमल" का अपना महत्व है । छन्द की दृष्टि से इसके प्रथम खण्ड में सममात्रिक सान्त्यानुप्रास कवितायें और तीसरे खण्ड में स्वच्छन्द छन्द की कविताएँ हैं । निरालाजी के मात्रिक छन्द विधान के सम्बन्ध में पंतजी ने लिखा है किन्तु सबसे बड़ी सार्थकता निरालाजी के अक्षर मात्रिक छन्दों की मुक्ति की यह है कि वह मुख्यत: शक्ति तथा ओज के कवि रहे हैं और अक्षर मात्रिक छन्दों का निर्वाह अपनी बंगला की पृष्ठभूमि तथा प्रेरणा की शक्तिमत्ता के कारण जितना अच्छा निरालाजी कर सके हैं उतना और किसी कवि नहीं कर पाए हैं । [1]

निराला की मुक्तछन्द की विशेषता रही कि उसमें कोमल और कठोर भावों का अंकन सफलतापूर्वक किया है । जुही की कली वार्णिक मुक्तछन्द की कविता है जो मुक्तछन्द का कोमल रूप है । लेकिन "बादल-राग, जागो फिर एक बार" में उसका परुषरूप हम देख सकते हैं ।

निरालाजी की छायावादी कविताओं की और एक विशेषता रही कि उन्होंने प्राचीन छन्दों को नया रूप देकर नये छन्दों का आविष्कार किया जो उनकी विद्रोही चेतना से युक्तक्रांतिकारी अन्तर्वस्तु को नवीन रूप में ढालकर हमारे सम्मुख रखने में सक्षम है ।

लय और संगीत निरालाजी के छन्द के प्राण हैं । विषय के अनुसार शब्द संगीत का प्रयोग करनेवाले अकेले कवि हैं कविवर निराला-

उदा: मेरा जीवन
छाया, छाया प्रशमन
मेरा जीवन, मरण
आवरण सदा, न लोक-
नयन सुहाओ- [2]
लाज लगे तो ।

---

1. छायावाद पुनर्मूल्यांकन - पृ.सं. 103 - पंत ।
2. गीतिका - पृ.सं. - 131

शब्द संगीत के समान व्यंजनामिश्रित भावसंगीत से संपृक्त हैं निरालाजी की कविताएँ। संक्षेप में निरालाजी का छन्दविधान एकदम नवीन है और उनके द्वारा प्रवर्तित मुक्तछन्द ने आधुनिक हिन्दी कविता का मार्ग प्रशस्त किया।

काव्यरूप

काव्यरूपों के क्षेत्र में भी निरालाजी अन्य छायावादी कवियों से आगे हैं। वे हिन्दी के श्रेष्ठ गीतकार हैं। उन्होंने गीत, प्रगीत, दीर्घ प्रगीत, प्रबन्धमूलक लम्बी कविताएँ, गीतनाट्य आदि सब प्रकार के काव्य रूपों का प्रणयन छायावादी युग में किया। "गीतिका" उनके छायावादी गीतों का संकलन है जिसमें संगीत के साथ परिष्कृत और उच्चस्तरीय काव्य का समन्वय हुआ है। जुही की कली, भिक्षुक, विधवा जैसी कविताएँ प्रगीत की कोटि में है। "वनबेला," "सरोजस्मृति" आदि वर्णनात्मक दीर्घप्रगीत हैं। "तुलसीदास" और "राम की शक्तिपूजा" प्रबन्धकाव्यात्मक लंबी कवितायें हैं। इन दोनों रचनाओं में प्रबन्धकार की पूरी प्रतिभा विद्यमान है।

निष्कर्ष

निरालाजी छायावाद युग के सबसे प्रौढ और सशक्त प्रतिभावन कवि हैं। अपनी पहली रचना "जुही की कली" के प्रकाशन से वे छायावाद के कर्णधार बन गये। प्रसादजी की प्रारंभिक कविताओं की अपेक्षा निरालाजी की प्रारंभिक कविताएँ छायावाद को पल्लवित करने में अधिक योग दिया है। छायावादी काव्यदृष्टि में निरालाजी की काव्य मान्यताओं का ऐतिहासिक महत्त्व है। छायावाद की प्रमुख विशेषताएँ - वैयक्तिकता और अन्तर्मुखीपन, विद्रोह, प्रकृति, राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना - सबके सम्बन्ध में निरालाजी ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की है। "परिमल" काव्य संकलन में छायावाद की संपूर्ण काव्य प्रवृत्तियों को उद्घाटित करनेवाली "जुही की कली है", दार्शनिक पृष्ठभूमि पर लिखी "तुम और मैं, क्रांति की उद्घोष करने वाला "बादल-राग" है, राष्ट्रीयता से संपृक्त" छत्रपति शिवाजी के पत्र"

"यमुना के प्रति"आदि भिन्न भावों वाली कविताएँ शामिल हैं। "परिमल" में निरालाजी के विद्रोही कृतित्व का पता चलता है, इसी में काव्य की स्वच्छन्दता का उद्घोष है। "परिमल" में प्रकृतिचित्रण भी पर्याप्त मात्रा में है। इसमें संकलित "पंचवटी प्रसंग" अपने ढंग की अकेली रचना है। इस काव्य संकलन ने यह सिद्ध किया है कि मुक्तछन्दमें उन्मद प्रणयव्यापार, दार्शनिक विचार एवं ओजस्विता का अंकन सफलता के साथ हो सकता है। लेकिन पंतजी के छायावादी कालीन "पल्लव" या प्रसादजी की "आंसू" में ऐसी विविधता का एकदम अभाव है। "गीतिका" में निरालाजी का गीतकार व्यक्तित्व उभर आया है। उनके कटु आलोचक शुक्लजी भी यह स्वीकार करते हैं कि संगीत को काव्य के और काव्य को संगीत के निकट लाने का श्रेय निरालाजी को है। उनकी "बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा"से शुक्लजी तक प्रभावित थे।

किसी भी काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियों को अपनी कविता द्वारा उद्घाटित करनेवाला कवि उस काव्यधारा का प्रतिनिधि कवि कहा जा सकता है। इस दृष्टि से देखें तो अपनी पहली कविता से ही वे छायावाद के प्रतिनिधि कवि के आसन पर आसीन हैं। अपनी प्रौढ़ता, स्वच्छन्दता, उन्मद प्रणय, मुक्तछन्द, भाषा लालित्य, प्रकृति का मानवीकरण, इन सभी दृष्टियों से छायावादी काव्य प्रवृत्ति की प्रतिनिधि कविता है जुही की कली"। इसी कविता द्वारा निरालाजी ने सबसे पहले परम्परागत काव्य रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह किया।

संक्षेप में छायावाद के प्रतिनिधि कवियों में निरालाजी की अपनी अलग पहचान है। छायावाद का स्वच्छन्दतावादी तत्व सर्वाधिक मात्रा में निराला में है। स्वच्छन्दतावाद की महत्वपूर्ण विशेषता है विद्रोह। छायावादी कवियों में विद्रोह की प्रवृत्ति निराला में अधिक द्रष्टव्य है।

ʘ ʘ ʘ ʘ ʘ ʘ ʘ ʘ

अध्याय चार
प्रगतिवाद और निराला

भौतिकवादी जीवनदर्शन से प्रेरित सामाजिक चेतना से युक्त काव्यधारा का उदय हिन्दी काव्य में छायावाद के उत्कर्षकाल में ही हुआ। छायावादी रहस्यवादी युग में कविता अतिरंजित कल्पना की लीलाभूमि बन गयी थी। यथार्थजीवन से पलायन करनेवाली हिन्दी कविता को वास्तविक जीवन से संलग्न कराने के लिए हिन्दी काव्य मे एक नयी काव्यधारा का जन्म हुआ जिसे सन् 1936 के आसपास हिन्दी साहित्यकों ने प्रगतिवाद की संज्ञा दी। संघर्ष और गतिशीलता का सन्देश लेकर यह काव्यधारा अवतरित हुई। प्रगतिवाद ने सर्वहारा वर्ग के पक्ष में रहकर जीवन यथार्थ का चित्रण करके, एक वर्गहीन समाज की स्थापना की आकांक्षा रखी।

परिभाषा और स्वरूप

डा. गुलाबराय के अनुसार-" प्रगतिवाद वर्गहीन समाज के पक्ष में है। वह एक प्रकार से मार्क्सवाद का साहित्यक रूप कहा जा सकता है।"[1] हिन्दी के मूर्धन्य आलोचक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में-" हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी आन्दोलन राष्ट्रीयता की ही उपज रहा है। समयांतर में उसे एक विशेष विचारधारा से संलग्न किया गया।"[2] श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा प्रगतिवाद में जो सामाजिक यथार्थवाद है, उसे प्रमुखता देते है। उनके शब्दों में-" प्रगतिवाद सामाजिक यथार्थवाद के नाम पर चलाया गया वह आन्दोलन है, जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु सत्य को उत्तर छायावाद काल में प्रश्रय मिला और जिसने सर्वप्रथम यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी।"[3] डा. गणपतिचन्द्रगुप्त प्रगतिवाद का मूलाधार साम्यवाद या मार्क्सवाद मानते है। उनके अनुसार प्रगतिवाद मार्क्सवादी या साम्यवादी दृष्टिकोण के अनुकूल साहित्यक विचारधारा है।[4]

---

1. साहित्य सन्देश अंक 7-8, 1954 पृ.सं. 256
2. प्रगतिवादी काव्य-शुभाशंसा
3. हिन्दी साहित्य कोश पृ.सं. 468
4. हिन्दी साहित्य का विकास पृ.सं. 298

धर्मवीर भारती भी प्रगतिवाद में मार्क्सवादी प्रभाव को स्वीकार करते है । उनके अनुसार-" रूढ अर्थों में प्रगतिवाद साहित्य की उस दिशा विशेष को कहते हैं जो मार्क्सवादी जीवन दर्शन के अनुसार साहित्य के लिए निर्देशित की गयी है ।"[1] प्रगतिवाद के स्वरूप की व्याख्या डा. इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में-" प्रगतिवाद का प्रेरणास्त्रोत मार्क्सवादी जीवन दर्शन है । जिसके अनुसार जीवन तथा जगत की व्याख्या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर की जाती है । इसी जीवन दृष्टि से प्रेरित प्रगतिवादी काव्य की विशेषताओं को पंजीकृत भी किया गया है - जैसे इसमें जन जीवन की अभिव्यक्ति है, हताश भावना का विरोध है, धरती की गरिमा है, शोषक के प्रति क्रोध और घृणा की अभिव्यंजना है, दीन-भाव का तिरस्कार है, व्यंग्य का महत्व है, वर्गहीन समाज की स्थापना के लिए संघर्ष है, मरणशील एवं गलनशील सामंती तथा पूंजीवादी संस्कृति का खण्डन है, कल्पनाशील छायावादी तथा व्यक्तिवादी प्रयोगवादी काव्य की आलोचना है, स्वस्थ तथा विकासमान मूल्यों का मंडन है ।"[2] मदानजी ने अपनी इस परिभाषा में इस काव्यधारा की अधिकांश प्रवृत्तियों को समेटने का प्रयास किया है ।

श्री मनमथनाथगुप्त प्रगतिवाद को भारतीय राजनीति एवं राष्ट्रीयता का उपज घोषित करते हुए लिखते हैं-" एक पार्टी के नाते कम्यूनिस्ट पार्टी के लिए यह स्वाभाविक था कि वह जिस भी क्षेत्र में जो भी आन्दोलन चले, उसको अपने दल के लिए काम में लाने की चेष्टा करे । पर इसका अर्थ यह नहीं कि प्रगतिशील साहित्य का आन्दोलन कम्यूनिस्ट पार्टी का आन्दोलन है । प्रेमचन्द किसी पार्टी के नहीं थे, पर वे इस समय तक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रगतिशील लेखक बने हुए हैं । इस कारण प्रगतिशील साहित्य से इस आधार पर बिदकना कि वह कम्यूनिस्ट साहित्य है, बिलकुल ऊलजलूल बात है, और ऐसा करके हम कम्यूनिस्टों को बेकार वह महत्व देते हैं, जो किसी भी तरह उनको प्राप्य नहीं है ।"[3] पर प्रगतिवादी काव्य में मार्क्सवाद का प्रभाव स्पष्ट है । प्रगतिवादी साहित्य के मूल में वर्ग संघर्ष की भावना और क्रांतिकारी चेतना है, यह मार्क्सवाद के प्रभाव का परिणाम है ।

हिन्दी के अधिकांश आलोचक इसी पक्षधर हैं कि प्रगतिवाद ने जीवन के प्रति एक यथार्थवादी दृष्टिकोण को अपनाया है । यहाँ नियतिवाद और रूढिग्रस्त प्राचीनता के विरूद्ध विद्रोह का स्वर है । जो इसके पूर्व भी भारतीय साहित्य में मौजूद थी ।

---

1. प्रगतिवाद - एक समीक्षा - पृ.सं. 7
2. कविता और कविता पृ.सं. 21 3. प्रगतिवाद की रूपरेखा पृ.सं. ।

लेकिन मार्क्सवादी समाजवाद ने प्रगतिवादी चेतना को दीप्ति प्रदान करके उसे वैज्ञानिक और जनवादी रूप प्रदान किया । अत: शोषित शोषक का संघर्ष, शोषित की विजय एवं वर्गहीन समाज की स्थापना की संकल्पना मार्क्सवादी दर्शन के आलोक से प्राप्त हुई थी। अत: हिन्दी की प्रगतिवादी काव्यधारा के स्थायन में मार्क्सवाद का योगदान महत्वपूर्ण है ।

लेकिन यह ध्यान देने योग्य है कि " प्रगतिशील लेखकसंघ" के घोषणापत्र में कहीं भी मार्क्सवादी का उल्लेख नहीं । प्रगतिशील आन्दोलन के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए सन् 1936 मई के हंस में प्रेमचन्दजी ने लिखा था -" इस संघ का उद्देश्य जैसा हम पहले लिख चुके हैं, साहित्य और कला में प्रगति पैदा करना, जीवन की यथार्थताओं का चित्रण करना और जनता के सुख:दुख और कशमकश को पूर्णरूप से अभिव्यक्ति करके उस उज्वल भविष्य की ओर ले जाना है जिसके लिए आज विश्व का मानवसमाज कोशिश कर रहा है "[1] । इस सन्दर्भ में डा. नगेन्द्र द्वारा संपादित हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रगतिवाद की व्याख्या विचारणीय है -" आज के युग में बुनियादी शक्तियाँ दो हैं जो पूंजीवाद को नष्टकर समाजवाद स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं । इन बुनियादी शक्तियों को पहचानने और उनका समर्थन करनेवाला साहित्य अनिवार्य रूप से किसानों मज़दूरों के संघर्ष को स्थापित कर उसे बल प्रदान करता है तथा पूंजीवादी (और सामंतवादी) शक्तियों की शोषक, स्वार्थी, स्वकेन्द्रित, जर्जर, विसंगतिमय प्रवृत्तियों पर चोट करता है।[2] अत: हर एक युग में दो शक्तियों के बीच संघर्ष चलता है - एक पुरानी शक्ति और दूसरी नयी जीवनशक्ति । नवीन शक्ति सामान्य जनता के लिए मंगलकारी एक समाज की सृष्टि की कोशिश करती है । यह नवीन शक्ति सामाजिक है, उसमें पीड़ा और अभाव तो है साथ ही संघर्ष की क्षमता, विजय पर अटल विश्वास और सुन्दर भविष्य की आकांक्षा है । अत: वे यथार्थवादी हैं । युग की यथार्थता का प्रतिनिधित्व करनेवाला साहित्य प्रगतिवाद के अन्तर्गत आ जाता है । प्रेमचन्दजी ने साधारण जनता के जीवन संघर्ष को वाणी देने वाले यथार्थवाद की और उन्मुख होनेवाले कला में प्रगति रखनेवाले साहित्य को ही अपना लक्ष्य माना था । उस समय समाजवाद में मानवसमाज के लिए उज्वल भविष्य की आकांक्षा थी । अत:साहित्य का भव्य उद्देश्य भी दूसरा नहीं था । प्रेमचन्दजी को विश्वास था कि एक देश के लिए

---

1. हंस मई 1936 प्रेमचन्द
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ.सं. 633-डा. रामदरश मिश्र

कल्याणकारी सामाजिक व्यवस्था दूसरे देश केलिए अमंगलकारी नहीं बन सकती ।

प्रेरणास्त्रोत और परिस्थितियाँ

किसी भी काव्यधारा के पल्लवन और विकास में अनुकूल परिस्थितियाँ क्रियाशील हैं । वे परिस्थितियाँ देशी या विदेशी हो सकती हैं । प्रगतिवाद उन्नीसवीं सदी में भारत में पनपी काव्यधारा है, संयोगवश विदेशी परिस्थितियाँ भी उसकेलिए प्रेरणा-दायक बन गयीं ।

अंग्रेज़ी साम्राज्य की स्थापना के साथ भारत में औद्योगीकरण का केन्द्रीकरण आरंभ हुआ । परिणाम हुआ कि शोषित- शोषकवर्ग का उदय । राजनीतिक गुलामी ने भारत में पूंजीवाद और सामन्तवाद को आगे बढाया । साधारण जनता गरीब, अशिक्षित और अपमानित रहे। उस समय।सन् ।9।7।रूस में मार्क्स की साम्यवादी व्यवस्था की स्थापना से आमजनता एक हो गयी थी । वहाँ वर्गभेद मिट गया था । भारत के बुद्धिजीवियों का ध्यान उस ओर गया । रूसी राजनीतिक चेतना से प्रभावित भारतीय बुद्धिजीवियों ने यहाँ के किसान मज़दूर वर्ग को जगाने का प्रयास किया । मार्क्स के अनुसार सृष्टि के स्वीकारात्मक और नकारात्मक शक्तियों के संघर्ष से जीवन बनता है । जीवन का आधार पदार्थ है । इसका परीक्षण भौतिकवाद है । यह संघर्ष शासक शासित, शोषक-शोषित तथा पूंजीपति- श्रमिक वर्गों के बीच होता रहा है। मार्क्स के इसी सिद्धान्तों के आधार पर ही साम्यवाद खडा है । भारत में भी मार्क्सवाद की प्रेरणा के फलस्वरूप पूंजीवादी विरोध एवं समाजवाद के प्रति गहरी आस्था उत्पन्न हुई । यह भारत की राष्ट्रीयता का सत्य बन गया ।

सन् ।925 में भारत में साम्यवादी दल की स्थापना और प्रचार प्रसार शीघ्र गति से हुआ । सन् ।929 में बंबई से श्रीपाद अमृत डांगे के सम्पादकत्वमें 'सोशियलिस्ट' नामक साम्यवादी विचारधारा की पत्रिका निकली । एम. एन. राय जैसे भारत के अनेक नेता एवं विचारक साम्यवाद से मिल गये । भारतीय समाज की दयनीय स्थिति एवं सामान्य जन जीवन को बल देनेवाले, उनके नायकत्व को स्थापित करनेवाले, सामन्तवादी पूंजीवादी वर्ग को कुचलनेवाले मार्क्स के दर्शन पर आधारित साम्यवाद की स्थापना इस प्रगतिवादी

काव्यधारा के विकास के मूल कारण बने ।

अपने राजनैतिक जीवन के प्रारंभिक दिनों में गाँधिजी किसान मज़दूर आन्दोलन के नेता रहे । चंपारन और खेडा के किसान आन्दोलन की सफलता, सन् 1917 के अहम्मदाबाद के मज़दूरों की हडताल की सफलता आदि के नेता स्वयं गाँधिजी थे । लेकिन बाद में उन्होंने वर्गचेतना को उतनी पर्वाह नहीं की, उनका पूरा ध्यान भारत को स्वतंत्र कराने में लगा गया । अंग्रेज़ सरकार कांग्रेसी एवं क्रांतिकारी आन्दोलनों के दमन में तुले थे । सन् 1930-31 के आसपास भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरू जैसे क्रांतिकारियों को फाँसि की सजा दी गई । चन्द्रशेखर आज़ाद पुलीस का सामना करते शहीद हो गये । देशभक्त जनता जेलों पर बन्द कर दिये गये । गाँधिजी द्वारा संचालित स्वाधीनता आन्दोलन में युवा-वर्ग की विद्रोह चेतना के लिए जगह नहीं थी । गाँधिजी के अहिंसावादी सिद्धान्तों से असन्तुष्ट युवावर्ग ने सन् 1934 में कोन्ग्रेस सोशयलिस्ट पार्टी की स्थापना की । कोंग्रेस की युवापीढी का नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू, सुभाष चन्द्रबोस जैसे प्रखर व्यक्तित्व वाले नेताओं के हाथ में आ गये । इस राजनीतिक जागरण का प्रभाव भी प्रगतिवाद पर पडा ।

सन् 1929 के कोंग्रेस अधिवेशन के अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरूजी ने स्वयं अपने को साम्यवादी और प्रजातंत्रवादी घोषित किया । आगे चलकर सन् 1935 में समाजवादी कोंग्रेसियों की एक सभा को संबोधित करते हुए आचार्य नरेन्द्रदेव ने इस बात पर बल दिया कि राष्ट्रीय आन्दोलन को व्यापक रूप देने के लिए उसे समाजवादी आदर्शों के अनुरूप आर्थिक वर्गचेतना के आधार पर गठित करना चाहिए । इस सन्दर्भ में भारत के भिन्न भिन्न क्रांतिकारी दलों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ समाजवाद को अपना लक्ष्य घोषित किया । साहित्य भी इन राजनीतिक परिस्थितियों से अप्रभावित नहीं रहे ।

द्वितीय विश्व महायुद्ध के साथ दरिद्रता, महंगाई और वर्गवाद का बोलबाला हुआ । इसके साथ बंगाल के अकाल ने भारत के जन सामान्य को और भी पद दलित कर दिया । युद्ध की समाप्ति के साथ, बेरोजगारी और शोषण का दमन चक्र सर्वत्र

आगे बढा । देश की इस दयनीय दशा पर साहित्यकों का ध्यान जाना स्वाभाविक था।

प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन सन् 1935 में पैरीस में हुआ । इसके अध्यक्ष रहे इ.एम.फास्टर। भारतीय लेखकों ने "लंदन मैनिफेस्टो" का स्वागत करते हुए सन् 1936 मे "प्रगतिशील लेखक संघ "बनाकर उसका प्रथम अधिवेशन लखनाऊ में किया । प्रेमचन्दजी इस अधिवेशन के अध्यक्ष रहे । प्रेमचन्दजी ने साहित्य का उद्देश्य समझाते हुए सामाजिक राजनैतिक परिवेश का जिक्र करते हुए लेखकों को व्यापक मार्ग निर्देशन दिया । तभी से इस काव्यधारा का नाम प्रगतिवाद पड गया ।

लेकिन सन् 1936 के पूर्व ही हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील चेतना से युक्त साहित्य की पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी । रूसी राज्यक्रांति की सफलता, साम्यवादी दल की स्थापना आदि से हमारी राजनीति और समाज में साम्यवादी विचारधारा का प्रचार हो चुका था । ऐसी स्थिति में साहित्य का उस ओर आकर्षित हो जाना स्वाभाविक थी । अत: छायावाद के यौवनकाल में ही समाजवादी आदर्श पर बल देनेवाली कविताओं की रचना हो चुकी थी ।

डा. नामवरसिंह के अनुसार छायावाद के गर्भ से ही प्रगतिवाद का उदय हुआ वह भी सन् 1930 के बाद, क्योंकि "यदि प्रगतिवाद की माँ मार्क्सवाद ही है तो हिन्दी में प्रगतिवाद का जन्म उन्नीसवीं सदी में ही हो जाना चाहिए था । क्योंकि उस समय यूरोप में मार्क्सवाद की धूम मची हुई थी और हिन्दुस्थानी लोग तब तक यूरोप के संपर्क में अच्छी तरह आ गये थे"।[1]

उनके अनुसार कांग्रेस में वामदल की स्थापना, मज़दूर आन्दोलन के परिणाम स्वरूप उदित राजनीतिक नवजागरण के प्रभाव स्वरूप "कविता में कल्पना के स्थान पर सामाजिकता का आग्रह और वैयक्तिकता के स्थान पर सामाजिकता का आग्रह सन् 1930 के बाद ही बढने लगा था ।"[2] यह भारतीय साहित्य की मांग थी । रूसी हवा का प्रथम प्रभाव छायावाद के शब्द शिल्पी पंतजी पर पड़ा। सन् 1938 में 'रूपाभ' में पंतजी ने लिखा-" इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है, उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं - अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती । उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है ।

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ.सं. 115 डा. नामवरसिंह
2. वही पृ.सं. 84 डा. नामवरसिंह

हमारा उद्देश्य इस इमारत में थूनियाँ लगाने का कदापि नहीं है जिसका कि गिरना अवश्यंभावी है। हम तो चाहते हैं, उस नवीन के निर्माण में सहायक होना जिसका प्रादुर्भाव हो चुका है।"[1] उन्होंने मार्क्सवाद, गांधीवाद, सामाजिकता और वैयक्तिकता का समन्वय किया। "गुंजन" और "युगान्त" की कविताओं में स्वप्न और सत्य, कल्पना एवं यथार्थ का द्वन्द्व स्पष्ट है। इस द्वन्द्व की परिसमाप्ति "युगवाणी" और "ग्राम्या" की कविताओं में हुई। निरालाजी की प्रगतिशीलता साधारण जनता के साथ उनकी लगाव के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुई थी। सामाजिक चेतना संपन्न कवितायें निरालाजी के सन् 1929 में प्रकाशित 'परिमल' में भी संकलित हैं। निरालाजी और पंतजी ने प्रगतिवादी काव्यधारा की सुदृढ नींव तैयार की।

संकीर्ण व्यक्तिवादिता के स्थान पर विशाल सामाजिकता, अतिशय कल्पना, आध्यात्मिकता एवं रहस्यवाद के स्थान पर जीवन के यथार्थ एवं सामाजिक सुखदुख की अभिव्यक्ति इस काव्य धारा में हुई। अतः छायावादी काल्पनिकता, व्यक्तिवादिता एवं अन्तर्मुखीपन की प्रतिक्रिया ही प्रगतिवाद में दिखाई दी। छायावादी भाववादी संस्कृति की सीमा में रहकर इन कवियों ने मार्क्सवादी प्रभाव को स्वीकारा। पूर्ववर्ती काव्यधारा की स्वाभाविक परिणिति होने के कारण प्रगतिवाद की अपनी दुर्बलतायें हैं। डा. नामवरसिंह के शब्दों में-" जिस तरह प्रगतिवाद में पूर्ववर्ती साहित्य परम्परा की सामाजिक चेतनावाले तत्वों का विकास हुआ, उसी तरह उसके व्यक्तिवादी भाववादी संस्कारों की भी छाया बहुत दिनों तक पड़ती रही। ये दोनो बातें सिद्ध करती हैं कि प्रगतिवाद का उद्भव और विकास अपनी ही सामाजिक और साहित्यक परिस्थिति में हुआ'।[2] इस युग में प्रेमचन्दजी द्वारा संपादित "हंस" के अलावा "स्वाभ","जागरण" "जनशक्ति" "नया साहित्य" "प्रगति" "विप्लव" जैसे पत्र-पत्रिकाओं ने भी प्रगतिशील आन्दोलन में योग दिया। इन पत्रिकाओं ने दमन और आर्थिक कष्ट के बावजूद प्रगति की नयी आवाज़ की रक्षा की।

प्रगतिशील आन्दोलन की प्रेरणा में जन्मी इन पत्र - पत्रिकाओं के माध्यम से त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रामविलासशर्मा, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह सुमन जैसे कवियों की कवितायें प्रकाशित हुई। मुक्तिबोध ने भी अपनी रचनाओं में

---

1. स्वाभ । अंक । जुलाई 1938 । संपादकीय
2. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ.सं. 85-86 डा. नामवरसिंह

प्रगतिवाद की प्राणवान अभिव्यक्ति की ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारत की राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यक परिस्थितियों के साथ मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव भी हिन्दी में प्रगतिवादी काव्यधारा की पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायक सिद्ध हुई ।

प्रगतिशील और प्रगतिवाद

हिन्दी काव्य में प्रगतिवाद के साथ प्रचलित दूसरा शब्द है "प्रगतिशील"। "प्रगतिशील" शब्द का प्रयोग विशाल अर्थ में है, समाज की प्रगति को लक्ष्य बनाकर लिखा जानेवाला साहित्य ही इस कोटि में आता है । "प्रगतिवाद" तो मार्क्सवादी दर्शन पर आधारित साहित्य के लिए प्रयुक्त शब्द है । प्रगतिशील साहित्य तो किसी "वाद" की सीमा के बाहर है । डा. शिवदानसिंह चौहान के शब्दों में -" एक प्रगतिशील कवि गांधीवादी हो सकता है, मार्क्सवादी भी और द्वैत - अद्वैतवादी भी । मेरा अर्थ है, आज भी जो साहित्य पाठक को स्वयं प्रेरणायें देता है, मनोविकृतियों को उभारकर व्यक्ति को असामाजिक और मानव द्रोही नहीं बनाता, जीवन संग्राम में आगे बढने का बल और साहस देता है, और मनुष्य की चेतना को गहरा, व्यापक और मानवीय बनाता है, हिंसा और द्वेष को नहीं बढाता और जो वास्तव में जीवन की मार्मिक और सार-गर्भित स्थितियों का चित्रण करता है अर्थात् जिसमें कला सौष्ठव और गहराई है, वह सब प्रगतिशील हो सकती है ।"[1] डा. रमेशचन्द्र शर्मा ने प्रगतिवाद और प्रगतिशील का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है -" उस साहित्यकार को प्रगतिशील कहा जा सकता है जो मानव समाज के यथार्थ रूप का चित्रण करते हुए आगे बढने की प्रेरणा प्रदान करे । यह प्रगतिशील सामान्य और व्यापक अर्थ में है । हिन्दी में प्रगतिवाद का अर्थ हुआ - साम्यवादी विचार धारा से प्रेरित और उसके सिद्धान्तों के अनुसार लिखा गया साहित्य । इसके विपरीत प्रगतिशील का अर्थ हुआ - व्यापक मानवता से प्रेरित ऐसा साहित्य जिसमें जनजीवन के यथार्थ का चित्रण करते हुए मानव और समाज के कल्याण और विकास की आकांक्षा व्यक्त की गयी हो"[2]

---

1. साहित्य सन्देश, प्रगतिवाद का प्रवृत्ति निरूपण अंक 7-8
2. छायावाद से नयी कविता - पृ.सं. 73-74 - डा. रमेशचन्द्रशर्मा

प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष भाषण में प्रगतिवादी जनचेतना को बल देकर प्रेमचन्दजी ने कहा -" नीतिशास्त्र और साहित्य शास्त्र का लक्ष्य एक ही है - केवल उपदेश, विधि में अन्तर है । नीतिशास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है, साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों को चुन लिया है । मुझे यह कहने में झिझक नहीं है कि मैं और चीज़ों की तरह साहित्य को भी उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ । हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाईयों का प्रकाश हो जो हम में गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है । "[1]

सन् 1938 के अधिवेशन में कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी समाज की प्रगति में सहायक साहित्य को प्रगतिशील घोषित करते हुए अपने अध्यक्ष भाषण में लिखा-" जो साहित्य और अन्य कलाएँ रूढ़ी पंथी हाथों में पड़कर निर्जीव होती जा रही है उनको उन हाथों से मुक्त करा के उनका निकटतम सम्बन्ध जनता से कराना और उन्हें जीवन यथार्थ का माध्यम तथा नये विश्व का निर्माण करने वाली शक्ति बनाना है ।[2] यहाँ प्रेमचन्दजी और कवीन्द्र रवीन्द्र प्रगतिशीलता को किसी वाद विशेष का सूचक नहीं बल्कि समाज की प्रगति को लक्ष्य करके लिखे जानेवाले साहित्य को माना है ।

प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष भाषण में 'प्रगतिशील लेखक संघ' नाम के संबन्ध में प्रेमचन्दजी ने कहा " प्रगतिशील लेखक संघ यह नाम ही मेरे विचार में गलत है । साहित्यकार या कलाकार स्वभावत: प्रगतिशील होता है । अगर उसका यह स्वभाव न होता तो वह शायद साहित्यकार ही न होता ।[3] प्रगतिशील और प्रगतिवाद का अन्तर स्पष्ट करते हुए गणपतिचन्द्रगुप्त ने प्रगतिवाद की परिभाषा इसप्रकार दी है - "राजनीति के क्षेत्र में जो मार्क्सवाद है वही साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद है ।"[4] अत: प्रगतिवाद का संबन्ध मार्क्सवाद से है जब कि प्रगतिशील किसी वाद की सीमा के बाहर है, समाज के यथार्थ रूप का अंकन करनेवाला साहित्यकार प्रगतिशील है । वह समूचे मानव समाज के कल्याण की आकांक्षा रखता है, विश्व मानवता ही उसकी प्रेरिका है।

---

1. साहित्य सन्देश - पृ.सं. 19 प्रेमचन्द
2. प्रगतिवाद पृ.सं. 336 - शिवदानसिंह चौहान
3. साहित्य का उद्देश्य पृ.सं. 19 प्रेमचन्द
4. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास-पृ.सं-125 गणपतिचन्द्रगुप्त

प्रगतिशील साहित्य से प्रेमचन्दजी का भी उद्देश्य साधारण जनता के जीवन संघर्ष को वाणी देनेवाला, यथार्थवाद की ओर उन्मुख होनेवाला, कला में प्रगति चाहने वाला साहित्य था ।

अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रेमचन्दजी और रवीन्द्रजी ने कहीं भी मार्क्सवाद का उल्लेख नहीं किया । डा. नामवरसिंह, डा. रामविलास शर्मा जैसे प्रगतिवाद के महान आलोचक भी प्रगतिवादी रचनाओं को प्रगतिशील कहने के पक्षधर हैं । डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में-" इस संबन्ध में ऐतिहासिक तथ्य यह है कि प्रगतिशील लेखकों में कम्यूनिस्ट और गैर कम्यूनिस्ट दोनों तरह के लेखक रहे हैं । प्रगतिशील लेखक मार्क्सवाद से प्रभावित रहे हैं, लेकिन यह प्रभाव भिन्न भिन्न प्रकार का रहा है ।"[1] डा. रामदरश मिश्र भी प्रगतिवादी साहित्य को प्रगतिशील कहा है। उनके शब्दों में -" छायावादी कविता में प्रगतिशील चेतना की उपस्थिति दूसरे अर्थ में खोजी जा सकती है । एक तो ठेठ प्रगतिशील अर्थ में, दूसरे अपने समय की नई चेतना की पहचान के रूप में । ठेठ प्रगतिशील अर्थात् मार्क्सवादी दृष्टि से प्रभावित चेतना सन् ३६ के बाद की छायावादी कविता में लक्षित होती है" ।[2]

हिन्दी में प्रगतिवाद का सम्बन्ध मार्क्सवाद से है, इसलिए इस काव्यधारा के कवियों का वामपंथी होना अनिवार्य है । प्रगतिवाद शब्द की प्रयुक्तिसे इस काव्य धारा के कवि जो समाजिक चेतना से सुसंपन्न और रोषपूर्ण आक्रोश के स्वर में गरीबी और भूख के चित्रण करने वाले हैं वामपंथी विचार धारा के अभाव में इस काव्यधारा के बाहर रह जायेंगे । निरालाजी, अंचल, नरेन्द्रशर्मा जैसे कवि इसी कोटि में आते हैं । अत: साहित्यकार जो धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक सभी प्रकार के अन्याय के विरुद्ध लडनेवाले होते हैं उनके लिए प्रगतिशील शब्द ही अधिक उपयुक्त है।

संक्षेप में कहें तो प्रगतिवादी काव्यधारा को प्रगतिशील शब्द ही अधिक उपयुक्त है। प्रस्तुत काव्यधारा के लिए निरालाजी की महत्वपूर्ण योगदान की परिचर्चा के सन्दर्भ में प्रगतिशील शब्द अधिक सार्थक है क्यों कि निरालाजी किसी सीमित वाद के घेरे में आनेवाले कवि नहीं थे ।

---

1. प्रगतिशील साहित्य की समस्यायें पृ.सं. 144 - डा. रामविलासशर्मा
2. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - पृ.सं 113 - सं.प्रभाकर श्रोत्रिय

प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति आक्रोश, क्रांति की भावना, सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह एवं रूढियों का विरोध, नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण, नवीनता का समर्थन, लोकसुलभ भाषा शैली आदि प्रगतिशील काव्यधारा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। साम्राज्यवाद एवं पूंजीवाद का विरोध, देशप्रेम, नवीन युग एवं नये मानव प्रतिष्ठा की कामना आदि इस काव्यधारा के पोषक तत्व हैं।

शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति आक्रोश

संघर्ष और समस्या प्रगतिवादी काव्य की एक विशेषता रही। यह संघर्ष अधिकांशत: सामाजिक स्तर पर है। यहाँ निम्न वर्ग के दीन चित्रण से सहानुभूति उत्पन्न करने के साथ साथ उस समस्या के समाधान पर भी बल दिया जाता है। शोषकों के अन्याय से मुक्ति ही इसका एकमात्र उपाय है।

प्रगतिवादी समाज में वर्गचेतना एवं वर्ग संघर्ष केलिए ईश्वर, धर्म, परलोक और भाग्य सम्बन्धी विचारों का उन्मूलन आवश्यक मानते हैं। केदारनाथ अग्रवाल रोजी रोटी के लिए ईश्वर पर विश्वास रखनेवाले मज़दूर वर्ग से कहते हैं -

रोटी तुम को राम न देगा
वेद तुम्हारा काम न देगा।
जो रोटी के लिए लडेगा,
वह रोटी कोआज वरेगा।[1]

शोषक वर्ग आध्यात्मिक मान्यताओं के सहारे अपने शोषण प्रवृत्ति को आगे बढाते हैं। शोषक वर्गों के प्रति घृणा उत्पन्न करना प्रगतिवादी काव्य का लक्ष्य रहा। उनकी कविताओं में समाजवादी नेता, सेठ, जमीन्दार सब स्वार्थी, लम्पट, धूर्त, क्रूर और

---

1. थोडे गीत - पृ.सं. 47

निर्दयी हैं - "डांगर" शीर्षक कविता में अग्रवालजी ने श्रमिक वर्ग को लूटने वाले पूंजीपतियों का चित्रण किया है -[1]

ये कामचोर, आरामतलब
मोटे तोंदिलल भारी भरकम
हट्टे कट्टे सब डांगर ऊंधा करते हैं,
हम चौबीस घंटे हंफते हैं ।

ये पूंजीपति देश की आज़ादी के शत्रु और अंग्रेज़ों के भक्त है -

ये नीच प्रकृति
ये भ्रष्ट बुद्धि
आज़ाद विचारने के दुश्मन
हट्टे कहे डांगर उठकर आगे बढ़ने से डरते हैं
हम आज़ादी को मरते हैं ।[2]

किसान मज़दूर वर्ग की दयनीयदशा का सहानुभूतिपूर्ण चित्रण करके प्रगतिवादी कवि समाज का ध्यान आकर्षित करते हैं । ठेला खींचनेवाले मज़दूरों को निकट से देखकर नागार्जुन ने लिखा -

कुली मज़दूर हैं
बोझा ढोते हैं खींचते है ठेला ।
भाप से पड़ता है साब का धूल धुआं
थके मांदे जहां नहीं हो जाता है ढेट
सपने में भी सुनते है धरती की धड़कन ।[3]

ऐसे श्रमिक वर्ग ही धरती का वास्तविक स्वामि है जो अपना रक्त सुखाकर सोना उगाता है -

यह धरती है उस किसान की
जो बैलों से कंधों पर,
बरसात घाम में
जुआ भाग्य का रख देता है
खून चाटती हुई वायु में[4]

---

1. युग की गंगा - पृ.सं.4 2. वही - पृ.सं. 4
3. प्यासी पथराई आंखें - पृ.सं. 21 - नागार्जुन
4. युग की गंगा पृ.सं. 44 -केदारनाथ अग्रवाल

समाज में व्याप्त अन्याय, अनाचार, दमन, शोषण और हिंसा के परिणाम स्वरूप वर्ग संघर्ष होता है । इसके अलावा जातीय संस्कृति की रक्षा, स्वाधीनता और जनवादी अधिकारों के लिए भी संघर्ष चलता है । समाज का असंतुलन ही संघर्ष का कारण है । शोषक समाज के कारण शोषित सदस्यों को बेबसी और गरीबी का जीवन बिताना पड़ा । भोजन और वस्त्र के अभाव में तपेदिक के शिकार बने गरीब का यथार्थ चित्रण सुमनजी ने किया है -

रक्षित है लाज लंगोटी पर हैं कंठ बोलते घरर घरर
आ रही असार दुर्गन्ध पसीने और बीथड़ों से भरभर
कुछ दमा तपेदिक से बेदम कुछ खांस रहे हैं पड़े पड़े
सम्पत्ति फटी मिर्जई और अधजली बीड़ियों के टुकड़े ।[1]

साम्राज्यवादी शक्तियों की कटु आलोचना करते हुए, देश की मिट्टी की आवाज़ साम्राज्यवादियों तक पहुँचाते हुए सुमनजी ने लिखा -

देखें कल दुनिया में तेरी होगी कहाँ निशानी
जो तुझको न डूब मरने को भी दुल्लुभर पानी
शाप न देंगे हम बदला लेने की आन हमारी
बहुत सुनाई तू ने अपनी, आज हमारी बारी ।[2]

सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह

अतिशय काल्पनिकता की एकान्त भूमि में विचरण करने वाली कविता को सामाजिक यथार्थ के ऊपर खड़ा करने का स्तुत्य कार्य प्रगतिवाद ने किया । प्रगतिवाद में हिन्दी कविता ने यथार्थ के प्रत्यक्ष सन्दर्भ से सम्बन्ध जोड़ा । बेकारी, अशिक्षा, धार्मिक रूढ़ियाँ, जातिभेद जैसे समाज में प्रचलित अनाचारों के यथार्थ चित्रण के साथ प्रेम और सौन्दर्य का यथार्थ चित्रण भी इस काव्यधारा की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । द्वितीय महायुद्ध के अवसर पर बंगाल पर जो अकाल पड़ा उसका नग्न चित्रण शिवमंगल सिंह सुमन ने किया है ।

---

1. प्रणय सृजन पृ.सं. 8-9 सुमन
2. वही पृ.सं. 76 वही

निपट दुधमुँहे बच्चे सूखी छाती से आसक्त
चूस रहे माँ के जीवन का बचा बचाया रक्त
जिस गोदी में जीवन पाया पाया नाज-दुलार
आज उसी में बिना कफन के सोये शिशु कुमार ।

सामाजिक यथार्थ का बहु आयामी चमक मुक्तिबोध की कविताओं में द्रष्टव्य है । जीवन यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए फैंटसी तथा नवीन प्रयोगों का सहारा मुक्तिबोध की रचनाओं में ही देख सकते हैं । वे मानसिक यथार्थ का सामाजिक सत्य के साथ मेल बिठाते हैं -

लेकिन उधर उस ओर
कोई बुर्ज के उस तरफ जा पहुँचा,
अँधेरी घाटियों में के गोल टीलें, घने पेड़ों में -
कहीं पर खो गया ,
महसूस होता है कि वह बेनाम
बेमालूम दर्रों के इलाके में
। सन्नाटे के सुनहले तेज आकसों के धुंधलके में ।
मुहैया कर रहा लड़कर
हमारी हार का बदला चुकाने आएगा ।
संकल्पधर्मी चेतना का रक्तप्लावित स्वर
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकार हो जाएगा ।[2]

सामाजिक यथार्थ को तीखे व्यंग्य के साथ प्रकट करने में प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन सफल हुए । प्रगतिवादी यथार्थ की व्यंग्य प्रधानता की विशिष्टता उन्होंने प्रदान की -

ओ रे प्रेत
कड़क कर बोले नरक के मालिक यमराज
सच सच बतला
कैसे मरा तू
भूख से अकाल से [3]

---

1. प्रलय सृजन - सुमन 2. चाँद का मुँह टेढ़ा है - मुक्तिबोध
3. कविता - प्रेत का बयान पृ.सं. 46 नागार्जुन

अपनी अनुभूतियों को व्यंग्यात्मक ढंग से कथात्मक अभिव्यक्ति देने में नागार्जुन कुशल हैं।

प्रगतिवादी काव्य में प्रेम स्वस्थ, व्यावहारिक, प्रेरणादायक और यथार्थ है । भूख और प्रतिकूल परिस्थितियाँ मनुष्य को विवाहिता प्रिया से विमुख करता है -

घोर निर्जन में परिस्थिति ने दिया है डाल,
याद आता तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल,
कौन है वह व्यक्ति जो चाहिए न समाज ?
कौन है वह एक जिसको नहीं पडता दूसरे से काज ?
चाहिए किसको नहीं सहयोग ?
चाहिए किसको नहीं सहवास ?
कौन चाहेगा कि उसका शून्य में टकराये यह उच्छवास ?
हो गया हूँ मैं नहीं पाषाण ।

प्रगतिवादी कवियों ने सामाजिक यथार्थ को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहारा लिया है । अतः उनका प्रकृति चित्रण, जीवन्त और आकर्षक है । खेत में खडे गेहूँ पौधे का चित्रण केदारनाथ अग्रवाल के शब्दों में -

आर पार चौडे खेतों में
चारों ओर दिशायें घेरे
लाखों की अगणित संख्या में ।
ऊँचा गेहूँ डटा खडा है
ताकत की मिट्टी बाँधे है,
हिम्मतवाली लाल फौज सा
मर मिटने को झूम रहा है -

देहाती मिट्टी और ग्रामीण जीवन का सहज भोलेपन नागार्जुन की कविता में है । ऐसे चित्रण में जन-जीवन के दुख-दर्द का सफल वर्णन है -

मल्लाहों के नंग धडंग छोकरे
दो दो पैर

---

1. सतरंगे पंखोंवाली पृ.सं. 46 - नागार्जुन
2. युग की पृ.सं. 16 केदारनाथ अग्रवाल

हाथ दो दो
प्रवाह में खिसकती रेत को ले रहे टोह
बहुधा- अवतरित चतुर्भुज नारायण ओह
खोज रहे पानी में जाने कौस्तुभ मणि ।[1]

प्रगतिवादी कवि ने नारी संम्बन्धी पुरानी मान्यताओं को दूर करके यथार्थ प्रकृत रूप में उसका चित्रण किया । पंतजी ने उसकी बन्धन मुक्ति पर जोर दिया और स्वस्थ समाज के विकास के लिए उसकी मुक्ति की घोषणा की -

मुक्त करो नारी को मानव
चिर बंदिनि नारी को
युग युग की बर्बर कारा से
जननि, सखी, प्यारी को

प्रगतिवादी सामाजिक यथार्थवादी दृष्टि से इन कवियों ने नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण किया । नारी का दैन्य-पीडामय चित्र केदारनाथअग्रवाल के शब्दों में -

रनिया अब तक जन्मान्तर से ज्यों की त्यों पूरी भूखी है ।
मैं जन्मान्तर से वैसा हो ज्यों का त्यों पूरा खाता हूँ ।
रनिया बिलकुल वही वही है, चिरकुट हो चिरकुट पहने है
मैं भी बिलकुल वही वही हूँ, रेशम हो रेशम पहने हूँ ।
रनिया मेरी दुखी बहन है, वह निदाघ में मूरझ रही है ।
मै रनिया का सुखी बन्धु हूँ चिर वसंत में विंहस रहा हूँ ।[2]

नारी सौन्दर्य का चित्रण नागार्जुन के शब्दों में -

आगे से आया
अलकों के तेलाक्त परिमल का झोंका
रग रग में दौड गई बिजली
तन गई रीढ ।[3]

प्रगतिवादी कवियों की नारी संकल्पना और सौन्दर्यबोध यथार्थ के निकट है ।
डा. विश्वंभर नाथ उपाध्याय के शब्दों में- " कल्पना के झिलमिल सौन्दर्य के स्थान पर इन रचनाओं में वर्ण्यपदार्थ या दृश्य अपने सौन्दर्य की प्रतिष्ठा का प्रयत्न अधिक है ।"[4]

---

1. सतरंगे पंखोंवाली पृ.सं. 19 नागार्जुन
2. युग की गंगा - पृ.सं. 40 केदारनाथ अग्रवाल 3. सतरंगे पंखोंवाली पृ.सं. 17नागार्जुन
4. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा पृ.सं. 391.

क्रांति की भावना

प्रगतिवादी कवि सामन्तवाद और पूंजीवाद को विश्वमानवता के दुश्मन मनते हैं। इसलिए वे इन शक्तियों को नष्ट भ्रष्ट करने का आहवान देते हैं। परम्पराओं के नाश के साथ ये कवि जीर्ण शीर्ण -रूढियों को भी तोडने के लिए क्रांति के प्रलयंकारी स्वर का आह्वान करते हैं।

किसान परम्परायुक्त विचारों और रूढियों के गुलाम होते हैं। लेकिन केदारनाथ अग्रवालजी उन्हें क्रांति की आशा देकर जागरूक रहने का आह्वान देते हैं। "ह थौडे के गीत" में वे आर्थिक स्वतंत्रता के लिए पूंजीवादी बन्धन तोडने केलिए किसान मज़दूरों का आह्वान करते हैं -

मार हथौड़ा कर कर चोट
लोहू और पसीने से ही
बन्धन की दीवारें तोड।[1]

गरीबों को याद न करनेवाले पत्थर के भगवान पर कवि क्रुद्ध होकर हथौडा चलाने को कहता है -

पत्थर के सिर पर दे मारो अपना लोहा
वह पत्थर जो राह रोककर पडा हुआ है
जो न टूटने घमंड में अड़ा हुआ है।[2]

प्रगतिवादी कविकीक्रांति चेतना में हृदयपरिवर्तन या समझौते के लिए कहीं स्थान नहीं है। वे जड से उन्मूलन का ही आह्वान देते हैं। जीर्ण पुरातन के ध्वंस का आहवान देते हुए पंतजी लिखते हैं -

नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड बन्धन।
पावक-पग, धर आवे नूतन
हो पल्लवित नवल मानवपन।

---

1. लोक और अलोक पृ.सं. 47 केदारनाथ अग्रवाल
2. वही पृ.सं. 36 वही

क्रांतिसे बनी आवेश और कोलाहल प्रगतिवादी कविता की विशेषता रही । प्रगतिवादी कवियों में शिवमंगलसिंह सुमन की क्रांतिकारी चेतना द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के बदले आध्यात्मिकता से प्रभावित है -

भस्मसात कर दूँगा क्षण में
ऊँच नीच के सब आडंबर
काँप उठेगी निर्बल जगती
सिहर उठेगा सूना अम्बर ।[1]

पूँजीवादी व्यवस्था ने तमाम अधिकारों को छीनकर अपनी चारों ओर मज़बूत घेरा बनाया है । जनक्रांति से इस व्यवस्था को भय है । मुक्तिबोध के शब्दों में -

अखबारी दुनिया का फैलाव
फंसाव, घिराव, तनाव है सब ओर
पत्ते न खड़के
सेना ने घेर ली है सड़कें ।[2]

शिल्प पक्ष

प्रगतिवाद में छायावादी कल्पना के स्थान पर भावोच्छ्वास का प्रबल आवेग है । यहाँ शृंगारिकता के स्थान पर क्रांति से उत्पन्न क्रोध और उत्साह की व्यंजना है । सामाजिक जीवन की वास्तविकता को जनता तक पहुँचाने, जन-जीवन के सम्बन्ध में कहने के लिए उन्होंने छायावादी वाग्वैभव, रेशमी सूक्ष्म भाषा के स्थान पर सुस्पष्ट, सामान्य , प्रचलित भाषा का प्रयोग किया । शब्द योजना में छायावादी मान्यता के विरुद्ध इन कवियों ने तद्भव, देशज तथा बहुप्रचलित विदेशी शब्दों को अपनाया । प्रगतिवादी कवियों की भाषा अभिधात्मक है । पर वह भावानुसारिणी है । वह सरल और सुबोध है, जीवन्त है । प्रारंभ की इन कवियों की भाषा शैली स्पष्टवादिता और अतिवादिता तक आते आते सपाट हो गयी और अभिधा की प्रधानता रह गयी उनकी शैली सांकेतिक या चित्रात्मक के बदले उपदेशात्मक बन गयी । प्रगतिवाद में सन् 1943 के बाद जिस व्यंग्यात्मक शैली का उदय हुआ वह उसके यथार्थवाद के लिए अनुकूल थी ।

---

1. हिल्लोल पृ.सं. 18 शिवमंगलसिंह सुमन
2. चांद का मुँह टेढा है । अन्धेरे में ।

प्रगतिवादी कवियों ने अपने विपरिचित जीवन से प्रतीक लिये । यद्यपि उनके प्रतीकों की संख्या बहुत ज्यादा नहीं, एकदम नवीन थे । प्रगतिशील विचारधारा के संस्कार के अनुकूल उन्होंने प्रतीकों का चयन किया । ये प्रतीक जनजीवन के परिवेश से स्वीकृत है । लाल सितारा, हथौडा, झोंपडी, मशाल जैसे प्रतीक उनके काव्य में आये हैं ।

जीवन की समस्याओं के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण रखनेवाले प्रगतिवादी कवियों ने स्थूल बिम्बों का चयन अधिक किया । प्रगतिवादी कवियों में केदारनाथ अग्रवालजी की कवितायें अधिक कलात्मक हैं । उन्होंने भाव बिम्बों का अधिक प्रयोग किया । प्रकृति के मूर्तस्यों का चित्रण उपमानों के सहारे उन्होंने किया -

धूप चमकती है चांदी की साडी पहने
मैके में आयी बेटी की तरह मगन है
फूली सरसों की छाती से लिपट गयी है ।
जैसे दो हमजोली सखियाँ गले मिली हैं ।

लेकिन प्रगतिवाद में अप्रस्तुत अमूर्त बिम्बों का अभाव रहा । मूर्तबिम्बों को भी इन कवियों ने अनलंकृत रूप में ही प्रस्तुत किया है ।

प्रगतिवादी कवियों ने छन्द के क्षेत्र में छायावादी स्वछन्दता के साथ नूतन प्रयोगों को भी अपनाया । उन्होंने छन्दों बद्ध कविताओं के साथ मुक्तछन्द को भी अपनाया । निरालाजी, त्रिलोचन, शमशेर आदि कवियों ने उर्दू छन्दों का सफल प्रयोग भी किया । अंग्रेज़ी के सानेट का भी सफल प्रयोग त्रिलोचन की कविताओं में है । मुक्तछन्द और अतुकान्त छन्द के साथ गीतों और लोकगीतों की शैली को भी उन्होंने अपनाया । लेकिन संगीत के क्षेत्र में इन्हें अपेक्षाकृत सफलता नहीं मिला ।

अलंकारों के क्षेत्र में प्रगतिवादी कवियों ने रूढ उपमानों को छोडकर नवीन रूपक उपमान एवं प्रतीक को प्रस्तुत करने का प्रयास किया ।

---

1. फूल नहीं रंग बोलते हैं पृ.सं. 63 केदारनाथ अग्रवाल

छायावादी सौन्दर्यविधान की सूक्ष्मता प्रगतिवाद में नहीं। वे 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के खिलाफ हैं। लेनिन के समान वे 'जनता कला के निकट जाये न कला जनता के पास' सिद्धान्त पर विश्वास रखते हैं। प्रगतिवादी कविता जनसाधारण की कविता है, उसमें जनभाषा एवं सरल शैली का प्रयोग हुआ है, इसलिए परम्परागत छन्द अलंकार संबन्धी रूढियों का पालन नहीं हुआ है। प्रगतिवाद में मुक्त काव्यों की प्रधानता रही। सामाजिक भावना से युक्त गीतों का प्रणयन भी इस काव्यधारा में हुआ। निराला, पंत, नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल, सुमनजी, रांगेयराघव, त्रिलोचन आदि इस धारा के प्रमुख कवि हैं।

प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख विशेषताओं के संबन्ध में संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस काव्यधारा में भावुकता की अपेक्षा बौद्धिकता की प्रधानता रही। श्रमिकवर्ग की उन्नति ही इस काव्यधारा का लक्ष्य रहा। प्रगतिवादी कवि समष्टिवादी है, यथार्थ की कठोर धरती पर विचरण करनेवाला है। वे विषयवस्तु पर अधिक बल देते हैं, शिल्प और शैली पर कम ध्यान रखते हैं। प्रारंभ में मानववाद से अनुप्राणित प्रगतिशील कविता बाद में मार्क्सवाद की क्रांति चेतना से प्रभावित प्रगतिवादी कविता में परिणत हो गयी। हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी कविता का विकास शीघ्र गति से हुआ। प्रगतिवाद के अनेक कवि बाद में वैयक्तिकता के दास बनकर प्रयोगवादी आन्दोलन में शामिल हो गये।

निराला काव्य में प्रगतिशील चेतना

डा. शंभुनाथ सिंह के अनुसार हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों के दो वर्ग हैं- पहला वर्ग स्वाभाविक रूप से विकसित होनेवाले सामाजिक यथार्थवादी काव्य के प्रणेता कवि और दूसरा वर्ग राजनीतिक प्रेरणा और साहित्यिक आन्दोलन से प्रभावित होकर समाजवादी यथार्थ के काव्य लिखनेवाले कवि[1]। हम सब जानते हैं कि निरालाजी ने कभी अपने यथार्थवादी काव्य की अभिव्यक्ति के लिए किसी से राजनीतिक प्रेरणा नहीं ग्रहण की। वे किसी राजनीतिक वाद की सीमित दायरे में अपने को बान्ध नहीं पाये। अतः उनकी गणना प्रथम वर्ग के कवियों में है।

---

1. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती पृ.सं. 129 सं. डा. नगेन्द्र

डा. गणपतिचन्द्रगुप्त ने अपने वैज्ञानिक इतिहास मे हिन्दी के प्रथम प्रगतिवादी कवि के रूप में कालक्रमानुसार रामेश्वर करुण का उल्लेख किया है जिनकी "करुण सतसई" सन् 1934 में प्रकाशित हुई थी जबकि "प्रगतिशील लेखक संघ" का प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में हुआ। हिन्दी के अधिकांश आलोचक छायावादी बृहत्रयी के पंतजी को ही इस काव्यधारा के प्रवर्तक का श्रेय दिया है। डा. शिवकुमार मिश्र के शब्दों में-" युग के नए यथार्थ के सन्दर्भ में प्राचीन संस्कारों के मोहपाश को झटकते हुए नई काव्य चेतना का आगे बढकर स्वागत करनेवालों में छायावाद की बृहत्रयी के पंत प्रथम थे।[1] सन् 1936 से 1940 तक प्रकाशित "युगान्त", "युगवाणी" और "ग्राम्या" प्रगतिवादी चेतना के परिचायक हैं। डा. शिवकुमार मिश्र ने लिखा है -" स्वप्न एवं सत्य और कल्पना तथा यथार्थ का जो द्वन्द्व उनके। पंतजी के। मानस मे "परिवर्तन" काल से चल रहा था और "गुंजन" तथा "युगान्त" की कुछ रचनाओं में जिसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई थी, उस द्वन्द्व की बहुत कुछ परिसमाप्ति उनके "युगवाणी" तथा "ग्राम्या" संग्रहों की कुछ रचनाओं में दिखाई दी।[2]" अत: उनके "परिवर्तन" कविता तथा "गुंजन" और "युगान्त" आदि संकलनो में प्रगतिवादी स्वर इस काव्यधारा के आविर्भाव के पूर्व ही सुनायी दिये। ग्राम्य जीवन का यथार्थ और मार्मिक चित्रण ग्राम्या की कुछ कविताओं में अवश्य है। " ग्राम देवता" शीर्षक कविता में उनकी व्यंग्य प्रतिभा प्रखर है। पर "ग्राम्या" के बाद सामाजिक सन्दर्भों से उनका लगाव बना नहीं रहा। सन् 1940 के बाद पंतजी का प्रगतिवादी स्वर क्षीण होकर आध्यात्मवाद की ओर मुडते दिखाई दिये।

जिन दिनों हिन्दी कविता में प्रगति और यथार्थ की चर्चा तक नहीं हुई थी, उन्हीं दिनों में निरालाजी ने "परिमल" में प्रगतिशील चेतना से युक्त रचनायें प्रस्तुत की थीं, यद्यपि उनकी भाषिक संरचना छायावादी ढंग की है। पर उनकी कविता "भिक्षुक" जो छायावादी काल की है, भाव संवेदना और भाषिक संरचना बिलकुल छायावादी नहीं -

---

1. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका पृ.सं. 145
2. वही वही

वह आता
दो टूक कलेजे का
करता पछताता पथ पर आता
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक

पंतजी के "परिवर्तन" युगान्त" के समान ही निरालाजी के 'बादल राग' 'विधवा', 'भिक्षुक', 'तोडती पत्थर' आदि रचनायें नव युगारंभ के पूर्व की कवितायें हैं। यहाँ "बादल राग" क्रांति का प्रतीक है, सन् 34 - 38 के बीच की रचनाओं में 'वह तोडती पत्थर" प्रगतिवाद का पोषक है। अत: प्रगतिवादी आन्दोलन के पूर्व ही निरालाजी प्रगतिशील रहे। सन् 1940 के बाद प्रकाशित निरालाजी के काव्य संग्रह 'कुकुरमुत्ता' 'अणिमा' 'बेला' और 'नये पत्ते' की कविताओं में उनकी प्रगतिशील चेतना अधिकाधिक प्रखर होती दिखाई देती है। डा. शिवकुमार मिश्र के शब्दों में -" प्रारंभ में प्रकृति और जनजीवन के कुछ अत्यन्त सरल तथा सादे चित्र और कुछ काल के उपरान्त हास्य और व्यंग्य के मिले जुले सन्दर्भों के साथ सामने आनेवाली "कुकुरमुत्ता" तथा 'खजोहरा' जैसी रचनाएँ बहुतों ने समझा कि निराला की प्रगतिशील चेतना का रूप यही है - जो कि द्वितीय महायुद्ध के आसपास फैली व्यापक मूल्यहीनता ने ही निराला को ऐसी रचनाओं के लिए विवश किया था। किन्तु कुछ और आगे चलकर जब 'बेला' और "नये पत्ते" के रूप में सामाजिक यथार्थ के कुछ अत्यन्त तीखे और मर्मस्पर्शी चित्र निराला की लेखनी से प्रस्तुत हुए तब स्पष्ट हुआ कि निराला के प्रगतिशील स्वर आकस्मिक नहीं है, वे उस गहरी साधना के उपज हैं जो रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त नव्य वेदान्त का जीवित सन्दर्भ लिए युग के ज्वलंत यथार्थ में तपकर निकली और फलीभूत हुई है।"[1] अत: यह ध्यान देने योग्य है कि निरालाजी का प्रगतिवादी स्वर सन् 1940 के पश्चात प्रखर, तीक्ष्ण और स्पष्ट बन जाता है जबकि पंतजी का स्वर क्षीण होते परिसमाप्ति तक पहुँच जाता है।

"कुकुरमुत्ता" में 'काव्य आभिजात्य से मुक्ति' शीर्षक में डा. दूध नाथ सिंह ने लिखा है -" जिसे प्रगतिशील काव्यान्दोलन की पारिभाषिक शब्दावली में प्रगतिशील कहा जाता है, उसे निराला के सन्दर्भ में सामान्य की प्रतिष्ठा अथवा उपेक्षित का उन्नयन कहना मैं ने ज्यादा उपयुक्त समझा है। सामान्य की प्रतिष्ठा की उत्कट

---

1. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका - पृ.सं. 146

लालसा निराला के सम्पूर्ण काव्य और चरित्र में विद्यमान है। इस चिर निष्ठता का आधार एक ओर तो "सत्य है - यथार्थ - सामान्य का कोई भावुक सौन्दर्य नहीं जिसकी चर्चा काव्य और काव्यालोचना में प्रगतिशील आन्दोलन के दौरान बहुत अधिक मिलती है। दूसरी ओर यथार्थ की काव्यात्मक परिणिति है, निश्चय ही काव्यात्मक परिणिति की यह शर्त छायावादी काव्य के अभिजात संस्कारों से भिन्न और सर्वथा नयी है। इस तरह सामान्य की प्रतिष्ठा की उत्कट लालसा और प्रतिज्ञा बद्धता से निराला एक सर्वथा नयी काव्यशैली, नये काव्य मान और एक अभूतपूर्व कविता का उद्घाटन हिन्दी में करते हुए दिखाई देते हैं। सतही और पक्षधर वादविवादों में निराला के इस " युग पुरुष " रूप के इतिहास को जिस तरह लगातार दबाया गया और गलत व्याख्याओं और निर्णयों के आधार पर जिस तरह इसका श्रेय दूसरे प्रचारवादी और गौण कवियों को दिया गया, वह दुखद है।"[1]

यहाँ दूधनाथसिंह "उपेक्षित का उन्नयन" और "सामान्य की प्रतिष्ठा" को प्रगतिशील मानते हैं और यथार्थ को इसका आधार। इस दृष्टि से वे युगपुरुष का श्रेय निरालाजी को देने के पक्ष में हैं।

सन् 1923 में "बादल राग" लिखकर अपनी क्रांतिकारी चेतना का परिचय देनेवाले कवि निरालाजी की "कुकुरमुत्ता" "खजोहरा" "रानी और कानी" "झींगुर डटकर बोला," "छलांग मारता चला गया" जैसी कवितायें उनकी प्रगतिशील चेतना के कुछ उदाहरण मात्र हैं। इनमें यथार्थ सामाजिक सन्दर्भ के साथ व्यंग्य की जो प्रखरता है वह अन्य प्रगतिवादी कवियों को भी उस ओर प्रेरणा दी। "नये पत्ते" संकलन की कविता "देवी सरस्वती" निरालाजी की प्रगतिशील रचनाधर्मिता की महान उपलब्धि है। यथार्थ और संस्कृति का सुन्दर चित्रण इस कविता में है। प्रो. शिवकुमार मिश्र के शब्दों में " लोकजीवन का ऐसा मर्मस्पर्शी चित्रण, साधारण जन के प्रति आत्मीयता तथा संवेदना का ऐसा विशद आख्यान, जनता की अपनी सरस्वती की ऐसी साफ सुथरी जीवन्त तथा उदात्त प्रतिमा तथा जन संस्कृति के विकास की ऐसी प्रगल्भ झाँकी की जो इस कविता में हमें उपलब्ध होती है, केवल निराला की लेखनी में ही ढल सकती थी।"[2] पंतजी की प्रगतिवादी कालीन प्रतिनिधि संकलन "ग्राम्या" की

---

1. कुकुरमुत्ता-काव्य आभिजात्य से मुक्ति - पृ.सं. 22-23- डा. दूधनाथसिंह
2. हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका पृ.सं. 146

ललकारने लायक क्षमता निरालाजी के विराट कवि व्यक्तित्व में जन्मी इस कविता को है । डा. नामवरसिंह का कथन अक्षरशः सत्य है -" जिस तरह छायावादी युग में पंतजी के उच्छ्वास, आँसू वगैरह की सी विशेषताओं को समेटते हुए उसी शैली में 'यमुना के प्रति' शीर्षक लंबी कविता लिखकर निराला ने चुनौती दी, उसी तरह प्रगतिशील युग में उनकी "देवी सरस्वती" ने पंतजी की "ग्राम्या" के बिखरे प्रयत्नों को एक ही बृहत् प्रयत्न से ललकार किया । "

सन् 1950 के पश्चात प्रकाशित निरालाजी के काव्य संकलन- "अर्चना", आराधना" और मृत्यु के बाद प्रकाशित " सांध्य- काकली" में भी उनका प्रगतिवादी स्वर यत्र तत्र सुनाई दे रहा है । उन्होंने प्रचारवादी साहित्य से अलग रहकर प्रगतिवादी काव्य की संपूर्ण विशेषताओं को अपने काव्य में समेटने का स्तुत्य प्रयास किया है । भावुकता प्रधान हिन्दी कविता में बुद्धितत्व की आवश्यकता महसूस करनेवाले महाकवि निरालाजी ने लिखा-"हृदय का तत्व लेकर निकलनेवाली कविता भी यदि विचार और शृंखला से सम्बद्ध नहीं, तो शैशव संलाप की तरह भावोच्छ्वास मात्र है, उससे साहित्य को कोई भी पुष्टि नहीं हो सकती ।"[2] समाज, राजनीति और धर्म के क्षेत्र की कुरीतियों अनाचारों के विरूद्ध उन्होंने क्रांति का आह्वान दिया । सामान्य जनता के दुख दर्द को निराला ने जितना पहचाना उतना इस युग के किसी अन्य कवि ने नहीं । क्योंकि निरालाजी का जीवन मज़दूरों का सा जीवन था । श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में -"निरालाजी का जीवन निम्नतम स्तर के भारतीय का जीवन है और ऐसा जीवन बिताकर इतनी ऊँची साहित्य साधना निरालाजी ही कर सकते है" [3] विषय वैविध्यभावसंवेदना का विस्तार व्यंग्य की क्षमता, काव्य की सरसता और उदात्त दृष्टिकोण में प्रगतिवादी कवियों में वे उच्चस्थानीय है ।

निरालाजी ने स्वयं पद्मसिंह कमलेश से कहा था -"प्रगतिवाद पर सबसे पहले मैं ने लिखा है, उसे कोई नहीं जानता, किया क्या जाय दुनिया ऐसी है जो बिना रिवोल्यूशन (revelation) के नहीं मानती"[4] आधुनिक हिन्दी कविता को बदलती हुई दिशा को दस या उससे अधिक वर्ष पहले पहचानकर उसी दिशा में आगे बढनेवाले कवि थे निरालाजी । हिन्दी काव्य में सौन्दर्य सम्बन्धी मानदण्ड को तोडकर उन्होंने कुरूप और अनघड सामान्य को काव्य का विषय बनाया ।

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ.सं.94 डा. नामवरसिंह
2. निराला की साहित्य साधना पृ.सं. 46
3. निराला साहित्य सन्दर्भ पृ.सं. 5 महादेवीवर्मा
4. निराला साहित्य सन्दर्भ - पृ.सं. 4 पद्मसिंहशर्मा कमलेश

नन्ददुलारे वाजपेयीजी के शब्दों में - " निराला जैसे अनेक क्षितिजों और दिगन्त भूमिकाओं के कवि को वाद की सीमा में बाँधना और भी कठिन है यद्यपि निराला छायावाद के प्रवर्तकों में परिगणित होते हैं।"[1] यद्यपि किसी वाद के दायरे में उन्होंने स्वयं बाँधना नहीं चाहा, आधुनिक युग की सभी काव्य प्रवृत्तियों की मुख्यधारा में वे उसी धारा के प्रतिनिधि कवि के रूप में अनजाने ही अवतरित हुए। डा. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का कथन सत्य है कि -" इसमें कोई सन्देह नहीं कि निराला प्रगतिवाद के जनक थे, किन्तु वे किसी खास राजनीतिक विचारधारा से बंधे नहीं थे।"[2]

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रगतिवादी काव्यधारा की वामपंथी विचारधारा को छोड़कर अधिकांश विशेषतायें निरालाजी की कविताओं में वर्तमान है। इस काव्य-धारा में दीर्घकालीनता एवं प्रवृत्तियों की प्रखरता के कारण निरालाजी हमेशा पंतजी से ऊँचे स्थान के अधिकारी हैं। इसलिए प्रगतिवादी काव्यधारा के प्रवर्तक का श्रेय उस काव्यधारा के उदय के दस बीस वर्ष पहले पहचानकर सामाजिक सन्दर्भ से युक्त काव्य रचना करने वाले, प्रगतिवादी काव्यधारा के उत्कर्षकाल में भी उसी तरह की रचना में रत निरालाजी को देने में कोई आपत्ति नहीं।

निरालाजी की कविता में प्रगतिवादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह, नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण, लोकजीवन से निकटता शोषितों के प्रति सहानुभूति, शोषकों के प्रति आक्रोश, क्रांति की भावना, लोक सुलभ भाषा शैली आदि प्रगतिवादी काव्यधारा की प्रमुख विशेषतायें निरालाजी के काव्य में अपनी संपूर्णता के साथ विद्यमान है।

सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह :

प्रगतिवादी कवि हमेशा यथार्थ के साथ निकट सबन्ध रखते हैं। डा. नामवर सिंह के शब्दों में -" प्रगतिवाद राजनीतिक जागरण से आरंभ होकर क्रमशः जीवन

---

1. कवि निराला पृ.सं. 5। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
2. आधुनिक हिन्दी कविता प्रसाद से अज्ञेय तक पृ.सं. 5।

को व्यापक समस्याओं की ओर, और यथार्थवाद अथवा नग्न यथार्थ से आरंभ होकर क्रमशः स्वस्थ सामाजिक यथार्थवाद की ओर अग्रसर होता जा रहा है "[1]। इस सामाजिक यथार्थवादी परिवर्तन का संकेत पहली बार निरालाजी की कविता में दिखाई पड़ा।

सामाजिक असंगति के प्रति व्यंग्य एवं आक्रोश का भाव निरालाजी के "आनामिका" में संकलित "दान" शीर्षक कविता में देखिए -

फिर देखा - उस पुल के ऊपर
बहु संख्यक बैठे हैं वानर।
एक ओर पथ के, कृष्णकाय
कंकाल शेष नर मृत्यु - प्राय
बैठा सशरीर दैन्य दुर्बल
भिक्षा को उठी दृष्टि निश्चल
विप्रवर स्नान कर बढ़ा सलिल
झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिये।
देखा भी नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर।
चिल्लाया दिया दूर दानव,
बोला मैं - " धन्य श्रेष्ठ मानव "।

यहाँ कंकाल शेष भिक्षुकों की ओर ध्यान न देकर धर्म के नाम पर झोली से पुए निकालकर बन्दरों को खिलानेवाले विप्रवर के चित्रण में व्यंग्य एवं आक्रोश है। उपेक्षित का उन्नयन, उसके प्रति करुणा और सामान्य की प्रतिष्ठा का ध्यान निरालाजी हमेशा रखते थे। पर कालक्रमानुसार उनके दृष्टिकोण और अभिव्यक्ति में बदलाव आया है।

---

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ पृ. सं. 86-87 डा. नामवरसिंह

निरालाजी की 'विधवा' 'तोडती पत्थर', 'भिक्षुक' जैसी कवितायें जिनमें उनकी प्रगतिशील चेतना पहले प्रस्फुटित हुई थी, डा. दूधनाथ सिंह के शब्दों में -" कविताओं को जैसे निराला अपनी छाती से चिपकाए हुए हैं। अपनी करुणा से सतत रूप से आर्द्र, अभिभूत और आप्लावित हुए हैं। एक विराट अश्वत्थ की तरह निराला का संपूर्ण व्यक्तित्व इनपर छाया हुआ है। साथ ही विषयवस्तु के रूप में "उपेक्षित" होते हुए भी "विधवा," 'तोडती पत्थर,' 'दीन' या 'भिक्षुक' के पात्रों के सहने में एक विचित्र प्रकार की उच्चाशयता के दर्शन होते हैं"[1]।

'विधवा,' 'तोडती पत्थर' वाली परम्परा का विकास कुकुरमुत्ता में दिखाई देता है। विषयवस्तु तो एक है पर भाषिक संरचना और अभिव्यक्ति में पूर्ववर्ती रचनायें छायावादी हैं। "कुकुरमुत्ता" और बाद की रचनाओं में नग्न यथार्थ की ठोस और व्यंग्यपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। स्वतंत्र व्यक्तित्व लेकर सामान्य की प्रतिष्ठा की इस चेष्टा में ठंडा और काटता हुआ व्यंग्य है। 'कुकुरमुत्ता' में निरालाजी ने लिखा है - "इस में वही शरीक होंगे, जिन्हें न्योता नहीं भेजा गया।"[2] कुकुरमुत्ता जीवन की कठोरताओं का सामना करता हुआ स्वयं उगता है और अपने व्यक्तित्व को बनाये रखने का परिश्रम करता है, वह, "उगाया नहीं उगता"। "गरम पकौडी" पर ब्राह्मण की पकायी कवौडी पर, 'राजे ने रखवाली की' में अपनी स्वार्थता के लिए निम्नवर्ग को माध्यम बनानेवाले राजा पुरोहित वर्ग पर उनका व्यंग्य बाण चुभ जाता है। "डिप्टी साहब आये" शीर्षक कविता में जमीनदार के शोषण से युक्त गांव का यथार्थ चित्रण है। उस गांव में डिप्टी साहब, दोरोगाजी और कई अफसर पधारते हैं। जमीनदार के गोडइत का दूध के लिए भागना, बदलू और अहीर के बीच झगडा, गोडइत का नाक पर घूंसा खाकर गिर पडना, बदलू का अहीर की तरफ इकट्ठा हो जाना, यह सब निम्न किसान मज़दूर वर्ग के जीवन में हमेशा घटित होता है।

यथार्थ जीवन के प्रति गहरी आस्था कवि में है, चाहे वह जीवन का किसी भी पक्ष हो। यथार्थ जीवन के चिरपरिचित दृश्यों के बीच से गुजरती है उनकी कविता। 'नये पत्ते की वर्षा' शीर्षक कविता में प्रकृति के प्रकृत रूप के साथ गांव का चित्रण अंकित हुआ है -

---

1. कुकुरमुत्ता की भूमिका - पृ.सं. 13 डा. दूधनाथसिंह
2. कुकुरमुत्ता - निराला

घने घने बादल हैं
एक ओर गडगडाते,
पुरवाई चलती है,
जुही फूलों से भरी
बागों में लगी भीड
मर्दों की औरतों की
बच्चे की बूढों की

आम बीन बीनकर
पंजों बांटते हुए
आमों के हिस्सेदार
गांव गांव के किसान
खाने को एक एक हिस्सा
लिए हुए, जमीन्दार लोगों से
नाल बहते हुए
नदियाँ तराई लिए
घने घास उगे हुए
युवक अखाडों में और जोर करते हुए
देश के प्रतीक सभी
देश की भलाई की बातें सोचकर करते ।

यहाँ आभिजात्य के राजमार्ग से कदम बढनेवाली हिन्दी कविता को कवि बागों में ज़मीन्दार लोगों से खाने के लिए आम का हिस्सा लेने वाले साधारण लोगों के बीच लाया है । यहाँ एक स्वभाविक ग्रामीण जीवन्त वातावरण है । यहाँ के मर्द औरत मेहनतकश जनता का प्रतिनिधि है, साथ ही यहाँ जमीन्दारों का भी उल्लेख है । घने बादल, पुरवाई, जुही के फूल, बागों के भीड, बहते नाले, नदियों की तराई, शोर करने वाले युवक सब यथार्थ ग्रामीण वातावरण के द्योतक हैं । डा. दूधनाथ सिंह का कथन सत्य है कि -" निरालाजी की कविता यथार्थ की काव्यात्मक परिणिति है । "[1]

---

1. कुकुरमुत्ता - पृ.सं. 23 - डा. दूधनाथसिंह

निरालाजी की प्रगतिशील रचनाओं में नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण है। यहाँ वह आदर्श के रंग से मुक्त है, अपनी प्रकृत रूप में चित्रित है। विधवा में उन्होंने भारतीय विधवा पर होनेवाली सामाजिक अनीतियों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है, साथ ही साथ भारतीय जन समाज को विधवा की समस्याओं की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया है -

कौन उसको धीरज दे सके?
दुःख का भार कौन ले सके?
यह दुख वह जिसका नहीं कुछ छोर है।
दैव अत्याचार कैसा घोर और कठोर है,
क्या कभी पोंछे किसी ने अश्रुजल?
या किया करते रहे सब का विकल

अपनी "वह तोडती पत्थर" में निरालाजी ने भारतीय नारी के प्रति अपने मानवीय दृष्टिकोण का चित्रण किया है। यहाँ की सांवली मजदूर युवती साहसी है, मेहनती है। पूंजीवादी शहर परिवेश में वह पत्थर तोड रही है -

देख मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा छिन्नतार,
देखकर कोई नहीं।
देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खायी रोई नहीं,
सजा सहज सितार,
सुनी मैं ने वह नहीं जो थी सुनी झंकार
एक क्षण के बाद वह कांपी सुधर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा
मैं तोडती पत्थर। 2

---

1. परिमल - निराला 2. अनामिका - निराला

यहाँ "गुरु हथौड़ा" हाथ में लेकर प्रहार करनेवाली मज़दूरानी में स्वप्न नहीं, मोह नहीं, विरह के आँसू भी नहीं । वह अपने कर्म में तन मन से लीन है । उसके सामने छायादार पेड़ के बदले तरुमालिका अट्टालिका है । यहाँ उसकी भावनायें स्वाभाविक हैं । उसकी आँखों से आँसू नहीं, माथे से आँसू गिर रहे हैं । डा. रमेशकुन्तल मेघ के शब्दों में -" उत्तरप्रदेशी मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के स्वर्ग इलहाबाद में शायद निराला ने ही सबसे पहले इस छोटी सी दिखनेवाली समकालीन कविता के द्वारा इतिहास का शाश्वत गहरा घाव खोदा है और उसका निदान भी समझा है ।"[1]

"रानी और कानी" में माँ द्वारा रानी पुकारने वाली कानी लड़की का चित्रण है जो तीखे व्यंग्य और करुणा का द्योतक है -

रानी हो गयी सयानी
बीनती है, काँड़ती है, कूटती है, पीसती है " ।
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है,
घर बुहारती है, करकट फेंकती है
और घड़ों में भरती पानी
फिर भी माँ का दिल बैठा रहा
औरत की जात रानी
ब्याह भला कैसे हो
        कानी जो है वह ।

भारतीय समाज में सौन्दर्य शादी का एक अभिन्न अंग माना जाता है, जिसके कारण स्त्री अपमानित हो जाती है, इस समस्या का यथार्थ चित्रण "रानी और कानी" में है । "प्रेम संगीत" शीर्षक कविता में लड़की जो जाति के कहारिन है, उसके साथ ब्राह्मण के लड़के को प्रेम संकल्पना करके स्त्री के प्रति अपने दृष्टिकोण का परिचय दिया है -

---

1. क्योंकि समय ऐक शब्द है - पृ.सं. 422 - डा. रमेश कुन्तल मेघ

कोयल सी काली अरे
वात नहीं उसकी मतवाला
ब्याह नहीं हुआ, तभी भड़का
दिल मेरा, मैं आहें भरता हूँ ।
रोज आकर जगाती है सबको
मैं ही समझता हूँ इस ढब को
ले जाती है मटका बड़का
मैं देख- देखकर धीरज धरता हूँ ।[1]

निरालाजी अपनी प्रगतिशील कविताओं में जातिगत रूढ़ियों के परे स्त्री के प्रति अपने प्रकृत स्वस्थ दृष्टिकोण का परिचय देते नज़र आते हैं ।

लोकजीवन को यथार्थ रूप में चित्रित करने में निरालाजी सफल हैं । 'अणिमा' में संकलित कविता "सड़क के किनारे दूकान है" - देखिए -

सड़क के किनारे दूकान है
पान की दूर एक्कावान है
घोड़े को पीठ ठोंकता हुआ,
पीरबख्श एक बच्चे को दुआ
दे रहा है ।
पीपल की डाल पर
कूक रही है कोयल
माल पर
बैलगाड़ी चली जा रही है ।

संक्षेप में निम्नवर्ग के यथार्थ जीवन को निरालाजी ने निकट से देखा है । उसकी अभिव्यक्ति है उनकी प्रगतिशील कविता । डा. भगीरथ मिश्र के शब्दों में- "निरालाजी की उनके 'निम्नवर्ग' के प्रति सहानुभूति केवल बौद्धिक या साहित्यिक नहीं थी, वह यथार्थ और सक्रिय थी ।"[2]

---

1. नये पत्ते - निराला
2. निराला काव्य का अध्ययन - पृ.सं. 75- डा. भगीरथ मिश्र

शोषितों के प्रति सहानुभूति और शोषकों के प्रति आक्रोश एवं क्रांति की भावना

हिन्दी कवियों में निरालाजी ने सबसे पहले किसान मज़दूर वर्ग की समस्याओं को वाणी देने का प्रयास किया । उस समय भारतीय साम्यवाद मज़दूरवर्ग तक सीमित था । लखनाऊ और महिषादल के गांवों में किसान मज़दूरों के संगठन में लगे निरालाजी साहित्य में भी उनके वक्तारहे । मज़दूर संगठन को लक्ष्य करके उन्होंने " जागो फिर एक बार" शोषक कविता लिखी -

योग्य जन जीता है
पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है गीता है -
पशु नहीं, वीर तुम
समर शूर क्रूर नहीं
काल वक्र में हो दबे
आज तुम राज कुंवर- समर सरताज ।

उन्होंने साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान देते हुए "छत्रपति शिवजी का पत्र" लिखा । पूंजीपतियों द्वारा पीडित सर्वहारा वर्ग की वेदना को उन्होंने आँख खोलकर देखाऔर स्वयं अनुभव किया । इसलिए निरालाजी ने कहा -

इतना यह अत्याचार,
करो कुछ विचार,
तुम देखो वस्त्रों को और
शराबोर किसके खून से ये हुए
लालिमा क्या है कहीं कुछ ?
भ्रम है वह,
सत्य कालिमा ही है ।

निरालाजी की संकल्पना का भारतीय समाज उन्हीं के शब्दों में-" समाज का सर्वोत्तम बाह्य निकर्ष इस समय राजनीतिक संगठन है, जहाँ मनुष्यत्व के ही देश में उतरता समय और मनुष्यता के साथ पूर्णस्पेण मिल जाता है । इस प्रकार के देश व्यापी,

बल्कि विशद भावना द्वारा विश्वव्यापी मनुष्य आगे चलकर आप ही अपनी जाति का सृजन करेंगे, जहाँ ब्राह्मण सज्जन और वैश्य सज्जन की एकता में फर्क न होगा, ब्राह्मण और वैश्य केवल कर्म के ही निर्णायक होंगे, पद उच्चता के नहीं, उस स्वतंत्रत भारत में वर्णव्यवस्था से केवल परिचय प्राप्त होगा, उच्च नीच का निर्णय नहीं।"[1]

इस प्रकार वर्ग रहित, जाति रहित समाज के निर्माण के लिए प्रगतिवाद के आगमन के पहले ही "बादल राग" और 'वनबेला' में उन्होंने विप्लव का आह्वान किया। क्रांति एवं विद्रोह की चरम बिन्दु पर है उनकी कविता "बादल राग" -

अरे वर्ष के हर्ष
बरस तू बरस - बरस रस धार
पार ले चल तू मुझ को
बहा, दिखा मुझको निज
गर्जन गौरव संसार।

कुलमिलाकर "बादल राग" का राग क्रांतिराग है। यहाँ बादल का संबन्ध वर्षा से है - अतः वह सृष्टि का प्रतीक है साथ ही ध्वंस का भी। 'वन बेला' में पूंजीवादी मनोवृत्ति के प्रति निरालाजी का विरोध प्रकट है। यहाँ सुन्दर वस्तुओं को नारी हो या फूल हो अपने स्वार्थ के लिए बेचने या खरीदने वाली सामन्ती मनोवृत्ति पर कवि अपना व्यंग्य बाण छोडता है -

केवल आपा खोया खेला,
इस जीवन में
यह जीवन का मेला।
चमकता सुथर बाहरी वस्तुओं के लेकर
त्यों त्यों आत्मा को निधि पावन बनती पत्थर
बिकती जो कौडी मोल।

---

1. प्रबन्ध प्रतिमा पृ.स. 344 - 45 निराला

निरालाजी की व्यंग्य से भरी क्रांतिचेतना 'कुकुरमुत्ता' पर अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है । यहाँ कुकुरमुत्ता गुलाब से कहती है -

देख मुझको, मैं बढा
डेढ बलिश्त और ऊँचे पर चढा
और अपने से उगा मैं
बिना दाने के चुगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता
तू है नकली मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा. मैं हूँ कौलिक ।

इसमें कवि ने निम्न वर्ग के जीवन को कुकुरमुत्ते के समान चित्रित किया है । साथ ही मालिन की लडकी गोली और नवाबजादी बहार के बीच में मैत्री संबन्ध स्थापित करके उच्च- निम्न वर्ग की खाई को कम करने का प्रयास किया है ।

दीन दुखियों की वेदना को दूर करने के लिए निरालाजी "बेला" में दलित समाज को आह्वान देते हैं -

जलद जलद पैर बढाओ आओ आओ
आज अमीरों की हवेली
किसानों की होगी पाठशाला,
धोबि, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अन्धेरे का ताला
एक पाठ पढेंगे टाट बिछाओ
जहाँ जहाँ सेठजी बैठे थे,
बनिए की आँखें दिखाते हुए,
उनके ऐंठाये ऐंठे थे ,
धोखे पर धोखा खाते हुए
बैंक किसानों का खुलाओ ।

यहाँ कवि निम्न वर्ग के उज्वल भविष्य की शुभाकांक्षा प्रकट करते हैं। इस कविता के अंत में वे बताते हैं कि एक वर्गहीन, आर्थिक समानता से युक्त जाति संप्रदाय रहित समाज की सृष्टि तभी संभव होगी जब -

सारी संपत्ति देश की हो
सारी विपत्ति की बने
जनता जातीय वेश की हो
वाद से विवाद यह ठने
कांटा काटे से हटाओ।

यद्यपि निरालाजी प्रचारवादी साहित्य से अलग रहे, मार्क्स के सिद्धान्त से प्रभावित रहे।

दलित शोषित वर्ग के प्रति निरालाजी की सहानुभूति पहले क्रांति में फिर तीखे व्यंग्य में परिवर्तित हो जाती है, क्रांति और व्यंग्य का यह स्वर "परिमल" से "नये पत्ते" तक लगातार सुनाई देता है। डा. धनंजय वर्मा के शब्दों में - उनकी करुणा जो दलितों को मनुष्यता के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करती है, उनका आलोचनात्मक यथार्थवाद जो समाज के निहित स्वार्थों को असलियत पहचानता है, उनकी संघर्ष का सामना करने की प्रवृत्ति और जीवन में आस्था, उन्हें आधुनिक निराशावाद से भिन्न प्रगतिशील मानवता का कवि सिद्ध करती है।"[1]

निरालाजी के क्रांति भरे व्यंग्य ने समाज के सभी शोषक वर्गों पर प्रहार किया है उनमें समाजवादी नेता हैं, जमीन्दार हैं, पूंजीपति हैं। "नये पत्ते" के "महंगू महंगा रहा", "डिप्टीसाहब आये", "झींगुर डटकर बोला" जैसी कवितायें इसके उत्तम उदाहरण हैं। "डिप्टी साहब आये" में कवि का संकेत है कि किसानों की चेतना में परिवर्तन आ गया है, उनका संगठन करे तो संघर्षों का मंजिल पार करके वे अपने लक्ष्य पर पहुँच जायेंगे। 'महंगू महंगा रहा' में कवि का व्यंग्य समाज के शोषण करनेवाले समाजवादी नेताओं पर है -

---

1. निराला व्यक्तित्व कृतित्व पृ.सं. 239 डा. धनंजयवर्मा

आजकल पंडितजी देश में विराजते हैं
माताजी को स्वीज़रलैण्ड के अस्पताल
तपेदिक के इलाज के लिए छोड़ा है
बड़े भारी नेता हैं।
कुइरीपुर गांव में भाषण देने को आए हैं।
लण्डन के ग्राजुएट
एम. ए. और बारिस्टर
बड़े बाप के बेटे

नेता के चित्रण के साथ कवि कुईरीपुर गांव के साधारण जन जीवन का चित्रण करता है जहाँ विविध जाति, धर्म, संप्रदाय के लोग मिलकर रहते हैं

गांव के अधिकांश जन कुली या किसान हैं,
कुछ पुराने परजे जैसे धोबि तेली बढ़ई,
नाई, लोहार, बारी, तर कोहार, चुड़िहार
बाकि परदेश में कौड़ियों के नौकर हैं।

नेता का भाषण सुनने के बाद महगू लकुआ से अपनी राय प्रकट करता है -

जैसे तू लकुआ है, वैसा ही होना है
बड़े बड़े आदमी धन मान छोड़ेंगे
तभी देश मुक्त है
मै कभी न बदलूंगा, इतना महंगा हूंगा।

कवि का विश्वास है कि नेता और अमीर धन मान छोड़ेंगे तो आमजनता की खुशहाली होगी। "नये पत्ते" की कविताओं का गांव जहाँ शोषित-शोषक वर्ग का संघर्ष होता है, वह निरालाजी का अपना गांव, अवध प्रदेश का पिछड़ा गांव - गढ़ाकोला ही है।

डा. विजयेन्द्रस्नातक का कथन ठीक है-" व्यंग्य, विप्लव, विद्रोह और संघर्ष को व्यक्त करने के लिए निराला ने जो कवितायें लिखीं उनमें केवल पैना ढंग ही नहीं वरन् निर्माण का स्वर गूंजता है"[1]।

शिल्प पक्ष-

प्रगतिवादी कविता का शिल्प पक्ष एकदम शिथिल है। डा. नन्ददुलारे वाजपेयी ने निरालाजी की भाषा के सम्बन्ध में कहा है -" भाषा के क्षेत्र में निराला एकदम निराला है। उनकी सी भाषा प्रयोग की अबाध गति अन्यत्र दिखाई नहीं देती। विभिन्न भाषा प्रयोगों में निरालाजी का इतना अधिकार रहा है कि उनकी कृतियों में कहीं भी अशक्तता दृष्टिगत नहीं होती, बल्कि कहा जा सकता है कि उन्होंने शब्द चयन और वाक्य योजनाओं में क्रमगत भूमिकाओं को नया विस्तार दिया है।"[2] उनकी प्रगतिशील कविताओं की भाषा के संबन्ध में कहें तो "परिमल" "अनामिका" की प्रगतिशील चेतना संपन्न कविताओं की भाषा छायावादी है। "कुकुरमुत्ता", "बेला" और "नये पत्ते" में उन्होंने बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है। इस भाषा में उन्होंने अरबी फारसी शब्दों का खुलकर प्रयोग किया। इस भाषा का पूर्ण रूप हम "कुकुरमुत्ता" में देख सकते हैं। प्रगतिशील चेतना के वहन में यह भाषा सक्षम भी है। "बेला" में उन्होंने उर्दू गजलों को हिन्दी के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया। "रानी और कानी" "खजोहरा" "गर्म पकौड़ी" जैसी कविताओं में लोकगीतों के रंग और लोकजीवन की शब्दावली से संपन्न भाषा को उन्होंने अपनाया। यहाँ ध्वन्यात्मक शब्दों की कमी नहीं। उनकी भाषा की एक अन्यतम विशेषता है कि वह काव्यरूपों के अनुसार बदलती दिखाई देती है। डा. पद्मसिंह शर्मा कमलेश के शब्दों में -" कुकुरमुत्ता" और "नये पत्ते" की प्रगतिवादी रचनाओं की भाषा बेजोड़ है"[3]। अपनी प्रगतिशील रचनाओं में उन्होंने व्यंग्य विनोद की शैली अपनायी है। निरालाजी की प्रगतिशील कविताओं की विशेषता यह भी रही कि उनमें भावपक्ष प्रगतिशील है तो शिल्प पक्ष की दृष्टि से पूर्ववर्ती रचनायें छायावादी ढंग की हैं तो परवर्ती कवितायें प्रयोगशील हैं।

---

1. निराला साहित्य सन्दर्भ पृ.सं. 86
2. कवि निराला पृ.सं. 181 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
3. निराला पृ.सं. 161 पद्मसिंह शर्मा कमलेश

निरालाजी ने प्रगतिवादी युग में छन्दोबद्ध कविता से लेकर मुक्तछन्द के वार्णिक मात्रिक रूपों में भी कविता लिखी । "भिक्षुक, "विधवा" जैसा कवितायें विषम मात्रिक सान्त्यानुप्रास में लिखी है । "बादल राग" में अन्त्यानुप्रास द्वारा गीत का प्रभाव उत्पन्न किया है । निरालाजी ने मुक्तछन्द के लिए जातीय छन्द कवित्त को आधार बनाया है । "कुकुरमुत्ता" में इसी छन्द का सफल प्रयोग है । लोकजीवन से निकट रहने के कारण उन्होंने अनेक छन्दों को लोक- काव्य से अपनाया । उदा: बेला की कविता 'काले काले बादल छाये न वीर जवाहरलाल' ।

प्रतीकों के भीतर निरालाजी के समान गहरे उतरने की क्षमता किसी दूसरे प्रगतिशील कवि में नहीं । "बादल राग" में बादल क्रांति का प्रतीक है तो "कुकुरमुत्ता" का गुलाब अभिजात वर्ग का प्रतीक है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में -" निराला काव्य में प्रतीक सहज और अनायास रूप में आये हैं और आते ही गये हैं । उनमें किसी विशेष प्रतीक या प्रतीकार्थ के प्रति निष्ठा नहीं है । प्रतीक काव्य के अनुचर है, नियन्ता नहीं । शब्द अपने मूल अर्थ को छोडे बिना प्रतीकात्मकता की ओर उन्मुख हुए हैं । " बिम्ब वर्ण्य वस्तु तक प्रसारित रहता है और वस्तु को संश्लिष्ट चित्र रूप में सामने रखता है । वस्तु की निर्मिति को प्रभावित करती है । निरालाजी की 'भिक्षुक' 'विधवा' जैसी रचनाओं में वर्ण्यवस्तु बिम्ब है । 'अनामिका' का 'खुला आसमान' "नये पत्ते" की 'देवि सरस्वती' में सभी प्रकार के बिम्बविधान के उदाहरण प्रस्तुत हैं ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि यद्यपि छायावाद की रोमानी संकल्पना के साथ निरालाजी ने हिन्दी काव्य जगत में पदार्पण किया था, तथापि अपनी कई कविताओं में उन्होंने गरीब, दलित, पीडितों का पक्ष लिया था । अपने काव्य जीवन के अन्त तक वे शोषितों और पीडितों के पक्षधर रहे । उनके काव्य में प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों के सच्चे रूप के दर्शन हम कर सकते हैं । छायावादी कवियों में निरालाजी ने सामाजिक यथार्थवाद के समर्थक के रूप में जीवन की समस्याओं को अभिव्यक्ति दी । जीवन भर मजदूर किसान वर्ग की कल्याण भावना उनके मन में रही और अपने मन की भावना को अपनी प्रगतिशील कविताओं में वाणी दी ।

कवि निराला पृ.सं. 132 आ. नन्ददुलारे वाजपेयी

निरालाजी की कविता की क्रांति की चेतना एवं लोक जीवन की निकटता ने परवर्ती कवियों का पथ प्रशस्त किया । उनकी प्रगतिशील कविताओं में अभिधा का विलक्षण सौन्दर्य हम देख सकते हैं । लेकिन उनकी प्रगतिशील चेतना किसी राजनैतिक वाद के परिणाम स्वरूप उत्पन्न नहीं बल्कि तात्कालीन सामाजिक परिस्थिति एवं कवि की गहरी भाव संवेदना की उपज थी । प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों से यदि राजनीतिक मार्क्सवाद को अलग करें तो अन्य सभी प्रवृत्तियाँ उनकी कविता में मौजूद हैं । इसलिए निरालाजी की प्रगतिशील चेतना संपन्न कविता के लिए प्रगतिवाद की अपेक्षा अधिक उपयुक्त शब्द प्रगतिशील है ।

ठ ठ ठ

अध्याय पाँच

प्रयोगशील नयी कविता और निराला

प्रयोगशील नयी कविता

नामकरण

प्रयोगशील नयी कविता आधुनिक हिन्दी कविता की एक महत्त्वपूर्ण काव्य प्रवृत्ति है । इस महत्त्वपूर्ण काव्यान्दोलन का प्रवर्तन सन् 1943 में श्री अज्ञेय के नेतृत्व में हुआ । अज्ञेय द्वारा संपादित इस काव्यधारा के लिए प्रारंभ में प्रयोगवाद, प्रपद्यवाद, रूपवाद, प्रतीकवाद, नयी कविता जैसी अनेक संज्ञायें दी गयी । डा. गणपतिचन्द्रगुप्त के शब्दों में -" ये संज्ञायें इसके विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं दिशाओं को सूचित करती हैं, यथा प्रारंभ में जबकि कवियों का दृष्टिकोण एवं लक्ष्य स्पष्ट नहीं था, नूतनता की खोज के लिए केवल प्रयोग की घोषणा की गयी थी तो इसे प्रयोगवाद कहा गया ।[1] इसी नामकरण के संबंध में गणपतिचन्द्रगुप्तजी आगे लिखते है -" इस काव्य की दो प्रमुख प्रवृत्तियों -व्यक्तिवाद एवं यथार्थवाद को ध्यान में रखते हुए इसे व्यक्तिपरक यथार्थवाद की संज्ञा देना उचित होगा । पर उच्चारण सुविधा की दृष्टि से इसे और भी संक्षिप्त रूप देने के लिए अति यथार्थवाद भी कहा जा सकता है । वस्तुत: पाश्चात्य साहित्य में भी इस प्रवृत्ति को इसी नाम से (Surreallism अतियथार्थवाद) पुकारा गया है, अत: इस दृष्टि से अति यथार्थवाद कहा जाय तो सार्थक सिद्ध होगा ।[2]"

'प्रयोग' अंग्रेजी शब्द 'एक्सपेरिमेंट' के वज़न पर हिन्दी में उदित शब्द है । 'तारसप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने प्रयोगशील शब्द पर अधिक बल देकर उस संकलन के कवियों की विशेषता का आख्यान किया । इसी कारण आलोचकों ने पहले उपहासात्मक रूप में इस काव्यधारा को प्रयोगवाद नाम दिया था सबसे पहले आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवाद शब्द का प्रयोग किया - "फिर उनके पास अन्वेषी

---

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - पृ.सं. 145 - डा. गणपतिचन्द्रगुप्त
2. वही पृ.सं. 306 वही

को दृष्टि भी नहीं, केवल दृष्टिकोण है, कदाचित् कहीं न चलने के कारण ही प्रगतिशील .....और दृष्टि के बदले दृष्टिकोण रखने के कारण ही अन्वेषी या प्रयोगवादी कहलाते हैं।[1] पहले अज्ञेय के लिए यह नाम स्वीकार्य नहीं था, इसलिए उन्होंने लिखा -" प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है, किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए, जिन्हें अभी नहीं छुआ गया था जिनको अभेद्य मान लिया गया है।"[2]

दूसरे सप्तक में प्रयोगवाद शब्द के विरोध करनेवाले अज्ञेयजी ने सन् 1951 जून के "प्रतीक" में "नयी कविता" शब्द का प्रयोग किया -" मैं आग्रहपूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि नयी कविता को जिसकेलिए मुझे "प्रयोगवादी" शब्द अपूर्ण अव्यक्तऔर पूर्वाग्रह जान पड़ता है - मूल प्रवृत्तियाँ उस देश की हैं"[3]। सन् 1953 में सप्तकीय कवि भरतभूषण अग्रवाल ने कविता के रूप विधान और वस्तुतत्व विषय पर एक लेख परिमल द्वारा आयोजित संगोष्ठी में प्रस्तुत किया, जिसका प्रकाशन मार्च 1953 में "नये पत्ते" में हुआ। डा. राम स्वरूप चतुर्वेदी का लेख "नयी कविता के मुक्तछन्द" का प्रकाशन "कल्पना" में अगस्त 1953 में हुआ। इस प्रकार सन् 1953 तक आते आते प्रयोगशील कविता "नयी कविता" के रूप में प्रतिष्ठित होने लगी। सन् 1954 में डा. जगदीशगुप्त और श्रीरामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादकत्व में "नयी कविता" पत्रिका का संपादन हुआ और प्रयोगशील नयी कविता का प्रचार शीघ्रगति से हुआ। प्रयोगवाद और नयी कविता के संबन्ध को स्पष्ट करते हुए सन् 1960-61 की "नयी कविता" संयुक्तांक में जगदीश गुप्त ने लिखा - " नयी कविता प्रयोगवाद के विरोध में नहीं आयी, वरन उसको मुक्तभाव से आत्मसात् करते हुए उसका आविर्भाव हुआ। व्यक्तिगत रूप से आज भी मैं दोनों के बीच किसी विरोध की स्थिति नहीं देखता और यदि किसी को दिखाई देती है तो मैं उसे वांछित स्थिति को "नयी कविता" के लिए अहितकर ही मानूँगा।"[4] डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में -" वर्तमान अर्थ में नयी कविता का नामकरण अज्ञेय का दिया हुआ है और नये लेखकों की गोष्ठी

---

1. आधुनिक साहित्य -पृ.सं.-71 - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
2. तारसप्तक वक्तव्य - पृ.सं. 276 श्री अज्ञेय
3. प्रतीक जून 1951 श्री अज्ञेय | 4. नयीकविता 1960-61 डा. जगदीशगुप्त

"परिमल" से भी अज्ञेय का निकट संबन्ध रहा है। सच तो यह है कि अज्ञेय और "परिमल" के निकट संबन्ध ने प्रयोगवाद का, नयी कविता" में संक्रमण संभव बनाया।[1] डा. गणपतिचन्द्रगुप्त भी नयी कविता को प्रयोगवाद की एक अभिन्न कडी मानते हैं। उनके शब्दों में-" हिन्दी काव्य में जिस व्यक्तिपरक यथार्थवादी या अतियथार्थवादी आन्दोलन को प्रारंभ में आलोचकों ने प्रयोगवाद नाम दिया था आगे चलकर वही नयी कविता के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।"[2] इन दोनों काव्यधाराओं को अलग माननेवाले विद्वान तो नयी कविता का सूत्रपात "नयी कविता" पत्रिका के प्रकाशन से मानते हैं। डा. गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार -" प्रयोगवादी या नयी कविता की भी यात्रा में उसके विकास के कई चरण दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु इसीसे उसके प्रारंभिक चरण (प्रयोगवाद) को उसके परवर्ती चरण (नयी कविता) से अलग नहीं किया जा सकता। अस्तु, प्रयोगवाद एवं नयी कविता आधारभूत चेतना, काव्य दृष्टि, विषयवस्तु, शिल्प एवं शैली की दृष्टि से परस्पर गहराई से संबन्ध हैं तथा दोनों के काव्य रचयिता भी एक ही हैं, चाहे वे, तारसप्तकों के माध्यम से प्रकाश में आये हों या "नयी कविता" पत्रिका के माध्यम से अथवा अन्य किसी माध्यम से। ऐसी स्थिति में इन दोनों को अलग अलग करना न केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी संभव नहीं।[3] डा. गणपति चन्द्रगुप्त, डा. जगदीश गुप्त और डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी के कथन से स्पष्ट है कि प्रयोगवाद एक काव्यधारा का प्रथम चरण है तो उसका विकसित चरण है नयी कविता।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस काव्यधारा के लिए "प्रयोगवाद" नाम उसके विरोधियों द्वारा दिया था, सन् 1943 से 1951 तक वह इसी नाम से आगे बढी। सन् 1951 में "नयी कविता" के रूप में इसकी पुन: प्रतिष्ठा हुई, जबकि इस काव्य-धारा के कवियों की काव्य दृष्टि, अभिव्यंजना शैली एवं विषय-वस्तु भी विकास पाता जा रहा था। सन् 1953 तक आते तारसप्तकों तक सीमित काव्यधारा उसके दायरे को छोडकर बाहर प्रकाशित होने लगी।

---

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास - पृ.सं. 277-डा. रामस्वरूपचतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - पृ.सं. 145 वही
3. वही पृ.सं. 147 वही

स्वरूप

प्रयोगशील नयी कविता के स्वरूप की व्याख्या करते हुए अज्ञेयजी ने लिखा – "प्रयोगशील कविता में नये सत्यों का या नयी यथार्थताओं का जीवित बोध भी है, उन सत्यों के साथ नये रागात्मक सम्बन्ध भी और उनको पाठक या सहृदय तक पहुँचाने यानी साधारणीकरण की शक्ति है ।"[1] अज्ञेयजी ने स्वयं प्रयोगशील घोषित करके इस काव्यधारा की बौद्धिकता का परिचय देते हुए लिखा –" हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कविता वादी कहना ।"[2] अज्ञेयजी काव्य को प्रयोग का विषय क्षेत्र मानते हैं और प्रयोग के माध्यम से काव्य सत्य की खोज के पक्ष में हैं । राहों के अन्वेषण में उन्होंने प्रयोगशीलता को अपनी मनोवृत्ति माना । इसलिए दूसरे सप्तक में उन्होंने लिखा –" प्रयोग का कोई वाद नहीं है । हम वादी नहीं रहे, नहीं है ।"[3] डा. जगदीशगुप्त के अनुसार –" वह नयी कविता उन प्रबुद्ध विकासशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है जिसकी मानसिक अवस्था और बौद्धिक चेतना नये कवि के समान है – बहुत अंशों में कविता की प्रगति ऐसे प्रबुद्ध भावुक वर्ग पर आश्रित रहती है ।"[4] जगदीश गुप्त भी नयी कविता की बौद्धिकता पर बल देते हैं ।

डा. नामवर सिंह के शब्दों में –" प्रयोगशीलता एक नितान्त अनुभव परक जीवन दृष्टि है ।"[5] अज्ञेयजी ने सप्तकों की भूमिका में प्रयोगशील काव्यधारा की जो व्याख्यायें दी हैं, उन्हीं को आधार बनाकर डा. नन्ददुलारे वाजपेयीजी ने प्रस्तुत काव्यधारा की परिभाषा इस प्रकार दी है –" उलझी हुई संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए अथवा अभेद्य क्षेत्रों में जाने की स्वाभाविक प्रेरणावश सीधी – तिरछी लकीरें, सादे या उल्टे अक्षरों आदि का उपभोग करते हुए कभी किसी विषय पर सहमत न होनेवाले अन्वेषियों की रचना ।"[6]

शिल्प पक्ष पर अधिक बल देनेवाली इस काव्यधारा को डा. नगेन्द्र ने "शैली का विद्रोह कहा"।[7] इसी शिल्पप्रमुखता या टेकनिक को अधिक ध्यान देकर डा. गिरिजाकुमार ने भी इसके स्वरूप की व्याख्या की है –" कविता में विषय से अधिक टेकनिक पर ध्यान

---

1. दूसरा सप्तक –पृ.सं. 9–अज्ञेय। 2. वही पृ.सं. 6 वही
3. वही पृ.सं. 6 वही 4. नयी कविता
5. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ–पृ.सं.130 –डा. नामवर सिंह
6. आधुनिक साहित्य पृ.सं. 75. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ।
7. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ पृ.सं.113-114 डा. नगेन्द्र

दिया जाता है मेरा विश्वास है कि टेकनिक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है ।"[1]

प्रयोगशील नये कवि शैलीगत और व्यंजनागत नवीन प्रयोगों के इच्छुक रहे हैं ।

विकास

प्रयोगशील नयी कविता का समांकन सन् 1939 से लेकर 1961 तक है। "मेरा" की भूमिका में प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि सन् 1939 के "विशाल भारत" में अज्ञेय ने उनकी दो "इंप्रेशनिस्ट" कविताएँ छापी, तभी से प्रयोगशील नयी कविता की शुरुआत हुई । लेकिन योजनाबद्ध आन्दोलन सन् 1943 में "तारसप्तक" के प्रकाशन के साथ हुआ । 'तारसप्तक' की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा -" सातों । सप्तकीय कवि । अन्वेषी हैं । काव्य के प्रति अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बांधता है बल्कि उनके एकत्र होने का कारण यह है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है; किसी मंजिल पर पहुँचे हुए भी नहीं है, अभी राही हैं- राही नहीं राहों के अन्वेषी ।[2] अज्ञेय, गजाननमाधव मुक्तिबोध, गिरिजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे नेमीचन्द जैन, भारत-भूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा आदि तारसप्तक के सात कवि हैं ।

सन् 1951 में "दूसरा सप्तक" प्रकाशित हुआ । इसमें भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण, व्यास, शमशेर बहादुरसिंह नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय, धर्मवीर भारती आदि सात कवियों की कविताएँ संकलित हैं । सन् 1959 में प्रकाशित तीसरे सप्तक में श्री प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि सात कवियों की कविताएँ प्रकाशित हुई ।

सप्तकीय कवियों के एकत्र होने के संबन्ध में अज्ञेय के लिखा था कि वे किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं राही के अन्वेषी हैं । वे इतने प्रतिष्ठित नहीं हुए थे कि अपना अलग अलग संग्रह निकाल सके । डा. गणपतिचन्द्र गुप्त ने एक तीसरा कारण भी बताया -" वह यह है कि जिन कवियों ने अज्ञेय का पिछलग्गू बनना स्वीकार किया,

---

1. तारसप्तक - पृ.सं. 183 श्री गिरिजाकुमार माथुर ।
2. तारसप्तक - 12, 13 अज्ञेय

वे ही इसमें स्थान पा सके..... ज्यों ही उन्होंने अज्ञेय का नेतृत्व अस्वीकार किया, अज्ञेय ने उन्हें, अकवि घोषित किया।"[1]

श्री नलिन विलोचन शर्मा भी अज्ञेय के प्रयत्नों से प्रभावित होकर केसरी कुमार और नरेश शर्मा को मिलाकर तीनों के नाम के प्रथमाक्षर जोड़कर "नकेनवाद" की घोषणा की, जिसका दूसरा नाम रह गया प्रपद्यवाद। वे चमत्कारवादी कविता के प्रणयन में लगे रहे। पाश्चात्य कलावादी आन्दोलन से प्रभावित रहे प्रपद्यवादी कवि। नलिन विलोचन शर्मा ने हिन्दी कविता को पाश्चात्य मनोविज्ञान से जोड़ने का प्रयास किया। उन्होंने प्रयोग को साध्य घोषित किया। यद्यपि यह काव्यान्दोलन अज्ञेय के "प्रयोगवाद" की स्पर्द्धा में उदित हुआ, परम्परा का विरोध, नूतनता की दुहाई एवं अनुकरण को वर्जित घोषित करनेवाले तथा प्रयोग को बल देनेवाले इस काव्यान्दोलन का हिन्दी कविता में अपना महत्व रहा। इसने सिद्ध किया है कि प्रयोगवाद और प्रपद्यवाद में अन्तर नहीं, क्यों कि यह प्रयोग को ही साध्य मानता है, साधन नहीं।

सन् 1947 में अज्ञेयजी ने "प्रतीक" नामक एक पत्रिका निकाली जिसमें प्रयोगवादी रचनायें समय समय पर प्रकाशित हुई थीं। पटना से निकले "दृष्टिकोण" और "पाटल" नामक दो पत्र भी प्रयोगशील नयी कविता के विकास में योग दिये। "नयी कविता" शब्द का प्रयोग सबसे पहले अज्ञेय ने पटना आकाशवाणी की भेंट वार्ता में की थी। सन् 1953 में पं. रामस्वरूप चतुर्वेदी और लक्ष्मी कांत वर्मा के संपादन में नये पत्ते नामक पत्रिका निकली जिसमें सबसे पहले नयी कविता का रूप व्यक्त हुआ था। सन् 1954 में डा. जगदीश गुप्त और डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादकत्व में नयी कविता नामक अर्ध वार्षिक संग्रह प्रकाशित हुआ। इसमें नये कवियों की कविताएँ प्रकाशित होने लगीं, साथ ही नयी कविता के विभिन्न पक्षों की विचार-पूर्ण व्याख्याएँ प्रकाशित हुई। सन् 1951 के बाद ही प्रयोगशील कविता का बदलाव नयी कविता के रूप में हुआ। अतः "तारसप्तक" से "प्रतीक" तक प्रयोगवाद की उपलब्धि की यात्रा ज़ारी रही।" नये पत्ते में इसकी शिल्पात्मक उपलब्धि के आधार पर नयी कविता की प्रथम अनुभूति प्रकट हुई। नयी कविता पत्रिका द्वारा उसका प्रौढ़ रूप हिन्दी संसार के सामने आ गया

---

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - पृ.सं. 148

प्रेरणास्त्रोत और परिस्थितियाँ

प्रयोगशील नयीकविता भारत तथा विदेश के अनेक काव्य संप्रदायों एवं काव्येतर सिद्धान्तों से प्रेरित और प्रभावित रहीं ।

फ्रान्स के तरुण कवियों एवं लेखकों द्वारा "फिगारो" पत्रिका के माध्यम से शुभारंभित प्रतीकवाद से हिन्दी के ये कवि प्रभावित थे । प्रतीकवाद अपने अपने मत पर विश्वास रखने वाले कवियों का प्रयास था, पर भाषा की प्रतीकात्मकता में उनका प्रयास संगठित था । उसी प्रकार टी. ई. ह्यूम एज़रा पाउंड, रिचर्ड एलडिंग्टन जैसे अंग्रेज़ी कवियों ने मिलकर बिम्बवादी संप्रदाय की स्थापना की । यद्यपि काव्य शैली एवं शिल्पगत प्रयोगों पर बल देने के कारण बाह्य यथार्थ के प्रति ये कवि उदास रहे, इनका भी प्रभाव हिन्दी के प्रयोगशील कवियों पर पड़ा । सन् 1916 के आसपास यूरोप में उदित एक कलावादी आन्दोलन था दादावाद, जिसका संचालन और प्रचार जोन अर्प, आन्स्ट मार्क्स जैसे चित्रकारों तथा "दादा" जैसे पत्रों द्वारा हुआ था । इसकी प्रेरणा ने कविता में अश्लील अद्भुत चित्रों को जगह दिया। इस दादावाद का विकास अतियथार्थवाद" नाम से हुआ । इसका विकास साहित्य को केन्द्र बनाकर हुआ था । डा. गणपतिचन्द्रगुप्त के शब्दों में - अति यथार्थवादियों ने जहाँ उन्मुक्त एवं विक्षिप्त रूप में काव्य रचना के प्रयोग करके नयी रचना पद्धति का आविष्कार किया, वहाँ उन्होंने विषयवस्तु के क्षेत्र में भी क्रांति की । इन्होंने चेतनमन के स्थान पर अवचेतन स्तर की सामग्री को प्रस्तुत करते हुए कुंठाओं, वासनाओं, भावनाओं एवं असामाजिक विचारों की अभिव्यक्ति निर्द्वन्द्व रूप में की "।[1]

अस्तित्ववाद यूरोप के जे.पी. सार्त्रे, मार्टिन हैड्गर, एफ नीत्शे जैसे चिन्तकों द्वारा संचालित व्यक्तिवादी, अराजकतावादी विचारधारा है । वे दुख-पीड़ा को अनिवार्य मानते हैं । वे अस्तित्व की अनुभूति को जीवन सत्य मानते हैं । अस्तित्ववाद के समान फ्राइड के मनोविज्ञान ने भी हिन्दी के प्रयोगशील कवियों को प्रभावित किया

प्रतीकवादियों और बिम्बवादियों के समान प्रयोगशील कवियों ने योजनाबद्ध पद्धति अपनायी । प्रतीकवादियों के समान इन्होंने पारस्परिक मतभेद को स्वीकार

1. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास पृ.सं. 312 डा. गणपतिचन्द्रगुप्त

करते हुए अपने एकत्र होने का कारण बताया - "उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं है, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए भी नहीं - अभी राही नहीं, राहों के अन्वेषी।"[1] बिम्बवादियों ने "पोयट्स क्लब" की स्थापना करके अनेक कवियों के सामूहिक संग्रह कवियों के वक्तव्य सहित निकाला था तो प्रयोगशील कवियों ने भी उसी के प्रभाव स्वरूप सात कवियों का कविता संकलन वक्तव्य के साथ "तारसप्तक" नाम से निकाला। जिसप्रकार अतियथार्थवादी कवियों ने अपने बाद के संग्रहों को "न्यूवर्क्स" नाम दिया, प्रयोगशील कवियों ने अपने काव्ययात्रा के दूसरे चरण को "नयी कविता" पुकारा। प्रतीकवादियों के समान प्रयोगशील कवियों ने नये प्रतीकों का प्रयोग परम्परागत अर्थ से भिन्न अर्थ में किया। इनकी वैयक्तिकता एवं सामाजिकता को हिन्दी कवियों ने अपनाया। बिम्बवादियों के समान इन्होंने नये विषय, नयी भाषा एवं नयी शैली की तलाश की। परम्परागत संस्कृति एवं सभ्यता के विरोध में ये दादावादियों के निकट है। फ्राइड के मनोविज्ञान से प्रभावित हिन्दी कवियों की कविताओं में कुंठाओं एवं वासनाओं को स्थान मिला। प्रयोगशील कविता में क्षणवाद, निराशावाद, लघुमानव की प्रतिष्ठा जैसी प्रवृत्तियाँ अस्तित्ववादी दर्शन के प्रभाव स्वरूप उदित हुई थीं। अपनी काव्यधारा के इस पाश्चात्य प्रभाव को स्वीकार करते हुए दूसरे सप्तक के कवि शमशेर बहादुर सिंह ने लिखा - "एक बार क्लास में इलियट और कीट्स की कविताएँ पढ़कर सुनाई गयी। उन्होंने मुझे कविता में एक विस्तार, एक नयी युक्ति और जीवन के नाटक तत्व का आभास दिया। टेकनिक में एज़रा पाउंड शायद मेरा सबसे बड़ा आदर्श बन गया"।[2] तीसरे सप्तक में केदारनाथ सिंह ने लिखा - "फिर धीरे धीरे अंग्रेजी की आधुनिक कविता का सौन्दर्य भी मेरे निकट खुलने लगा और उसके माध्यम से कुछ अन्य भाषाओं की कविताओं से परिचय हुआ। आज वहाँ आकर मन टिक गया है, जहाँ से कालिदास, सूर, बादलेयर, निराला, आडेन डायलनटामस और जीवनानन्ददास समान रूप से प्रिय लगते हैं।"[3] यहाँ केदारनाथ सिंह अपनी कविता में देशी विदेशी कवियों के प्रभाव को स्वीकारते हैं।

---

1. तारसप्तक - भूमिका - पृ.सं. 12 अज्ञेय
2. दूसरासप्तक - पृ.सं. 83 शमशेर बहादुरसिंह
3. तीसरा सप्तक पृ.सं. 186 केदारनाथसिंह।

यद्यपि हिन्दी के प्रयोगशील नये कवियों ने टी.एस. इलियट को अपना आदि-गुरू स्वीकार किया है, वे भारत की प्राचीन काव्य परम्परा से अविच्छिन्न रहे। उनकी बौद्धिकता भारतीय परम्परा की देन है। प्रतीक प्रयोगशील नयी कविता का प्राण है। हिन्दी में संत कवियों ने पहले इसका प्रयोग किया था। छायावादी कवि भी प्रतीक योजना में गहरे उतरनेवाले हैं। प्रयोगशील नये कवि छायावादी संस्कार से पूर्णरूप से मुक्त नहीं। डा. नामवर सिंह ने लिखा है कि नयी कविता का स्वीकृत होना इस बात का पक्का प्रमाण है कि नयी कविता ने कहीं न कहीं पूर्ववर्ती रोमांटिकता के साथ समझौता कर लिया था।[1] प्रयोगशील कविता के संकीर्ण व्यक्तिवाद के संबन्ध में डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - "प्रयोगवाद उत्तर छायावादी समाज विरोधी अतिशय व्यक्तिवादी मनोवृत्ति का बढाव है। चरम व्यक्तित्व ही प्रयोगवाद का केन्द्रबिन्दु है और विभिन्न राजनैतिक, नैतिक सामाजिक मान्यताओं के रूप में यह संकीर्ण व्यक्तिवाद अपने को ही व्यक्त करता है"[2]। युगीन सत्य को सनातन शाश्वत सत्य से जुडाने में प्रयोगशील कवि परम्परा से संलग्न रहे। इसी मनोवृत्ति की उपज है प्रयोगवादी बौद्धिकता। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में -" मध्यवर्ग में भी बुद्धिजीवि संवेदनशील कवि थे जिसने नवीन शिक्षा तथा ज्ञान के द्वारा प्रकृति और समाज को देखने परखने की अन्तर्दृष्टि दी। उसीने धीरे धीरे संपूर्ण समाज में निर्मम आर्थिक संबन्धों की स्थापना कर दी और स्वयं मध्यवर्ग के भीतर बढते हुए भ्रम विभावन के कारण अनेक स्तर बन गये, जिनमें कवि की स्थिति सबसे अधिक दयनीय हो उठी।[3]" ऐसे समाज की कठोर वास्तविकताओं से परिचित हो जाने से कवि की भावुकता नष्ट हो गयी और नवीन जन आन्दोलन से तादात्म्य स्थापित करने के लिए वे कवि तैयार हो गये। इसके फलस्वरूप लघुता के प्रति मोह एवं अति यथार्थ का चित्रण उनकी कविता का बिन्दु बन गयी। इस परिस्थिति में नये प्रयोग और टेकनिक अधिक प्रासंगिक हो गये। इसी कारण प्रयोगशील नये कवियों पर महाप्राण निरालाजी के नवीन प्रयोग एवं टेकनिक का प्रभाव पडा। उनकी "कुकुरमुत्ता", "गर्मपकौडी" जैसी कविताओं का वरण पकडकर यह काव्यधारा आगे बढी।

---

1. कविता के नये प्रतिमान - पृ.सं. 35 डा. नामवरसिंह।
2. प्रगतिवादी समीक्षा पृ.सं. 88 डा. रामस्वरूपचतुर्वेदी
3. आधुनिक साहित्य पृ.सं. 136 - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयीजी।

दो महायुद्धों के महानाश एवं अस्वतंत्र भारत की सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप पुराने जीवन मूल्यों का ह्रास हो गया । नये जीवन मूल्यों के तलाश में लगे प्रयोगशील कवि ने नये प्रयोग को अपनाया । छायावादी कोमलता के स्थान पर यहाँ भद्देस चित्रों का अंकन हुआ । औद्योगिक विकास के युग में जन्मी इस काव्यधारा में मेशीन सम्बन्धी उपमानें, चिकित्सा शास्त्र की बिम्ब योजना का आ जाना स्वाभाविक था ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिन्दी की प्रयोगशील नयी कविता युगीन देशी विदेशी काव्य एवं काव्येतर परिस्थितियों से प्रभावित है ।

प्रयोगशील नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ :-

प्रयोगशील नयी कविता की जो विशेषताएँ हैं वे नयी कविता में थोड़े बहुत अन्तर के साथ प्रकट हैं । प्रयोगशील कविता में जीवन का कृष्णपक्ष अधिक उद्घाटित है जबकि नयी कविता में कृष्णपक्ष के साथ शुक्लपक्ष भी उद्घाटित हैं । आधुनिक भाव-बोध, बौद्धिकता, यथार्थ के प्रति आग्रह, व्यष्टि और समष्टि का द्वन्द्व एवं सामंजस्य आदि प्रयोगशील नयी कविता की भाव पक्ष की विशेषताएँ हैं । प्रयोगशील नयी कविता का शिल्पपक्ष भी कथ्य के अनुकूल नया है ।

आधुनिक भावबोध

आधुनिक भावबोध एक प्रश्नाकुल मानसिकता है, इसकी अभिव्यक्ति प्रयोगशील नयी कविता में हुई है । यह आधुनिक भावबोध प्रयोगशील नयी कविता का प्राण माना जाता है । मनुष्य के भाव सनातन हैं । लेकिन आधुनिक जटिल परिस्थिति में इस भाव के विस्तार में अन्तर आ जाना स्वाभाविक है । रागात्मक सम्बन्धों के प्रसंग और अभिव्यक्ति की प्रणाली के बदलने से आधुनिक मनुष्य की संवेदना भी बदलती है । क्योंकि इस परिस्थिति में जीनेवाले मनुष्य में भावों की टकराहट है । श्री मुक्तिबोध के शब्दों में -" यह आधुनिक संवेदना पूर्वतर युगों की भाव दृष्टियों से सर्वथा भिन्न है । आज शिक्षित मनुष्य का दृष्टिकोण मध्ययुगीन

धार्मिक दृष्टि से अनुप्राणित या छायावादी भावुकता से परिपूर्ण कल्पना प्रधान नहीं। इस वैज्ञानिक युग में उसकी दृष्टि यथार्थोन्मुख अथवा संवेदनशील है। वह यथार्थ संबन्धों को ग्रहण कर यथार्थ बोध द्वारा संवेदनात्मक प्रतिक्रियायें करता है"[1]।

परिवेश या परिस्थितियों से आधुनिक मनुष्य की संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ नयी कविता में प्रकट है। यह आधुनिक भावबोध कभी परम्परा से अलग होने की गवाही देता है तो, कभी परम्परा से नये धरातल पर जुडता है। कभी विगत और आगत को मिथक के माध्यम से समकालीनता के स्तर पर जोडता है। अज्ञेयजी की कविता "हरी घास पर क्षण भर" में रोमान्टिक भावबोध और आधुनिकता के बोध का तनाव है। यह आधुनिक भावबोध का पहला दौर है। श्री. मुक्तिबोध ने संघर्ष और द्वन्द्व को तनाव तक पहुँचा दिया है। उनके अनुसार काव्य बाह्य जीवन जगत के साथ सामंजस्य या द्वन्द्व में प्रस्तुत होता है। उनके शब्दों में -" आज की कविता में उक्त सामंजस्य से अधिक द्वन्द्व ही है। इसलिए उसके भीतर तनाव या घिराव का वातावरण है।"[2] मुक्तिबोध में अपने परिवेश और स्वयं अपने अन्दर तनाव है। अत: उनका तनाव दुहरा है।

उदा पिस गया वह भीतर और
बाहरी दो कठिन पाटों बीच
ऐसी ट्रेजडी है बीच

श्री मुक्तिबोध की प्रस्तुत कविता ब्रह्मराक्षस आधुनिक भावबोध का उत्तम उदाहरण है। यहाँ मध्यवर्गीय मनुष्य के अन्त संघर्ष को वाणी मिली है।

श्री मुक्तिबोध की कविता "अन्धेरे" में उन्होंने आज के सन्दर्भ में जीनेवाले मनुष्य के द्वारा अस्मिता की खोज की है। यहाँ "मैं" और "वह" का संवाद है। यहाँ "मै" जो खो गया है, की खोज जारी है -

---

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष पृ.सं. 119 - श्री मुक्तिबोध
2. वही पृ.सं. 8 वही

इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए -
पूरी दुनिया को साफ़ करने के लिए बेहतर चाहिए -
मैं बेहतर मैं हो नहीं पाता ।

इस अकेलेपन के एहसास में आधुनिकभाव बोध है, जो समकालीनता को भी अपनायी है । "अन्धेरे में" परम अभिव्यक्ति की खोज है तो "ब्रह्मराक्षस," "चांद का मुँह टेढ़ा है" आदि में मानव की स्थिति और नियति को पहचानने की कोशिश है ।

श्री रघुवीर सहाय आधुनिकता की चुनौती को भिन्न धरातल पर अपनाते हैं । उनके काव्य संकलन " आत्महत्या के विरुद्ध" की अंतिम कविता " एक अखंड भारतीय आत्मा" में समकालीन वास्तव को व्यंग्य की पैनी धार से समेटने की कोशिश की है । कविता की मुख्य बिन्दु है -

कल फिर मैं
एक बात कह बैठ जाऊँगा ।

यहाँ "एकबात कहने " का हौसला ज़िन्दा है, चाहे कोई सुने या न सुने और चाहे कहकर बैठ जाना पड़ें। यहाँ परिवेश के प्रति गहरे और तीखे तनाव की सूचना है| श्री सर्वेश्वर दयाल सकसेना की कविता "पोस्टर और आदमी" में पोस्टर के माध्यम से मनुष्य का नया चेहरा नहीं उभरता, यह नगर बोध का परिणाम है, इसके मूल में आधुनिक भावबोध है ।

अत: आधुनिक भावबोध - कविता में विविधता से प्रकट हुई है । डा.इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में - " मुक्तिबोध की कविता में तनाव अगर होने और न हो पाने में है, श्रीकान्तवर्मा की कविता में अगर यह होने और न हो सकने में है तो इसका मतलब यह नहीं है कि "सकने" के बोध में आधुनिकता का नकार है और पाने के बोध में इसका स्वीकार है"।[1]

---

1. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य पृ.स. 48 - डा. इन्द्रनाथमदान

बौद्धिकता

बौद्धिकता प्रयोगशील नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है । डा. जगदीशगुप्त के शब्दों में -"नयी कविता बौद्धिकता की छाया में विहस रही है । सभी के पीछे प्रेरणा का बुद्धिगत रूप स्पष्ट झलकता है ।"[1] पाश्चात्य काव्यलोक के अनुसरण में उन्होंने भाव तत्व और अनुभूति के बोध में बौद्धिकता को स्वीकारा है । प्रयोगशील कवियों ने चिन्तन से रस निष्पत्ति की कल्पना की है । उनके अनुसार रस निष्पत्ति हृदय से नहीं मस्तिष्क से है । प्रयोगशील कवियों की बौद्धिकता सामाजिक दबाव के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी । अज्ञेयजी का रचना संसार, संसार की परिस्थितियों का सीधा सामना करना नहीं चाहता । यहाँ प्रकृति के वस्तु, दृश्य सब कवि का आत्मसत्य बन जाता है । इस आत्मसत्य की अभिव्यक्ति कविता में होती है -

पार्श्व गिरि का नम्र चीड़ों में
डगर चढ़ती उमंगों -सी
बिछी पैरों में नदी ज्यों दर्द की रेखा ।
विहग शिशु मौन नीड़ों में
मैं ने आँख भर देखा
दिया मन को दिलासा - पुन आऊँगा
क्षितिज ने पलक सी खोली
तमककर दामिनी बोली -
अरे यायावर - रहेगा याद ।[2]

यहाँ प्रकृति के माध्यम से स्मृति का चित्रण है । प्रणय भावना का बौद्धीकरण और प्रकृति से उसके संयोजन के कारण अज्ञेय की कविता में चिन्तन की प्रधानता रही । मुक्तिबोध कविता को "सांस्कृतिक प्रक्रिया" मानते हैं । उन्होंने कविता में ज्ञानात्मक

---

1. आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि पृ.सं. 40 - सुरेशचन्द्रनिर्मल
2. हरीघास पर क्षण भर पृ.सं. 29 - श्री अज्ञेय ।

संवेदन को अभिव्यक्ति दी है । उनकी कविताएँ चिन्तन के साध्य बन गयी है ।

श्री भारतभूषण अग्रवाल ने अपनी कविता " ओ अपरस्तुत मन" में एक मध्य-वर्गीय मन की सच्ची तस्वीरें प्रस्तुत करके अनुभूति के प्रति ईमानदारी रखने का प्रयास किया है । जीवन की समग्रता के चित्रण का दृढ संकल्प रखने के कारण नयी कविता में भावुकता के स्थान पर बौद्धिकता आ गयी । श्री भरत भूषण अग्रवाल, श्री गिरिजाकुमार माथुर, शमशेरजी , श्री रघुवीर सहाय, श्री केदारनाथसिंह जैसे कवियों ने अपने समय के पहचान की कोशिश की है। इनकी कविताओं में घटनाओं का चित्रण नहीं, बल्कि घटनायें कवियों में प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं । कवि की संवेदना इन्हें नये ढंग से प्रस्तुत करती है । संक्षेप में प्रयोगशील नये कवियों ने अपनी उलझी हुई संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए बौद्धिकता का सहारा लिया ।

बदलते सौन्दर्यबोध

प्रयोगशील नयी कविता की सौन्दर्यचेतना यथार्थ पर आधारित है । इन्होंने अपने बदलते सौन्दर्यबोध से कविता में सुन्दर असुन्दर के भेद को मिटाया। नयी कविता के सौन्दर्य की ग्रेषणीयता के मूल में कवि की ईमानदारी है जो पाठक के विवेक का यथार्थता के साथ स्पर्श करती है । इन कवियों का सौन्दर्यबोध बुद्धि का व्यापार है जो समाज और सामाजिक स्थिति के अनुरूप बदलता रहता है । अतः उनका प्रतिमान स्थायी नहीं। मुक्तिबोध ने नयी कविता के सौन्दर्यबोध को "जडीभूत सौन्दर्याभिरूचि" कहा है । उनके अनुसार "यह सौन्दर्याभिरूचि एक विशेष वर्ग की है, जिस वर्ग ने विशेष परिस्थिति में ही सौन्दर्याभिरूचि को अंगीकार किया है ।....उस उच्च-मध्यवर्गीय सौन्दर्याभिरूचि के अधीन हो निम्न-मध्यवर्गीय कविजन, जाने अनजाने उस प्रेम के कारण सेन्सर लगाते रहते है " ।

अस्थायी प्रतिमानों से युक्त सुन्दरता का यह अवतार हमारे सामने पल-छिन होता है यह हमारा काम है कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अंदर घुला सकते हैं ।

---

1. नयी कविता का आत्मसंघर्ष -मुक्तिबोध

उदा   एक नील आइना
बेठोस सी यह चांदनी
और अन्दर चल रहा हूँ मैं
उसी के महातल के मौन में ।
मौन में इतिहास का
कन किरन जीवित, एक बस   । एक नीला आइना बेठोस — शमशेर ।

इस प्रकृतिचित्रण में यथार्थवादी झलक है । यहाँ अनुभव के उन्मेष का महत्व है । यहाँ कवि चांदनी के अन्दर चल रहा है । वह चांदनी उनके भीतर भी है । अन्तर बाहर की क्रिया- प्रतिक्रिया में अनुभव क्षण का विस्तार है ।

छायावादी कोमलता के स्थान पर प्रयोगशील नयी कविता में भद्देस चित्रण की भरमार हुई -

उदा   निकटतर धंसती हुई छत, आड में निर्वेद
मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त में
तीन टांगों पर खड़ा नतग्रीव
धैर्यवान - गदहा ।   । अज्ञेय ।

सौन्दर्य के प्रति नया दृष्टिकोण उनकी निर्ममता और निर्द्वन्द्वता का परिणाम है ।
जिस बात को छायावादी कवि सामाजिक शील वश कहना नहीं चाहते थे, उसे कह देते हैं प्रयोगशील नये कवि । नयी कविता में अनुदात्त की अभिव्यक्ति है ।
डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में -"नयी कविता का एक मूल स्वर है - सामान्य घटनाओं में सोये हुए या स्थगित जीवन की पहचान । उदात्त तो स्वयं काव्य है, अपने से जीने योग्य है, अनुदात्त को रचना और उसे जीने योग्य बनाना, यह नये कवि का वैशिष्ट्य है जीवन के अन्दर जनतंत्र को बढाना है ।[1]" इसकी अच्छी पहल शमशेर की कविताओं में है ।

---

1. नयी कविताएँ एक साक्ष्य - पृ.सं. 87-88- डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी

संक्षेप में यथार्थ के धरातल पर जन्मी नये सौन्दर्यबोध की सफल अभिव्यक्ति नयी कविता में हुई है ।

यथार्थ के प्रति आग्रह

प्रयोगशील नये कवियों ने उस यथार्थ का चित्रण किया है जिनका उनके जीवन से अटूट रिश्ता है । ये कवि भोगे हुए यथार्थ के चित्रकार हैं । वे समस्त विद्रूपता घुटन और छटपटाहट को काव्य का विषय बनाते हैं जो आज का संवेदनशील मनुष्य भोग रहा है । तारसप्तक में अज्ञेयजी ने लिखा है -" सत्य व्यक्तिबद्ध नहीं है, व्यापक है और जितनाही व्यापक है उतना ही काव्योत्कर्षकारी है ।" दूसरे सप्तक में अज्ञेयजी ने जिस आत्मसत्य की बात कही है, वह श्री शमशेर बहादुरसिंह के शब्दों में - "इस आत्म सत्य में बाहर के यथार्थ को भी अज्ञेय ने बाहर नहीं रखा है, आत्मसात किए हुए सत्य में शामिल किया है"[2]। नये कवि को युग जीवन के अन्धकार पक्ष के साथ भविष्य के प्रति निष्ठावान मानव व्यक्तित्व का पूरा बोध है

नये कवियों में श्री सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की कविता में अनुभव की तीव्रता और उद्वेग का उद्घाटन है साथ ही समसामयिक सन्दर्भ भी प्रबल हैं । जीवन के अनुभव और समग्रजीवन को अभिव्यक्ति देने के कारण उनकी कविता में रोमान्टिक भावावेग का अभाव है ।

वर्तमान युग में मनुष्य के अभाव और व्यापक हो गये हैं । मध्यवर्गीय युवक अपने लघुत्व के प्रति सतर्क है, उसे अपनी हैसियत का बोध है । श्री रघुवीरसहाय की कविताएँ सामाजिक यथार्थ पर अधिकाधिक बल देते हैं-

उदा: लोगों, मेरे देश के लोगो और उनके नेताओं
मैं सिर्फ एक कवि हूँ
मैं तुम्हें रोटी नहीं दे सकता न उसके साथ खाने को गम
न मिटा सकता हूँ ईश्वर के विषय में तुम्हारा संभ्रम

---

1. तारसप्तक वक्तव्य - पृ.सं. 275 श्री अज्ञेय
2. आलोचना जनवरी 1952 श्री शमशेर

यहाँ कवि अपने रचनाकर्म का स्पष्टीकरण करते हैं, साथ ही सामाजिक यथार्थ को हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं।

मुक्तिबोध की रचना प्रक्रिया की सबसे बड़ी शक्ति उनका जन संस्कार है। उनकी लम्बी कविता "अन्धेरे" की रचनात्मकता संदर्भों से बनती है। इसमें समाज के उत्थान-पतन और आन्दोलनों के बीच कवि की समस्या है-

जिन्दगी के
कमरों में अन्धेरे
लगाता है चक्कर
कोई एक लगातार ।अन्धेरे में।

यहाँ नायक "मैं" आत्म निर्वासित है। इस कविता के सम्बन्ध में श्रीरामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है - स्वप्न, फंतासी और अति यथार्थवादी अनुभवों में घुला मिला चलनेवाला उसका कथानक रक्ताभोक- स्नात पुरुष का साक्षात्कार, कवि को दी गयी मौत की सजा, रात का विचित्र जुलूस, मशाल लौ जैसा वातावरण तिलक मूर्ति से टपकता हुआ खून, विचित्रवेश में गांधी से भेंट, भास्वर शिशु का कवि को सौंपा जाना और गांधी द्वारा जनशक्ति का आह्वान, कवि को पकड़कर दी गयी यंत्रणा, फिर रिहाई, अभिव्यक्ति के खतरों का एहसास और फिर परम अभिव्यक्ति की तलाश - सांस्कृतिक पुनर्जागरण, राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन और परवर्ती जीवन का विराट, संश्लिष्ट चित्र है जो कविता में पहली बार इस रूप में अंकित होता है।"[1] मुक्तिबोध की कविता में यथार्थ, वस्तुसंवेदन के साथ मिलकर कवि की रचना प्रक्रिया को सक्रिय बनाकर, फैंटसी के माध्यम से व्यक्त करता है।

प्रयोगशील नये कवियों की यथार्थवादी दृष्टि राष्ट्रीय सांस्कृतिक विषयों पर भी रही। स्वतंत्रता दिवस के संबन्ध में श्री गिरिजाकुमार माथुर ने लिखा -

---

1. नयी कविताएँ एक साक्ष्य पृ.सं. 99 श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी

आज जीत की रात
पहुरिये सावधान रहना
ऊँची रहे मशालें हमारी
आगे कठिन कगार है
शत्रु हट गया
लेकिन उसकी छायाओं का डर है ।

यहाँ स्वतंत्रता के बाद भारतीय नागरिक के हृदय के भावों का चित्रण है जो पूर्ववर्ती कवियों की भावना से एकदम अलग है ।

श्री भरत भूषण अग्रवाल ने अपने काव्य संकलन "ओ अप्रस्तुत मन में "अनुभूति के प्रति ईमानदारी रखते हुए एक साधारण मध्यवर्गीय मन की सच्ची तस्वीर प्रस्तुत की है ।

संक्षेप में प्रयोगशील नयी कविता के कवि जीवन यथार्थ को अनुभूति से जोड़कर प्रस्तुत करने में सफल निकले हैं ।

व्यक्ति और समष्टि का द्वन्द्व तथा सामंजस्य :-

प्रयोगशील कविता व्यक्ति केन्द्रित विचारधारा पर आधारित है । इस काव्यधारा के प्रवर्तक अज्ञेयजी व्यक्ति स्वातंत्र्य के आग्रही है । वे व्यक्तित्व की खोज का आग्रह करते है और कविता को इसका प्रयत्न स्वीकार करते हैं । उन्होंने आत्मनेपद में लिखा है - " मेरी रुचि व्यक्ति में रही है और है "नदी के द्वीप" व्यक्ति चरित्र का ही उपन्यास है । "[1] अज्ञेयजी जीवन से प्राप्त प्रेरणा के साथ व्यक्ति वैशिष्ट्य को स्वीकारते हैं -

किन्तु हम हैं द्वीप
हम धारा नहीं है
स्थिर समर्पण है हमारा

---

1. आत्मनेपद - पृ.सं. 72 - अज्ञेय

हम सदा के द्वीप है स्त्रोतस्विनी के
किन्तु हम बहते नहीं है
क्योंकि बहना रेत होना है
हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं ।

यहाँ द्वीप नदी के लिए समर्पित है, पर वह बहना नहीं चाहता, क्योंकि बहने से व्यक्तित्व का अस्तित्व मिट जाता है । श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता व्यक्तित्व के आंतरिक तनाव से गुजरती है । डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में- "इस तनाव का आरंभिक सरल और आत्मीय रूप सर्वेश्वर में मिलता है"।[1] प्रयोगशील नयी कविता पर लगाये सामाजिक विमुखता के आरोप को निराधार स्थापित करते हैं सर्वेश्वर की कवितायें । सार्वजनीनता और व्यापकता उनकी कविता के मुख्य गुण है -

उदा मैं नया कवि हूँ
इसी से जनता हूँ
सत्य की चोट बहुत गहरी होती है,
मैं नया कवि हूँ -
इसीसे मानता हूँ
चश्मे के तले ही दृष्टि बहरी होती है,
इसी से सच्ची चोटें बांटता हूँ
झूठी मुस्कानें नहीं बेचता ।

प्रयोगशील कविता की वैयक्तिकता में नयी कविता तक आते आते सामाजिकता का दिग्दर्शन दिखाई पडने लगा । यहाँ व्यक्ति और समाज का समान महत्व है,

---

1. नयी कविताएँ एक साक्ष्य - पृ.सं. 19 - श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी

कहीं दोनों का तनाव है । मुक्तिबोध अपनी रचना प्रक्रिया को जन-जीवन के सन्दर्भों में पारिभाषित करते है-

उदा उनकी कविता अन्धेरे में -

दीप्ति में वलयित रत्न वे नही है ।
अनुभव, वेदना, विवेक निष्कर्ष ।
मेरे ही अपने यहाँ पडे हुए हैं ।

कवि की गहरी वेतना सामाजिक अवचेतन से जुडी हुई है ।

गाँधीजी का सन्देश -

जनता के गुणों से हो संभव
भावो का उद्भव

यहाँ कवि की रचनाशक्ति विविध स्तरों में सामाजिकता से जुडी है । इस कविता के अन्त में कवि को "परम अभिव्यक्ति की खोज" जिसमें शक्ति का विराट रूप है, गुहा से निकलकर भीड में मिल जाता है ।

श्री भरत भूषण अग्रवाल ने अज्ञेयजी की "नदी के द्वीप" को जीवन दृष्टि का विरोध करते हुए हम नहीं है द्वीप" कविता लिखी -

हम नहीं है द्वीप जीवन की नदी के
वरन जीवन से भरे निर्मम सरोवर
भले मिट्टी से हुआ निर्माण
किन्तु मिट्टी है परिणिति ही
नहीं है मिट्टी हमारे प्राण
सूर्य की दीप्ति से
नीर के भावुक मिलन की हम विमल संतान ।
यहाँ व्यक्तित्व के प्रति मोह नहीं है ।

संक्षेप में प्रयोगशील नयी कविता में वैयक्तिकता है, वैयक्तिकता और सामाजिकता का तनाव एवं सामंजस्य है ।

---

1. ओ अप्रस्तुत मन - पृ.सं. 1।

शिल्पपक्ष

शिल्पपक्ष की दृष्टि से प्रयोगशील नयी कविता का योगदान अधिक महत्त्व - पूर्ण है । भाषा, बिम्ब, प्रतीक, छन्द सब शिल्प पक्ष के अन्तर्गत हैं ।

भाषा

प्रयोगशील कवि मानते हैं कि आधुनिक जीवन की जटिल परिस्थितियों का अंकन पुरानी भाषा में नहीं हो सकती ।अज्ञेयजी के शब्दों में - " काव्य के जो भी गुण बताए जाते या बताए जा सकते हैं, अन्ततोगत्वा भाषा के ही गुण है"।[1] अज्ञेयजी जैसे कवि शब्दों के नये अर्थ भरने की क्षमता को कविता की श्रेष्ठता को कसौटी मानते हैं । "तारसप्तक" द्वितीय संस्करण की भूमिका में अज्ञेयजी ने लिखा - "काव्य सबसे पहले शब्द है । और सबसे अन्त में भी यही बात बच जाती है कि काव्य शब्द है । सारे कविधर्म इसी परिभाषा से निःसृत होते हैं । शब्द का ज्ञान-शब्द की अर्थवत्ता की सही पकड-ही कृतिकार को कृति बनाती है"।[2] "अतः अज्ञेयजी ने काव्य को आद्यन्त शब्द माना है । डा. नामवरसिंह के शब्दों में -" "प्रयोगशील कवि के लिए सत्य इतना सहज न था । उसने यह अनुभव किया कि परिवेश का बोध भाषा की क्षमता पर निर्भर है । किसी भी भाषा शक्ति उसकी बोध शक्ति का प्रमाण है। व्यक्ति का अपना भाषा संसार ही अनुभव संसार है इसलिए अनुभव संसार के विस्तार के लिए भाषा संसार का प्रसार अनिवार्य शर्त है"।[3]

प्रयोगशील कवियों में अज्ञेयजी भाषा के प्रति अधिक सजग हैं । उन्होंने प्रयोग को दोहरा साधन कहा । उनकेलिए भाषा जाने हुए सत्य के संप्रेषण का माध्यम है अज्ञेयजी की भाषा के कई स्त्रोत हैं - देशज, अंग्रेजी, उर्दू, शब्दों को भी उन्होंने अपनाया जिनका बनावट आभिजात्य में है । उनकी कविता "असाध्यवीणा" की प्रकृ और जीवन के व्यापक चित्रण में, संस्कृत साहित्य परम्परा, तत्सम का आभिजात्य एवं तद्भव की आत्मीयता है । भाषा विषयक "मौन" की अभिव्यक्ति अत्यन्त सफलता के साथ इस कविता में व्यक्त हुई है ।

---

1. सीढियों पर धूप में की - भूमिका ।रघुवीर सहाय का काव्य संकलन ।
2. तारसप्तक - द्वितीयसंस्करण - भूमिका
3. कविता के नये प्रतिमान पृ.सं. ।।। - डा. नामवरसिंह ।

भाषा में नये शब्द के खोजने का अर्थ तो वास्तविकता की एक नये पहलू की खोज है । रघुवीर सहाय की कविता "नया शब्द" में इस काव्य सत्य की अभिव्यक्ति है -

शब्द, अब भी चाहता हूँ
पर वह कि जो जाए वहाँ होता हुआ
तुम तक पहुँचे
चीज़ों के आरपार दो अर्थ मिलाकर सिर्फ एक
स्वच्छन्द अर्थ दे
मुझे दे ।
यहाँ किसी नये अनुभव की ओर संकेत है ।

श्री धर्मवीर भारती के " अन्धा युग" की भाषा बोलचाल की है । यहाँ शब्दावली, वाक्यविन्यास और लय बोलचाल की है ।

भीतर से मथनेवाले जीवन यथार्थ को अभिव्यक्ति देने के लिए मुक्तिबोध ने भाषा की एक व्यापक दुनिया को अपनाया । डा. नामवरसिंह के शब्दों में "शब्द चयन की दृष्टि से मुक्तिबोध की भाषा काफी ऊबड - खाबड लगती है। बोलचाल के साधारण शब्दों के बीच कुछ इतने अजनबी समास बद्ध संस्कृत निष्ठ शब्द आ जाते हैं कि जबान लडखडा जाती है ।.... मुक्तिबोध की प्राणवान काव्यभाषा उनके प्राणवान कथ्य की प्रतिध्वनि है । उनके "अन्धेरे में" की भाषा इसके उत्तम उदाहरण है । आज के जीवन की धडक्कन को व्यक्त करनेवाली लय उनकी भाषा में है ।

कल कल प्रवाहिनी पारदर्शी काव्य भाषा श्री भवानी प्रसाद मिश्र जी की काव्यभाषा की विशेषता है -

ये भूखे नहीं, पियासे हैं ।
वैसे ये अच्छे खासे है
है वाह वाह की प्यास इन्हें

---

1. कविता के नये प्रतिमान - पृ.सं. -118-119 - डा. नामवरसिंह ।

ये शूर कहे जाएँगे तब
और कुछ के मान भाएँगे तब
है वमडों की अभिलाषा इन्हें । जंगल और शेर ।

श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने भाषा का लोकतंत्रीकरण किया है । श्री कुंवरनारायण ने "चक्रव्यूह" की कविता "माध्यम" में भाषा की नयी परिभाषा दी है-

वस्तु और वस्तु के बीच भाषा है
जो हमें अलग करती है
मेरे और तुम्हारे बीच एक मौन है
जो किसी अखण्डता मे हमको मिलाता है।

डा. अशोक वाजपेयी ने लिखा है -" किसी ने कहा है कि जब भाषा अपना अर्थ खो देती है तभी वह साहित्य का दर्जा प्राप्त करती है । यह विवादास्पद धारणा हो सकती है, लेकिन एक निरर्थक दुनिया को स्वायत करने के लिए भाषा के अर्थ को जान- बूझकर विचलित और कभी कभी समाप्त करना जरूरी है"।[1]

संक्षेप में प्रयोगशील नयी कविता की भाषा आज के जीवन सत्य को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त है।

बिम्ब विधान

काव्य बिम्ब की दृष्टि से प्रयोगशील नयी कविता का युग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस युग में काव्य बिम्ब के क्षेत्र का विस्तार अधिक बढ़ गया है। तीसरे सप्तक के कवि केदारनाथ सिंह ने लिखा है - "कविता मे मैं सबसे अधिक ध्यान देता हूँ बिम्ब विधानपर। बिम्ब विधान का सम्बन्ध जितना काव्य की विषय वस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी । विषय कोयह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को संक्षिप्त और मूर्त । एक आधुनिक कवि की श्रेष्ठता की परीक्षा उसके द्वारा आविष्कृत बिम्बों के आधार पर की जा सकती है। उसकी विशिष्टता और उसकी आधुनिकता सबसे अधिक उसके बिम्बों से ही व्यक्त होती है"।[2]

---

1. आधुनिक हिन्दी कविता पृ.सं. 116 - सं. जगदीशचतुर्वेदी
2. तीसरा सप्तक - वक्तव्य - पृ.सं. 114 - केदारनाथसिंह ।

प्रयोगशील नयी कविता के रूपबिम्बों का आधार प्रकृति है । श्री भारत-भूषण अग्रवाल ने संध्या की लालिमा का चित्र प्रस्तुत किया है -

मार बिजली की कटारी
मर गये बादल
टपकते खून से धरती नहायी
रंग गया लोहित क्षितिज का आसमान ।[1]

श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता "यह खिडकी" का जो बिम्ब है अत्यन्त जीवन्त है -

ज़िन्दगी मरा हुआ चूहा नहीं है
जिसे मुख में दबाए
बिल्ली की तरह हर शाम गुजर जाए
और मुंडेर पर
कुछ खून के दाग छोड जाए ।
यह बिम्ब अपने आप में पूर्ण है ।

गतिमयता के साथ बिम्बयोजना का सफल प्रयोग शमशेरजी की कविता में है -

जो कि सिकुडा हुआ बैठा था, वो पत्थर -
सजग होकर पसरने लगा
आप से आप । सुबह ।

मुक्तिबोध की कवितायें सुन्दर बिम्बों से युक्त हैं । उनकी कविता में अनुभव की गहरी आस्था है । यह आस्था उनके बिम्बों में प्रतिबिम्बित है-

नपुंसक श्रद्धा
सडक के नीचे की गटर में छिप गयी
कहीं आग लग गयी, कहीं गोली चल गयी ।[2]

---

1. श्री अप्रस्तुत मन पृ.सं. 83
2. चाँद का मुँह टेढा है पृ.सं. ।

वर्णबिम्ब अज्ञेयजी, शमशेरजी, श्री मुक्तिबोध और जगदीश गुप्त की कविता में उपलब्ध है । भाव बिम्बों का मूर्त और अमूर्त चित्रण प्रयोगशील नयी कविता में है । सर्वेश्वरदयालजी की लम्बी कविता "कैसी विचित्र है जिन्दगी" में जिन्दगी की विचित्रता के अंकन के लिए कई बिम्ब मालायें प्रस्तुत की है । संक्षेप में सार्थक बिम्बों का सही प्रयोग प्रयोगशील नयी कविता में है ।

लेकिन बाद में प्रयोगशील नयी कविता बिम्ब के बाहर निकल आयी । उसमें " सपाट बयानी" आ गयी । डा. नामवरसिंह के शब्दों में -" बिम्बों के कारण कविता बोलचाल की भाषा से अकसर दूर हटी है, बोलचाल की सहज लय खण्डित हुई है, वाक्य विन्यास की शक्ति को धक्का लगा है, भाषा के अन्तर्गत क्रियाएँ उपेक्षित हुई है , विशेषणों का अनावश्यक भार बढा है और काव्य कथन की ताकत कम हुई है । इन कमज़ोरियों को दूर करने के लिए ही कविता में तथाकथित सपाटबयानी अपनायी जा रही है, जिसमें फिलहाल काफी संभावनायें दिखाई पडती है ।"[1] यहाँ प्रयोगशील नये कवियों की भाषा कबीर सूर तुलसी जैसे भक्त कवियों से मिलती है

प्रतीक

नये प्रतीकों का विधान प्रयोगशील नयी कविता की एक महत्वपूर्ण विशेषता है । प्रयोगशील कवियों में मुक्तिबोध का प्रतीक संसार काफी विस्तृत है । कवि उनमें अन्विति स्थापित करता है और पूरा कथ्य भी प्रभावी बन जाता है -

माँ की हंसी के प्रतिबिम्ब सी शिशुवदन पर
हुई भासित
नये चीड़ों से कंटीली पार की गिरि श्रृंखला पर

अज्ञेयजी ने कहीं प्रतीक को तीखे व्यंग्य के रूप में स्वीकार किया है । उनकी साँप कविता प्रतीकात्मक है, यहाँ "साँप" का प्रयोग व्यंग्यात्मक है -

---

1. कविता के नये प्रतिमान - पृ.सं. 139 - डा. नामवरसिंह

साँप

तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया ।
एक बात पूछूँ - । उत्तर दोगे?।
तब कैसे सीखा डंसना
विष कहाँ पाया ।

"ब्रह्मराक्षस" मुक्तिबोध का प्रिय प्रतीक है, जिसमें कवि स्वयं सम्मिलित है । कवि यहाँ अन्त संघर्षों में गुजरनेवाले ज्ञान के पिपासु मध्यवर्गीय जीवि है -

पिस गया वह भीतर आ
बाहरो दो कठिन पाटों बीच
ऐसी ट्रैपडी है नीच

श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना में मोह में बदलनेवाला प्रतीक विधान है जो आकर्षक है। अनेक प्रतीक अनेक बार प्रयुक्त हो जाने पर सामान्य भाषा की तरह बन जाते हैं, अर्थ रूढ बन जाते हैं । "यहीं कहीं एक कच्ची सडक थी " में कच्ची सडक ग्रामीण निष्ठा का प्रतीक है, और कोलटार से बना राजमार्ग विदेशी सभ्यता का ।

प्रयोगशील कवि उपमानों, प्रतीकों के क्षेत्र में विद्रोही हैं । उनके प्रतीक ताजगी और नवीनता से युक्त हैं । प्राचीन प्रतीकों के स्थान पर नये प्रतीक रखकर वे कविता को तेजगति प्रदान करते हैं । संक्षेप में नयी कविता का प्रतीक अप्रयुक्त और वैयक्तिक है ।

छन्द

प्रयोगशील नये कवियों ने अधिकांशत: मुक्तछन्द में कविता लिखी है । डा. जगदीशगुप्त के शब्दों में -" नया कवि पद्य, छन्द और तुक को रूढिबद्ध रूप में ग्रहण न करके आवश्यकतानुसार इनका प्रयोग करना चाहता है, जिसका आग्रह

अनुभूति की सच्चाई और अभिव्यक्तिगत ईमानदारी पर अधिक है ।[1]
प्रयोगशील नयी कविता को क्षुब्ध संकुल भाव और उसके अनुरूप काव्यसामग्री के वहन के लिए नये प्रयोग की आवश्यकता हुई । डा. नगेन्द्र के शब्दों में -" पुराने वार्णिक और मात्रिक छन्दों की स्थिरता नये जीवन की अस्थिरता को वहन नहीं कर सकती । इसलिए प्रयोगवादी कवि प्राय: मुक्तछन्द को ही ग्रहण करता है और वार्णिक मात्रिक छन्दों की भिन्न भिन्न संयोजनाओं के अतिरिक्त पदांश और स्वरपात आदि की भी व्यवस्था करता है, तुकों का वह अत्यन्त सूक्ष्म प्रयोग करता है, पूर्णान्त तुकों का प्राय: प्रयोग ही नहीं करता क्योंकि उसकी धारणा है कि पूर्णान्त तुक छन्द बंदों को अतिशय नादमय बनाकर विषय की गंभीरता के अनुरूप नहीं रहने देती " ।[2]

प्रयोगशील नयी कविता में छन्द विहीनता के साथ नये लय का भी आविष्कार है । जीवन की गति के साथ कविता का लय भी बदलता है । क्योंकि काव्य और जीवन का अटूट संबन्ध है अत: काव्य लय और जीवन लय अविच्छिन्न है ।--

चित्रकारों के
रंगों में बन स्वयं
फैल-फैल मैं गया हूँ कहाँ कहाँ
कविता
मैं हूँ अब, वह क्या कल
होगी कल - यह दुनिया
मेरे जीवन में - । शमशेर बहादुरसिंह ।

आज का युग बौद्धिकता और विज्ञान की प्रमुखता के कारण जटिल बन गया है । अत: युगजीवन गद्यात्मक बन गया है । इसलिए नयी कविता में पद्यलय के स्थान पर गद्य का लय है । एकाध लयगतियों को एक ही रचना में लाना संगीत में काउण्टर पाइट" है । श्री अज्ञेय तथा शमशेर की रचनाओं में इसका सफल प्रयोग है ।

---

1. नई कविता - 2 पृ.सं. 3। जगदीशगुप्त
2. आधुनिक साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - पृ.सं. 119 - डा. नामवरसिंह

संक्षेप में नयी कविता में नादलय के बदले अर्थलय की प्रधानता है ।

अप्रस्तुत विधान

नयी कविता में परम्परा स्वीकृत और प्रचलित अप्रस्तुतों का परित्याग किया है । नयी कविता में उसकी आंतरिक प्रकृति के अनुरूप नये अप्रस्तुतों को अपनाया है । ये अप्रस्तुत चारों ओर फैले जीवन से गृहीत हैं । नयी कविता में सर्वथा टटके और अप्रस्तुत उपमानों की तलाश हुई है । यह अप्रस्तुत विधान चौंकानेवाला भी बन जाता है । संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रयोगशील नयी कविता आधुनिक हिन्दी कविता की एक परिपुष्ट कड़ी है । यह सामाजिक परिवेश की कविता है जहाँ मानव व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा का संकल्प है । नयी कविता की शिल्पगत विशेषता उल्लेखनीय है ।

निराला काव्य में प्रयोगशील नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

अज्ञेय और उनके सहयोगियों के अन्वेषी दृष्टिकोण से हिन्दी में प्रयोगशील नयी कविता का विकास हुआ । लेकिन निरालाजी अपनी काव्य रचना में इससे पहले भी प्रयोगशील रहे । अज्ञेय के शब्दों में -"निराला बराबर ही अन्वेषक और आविष्कारक रहे, जब तक कि उनके दीर्घ और निरवधि एकाकीपन ने उनके व्यक्तित्व को विघटित करना आरंभ नहीं कर दिया ।"[1] प्रयोगशील नयी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - आधुनिक भावबोध, बौद्धिकता, बदलते सौन्दर्य बोध, यथार्थ के प्रति आग्रह, लघुमानव की प्रतिष्ठा, वैयक्तिकता और सामाजिकता का सामंजस्य सब निरालाजी की कविता में विद्यमान है । प्रयोगशील कविता का शिल्पपक्ष भी उनकी कविता में सुरक्षित है । निरालाजी के काव्य संकलन, कुकुरमुत्ता", "बेला" और नये पत्ते" की कवितायें इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । डा. रामरतनभटनागर के शब्दों में -" कुकुरमुत्ता "बेला" और "नये पत्ते" के प्रयोग प्रयोग ही नहीं है, वे एक नयी दिशा में आधुनिक हिन्दी काव्य की सार्थकता है ।"[2]

---

1. हंस नवम्बर 1944 - अज्ञेय ।
2. निराला नव मूल्यांकन पृ.सं. 111- डा. रामरतन भटनागर

आधुनिक भावबोध

आधुनिक भावबोध प्रयोगशील नयी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही । डा. इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में -" आधुनिकता की दृष्टि से हिन्दी कविता की शुरूआत अगर 'कुकुरमुत्ता' से की जाय तो आज यह असंगत नहीं जान पडता है ."[1] छायावादी बोध के अस्वीकार के कारण महादेवीवर्मा ने इसे "अपरा" में शामिल करने से इनकार किया । कुकुरमुत्ता एक लंबी कविता है । मदानजी के शब्दों में "इसलिए शायद इसे आधुनिकता का दस्तावेज घोषित किया जाने लगा है जो युग का मुहावरा भी है ."[2] कुकुरमुत्ता के दूसरे अंश की तान "मौलिकता" पर टूटती है, कविता का यह शाब्दिक अन्त इसके बाहर निकलकर खुल जाता है । यहाँ व्यर्थता और विसंगति का संकेत है । इस कविता की अगंभीरता में गंभीरता का पुट है । अकाव्यात्मक भाषा में छायावादी काव्यात्मक भाषा का विरोध है । इसमें साधारण और असाधारण का उपहास है । यहाँ आधुनिकताबोध उजागर होता है । डा. इन्द्रनाथ मदान के शब्दों में -" यह आवश्यक नहीं है कि यह उसी तरह हो जो इसके बाद की कविता में है । आधुनिकता की प्रक्रिया जो ज़ारी है, कभी मानव की बदलती स्थिति को लेकर है तो कभी इसकी अनिश्चित नियति को लेकर और दोनों को अलगाना भी संगत नहीं जान पडता । बात बल देने की है ."[3]

निरालाजी का काव्य और व्यक्तित्व दोनों आधुनिक चेतना से संपन्न है । डा. धनंजयवर्मा के शब्दों में -" संपूर्ण छायावादी काव्य में ही नहीं, आधुनिक काव्य के पूरे विस्तार में अपने अनुभव संसार की विविधता, रचनात्मक समृद्धि और प्रौढ काव्य व्यक्तित्व के लिहाज से जितना आधुनिक और प्रासंगिक निराला का है उतना किसी आधुनिक कवि का नहीं ."[4]

कुकुरमुत्ता के समान "रानी और कानी", "खजोहरा", "गर्मपकौडी" जैसी कविताओं का मिज़ाज और अन्दाज़ छायावादी भाव और शैली के विरुद्ध है ।

---

1. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य पृ.सं. 12- डा. इन्द्रनाथ मदान
2. वहाँ वही वही
3. वही पृ.सं. 15 वही
4. भाषा त्रैमासिक जून 1991 पृ.सं. 12

इसलिए डा. मदानजी के शब्दों में -" कुकुरमुत्ता को इन कविताओं का प्रतिनिधि मानकर उससे आधुनिकता की शुरुआत की जाय तो यह आज असंगत नहीं जान पड़ता"।[1]

बौद्धिक प्रौढता आधुनिकता का लक्षण है तो वह सर्जनात्मकता की संपूर्णता के साथ निराला काव्य में मौजूद है। उनका भाव गंभीर्य, उच्चतम औदात्य एवं प्रौढ निसंगता युगीन मानसिकता के साथ मेल कराता है। समकालीन भावबोध से युक्त ऐतिहासिक अनुभूति ने निरालाजी की कविता में विविधता प्रदान की है। डा. धनंजयवर्मा के अनुसार -" व्यक्तिगत जीवन संघर्ष और परिस्थितियों के अन्तर्विरोधों में भोगे हुए यथार्थ से पायी गयी प्रामाणिक अनुभूति को उन्होंने व्यापक युग सन्दर्भों में फैलाकर जिस ऐतिहासिक और रचनात्मक दृष्टि का परिचय दिया है, वही उनके काव्य संसार को प्रामाणिकता और ईमानदारी, प्रासंगिकता और परिप्रेक्ष्य की रचनात्मक पहचान से समृद्ध आधुनिकता प्रदान करती है।"[2] निरालाजी ने जीवन को निसंगता और संपूर्णता के साथ देखा। उनके काव्य का अपने युग की प्रामाणिक बन जाने का कारण कोई दूसरा नहीं। अपने तथा समाज के व्यक्तित्व को रचना में संश्लेषित करना आधुनिकता की सार्थक अभिव्यक्ति है। निरालाजी की कविता में आस्था अनास्था, सुख-दुख, हास्य करुणा का संघर्ष है। मनुष्य और उसके परिवेश का यह अन्तर्विरोध ही इस संघर्ष का कारण है। डा. रामविलास शर्मा के शब्दों में -" निरालाजी का मन साधारण शक्तिवाला औसत मन नहीं है, उसमें सृजनशीलता की अपार क्षमता और कष्ट सहने की अद्भुत् दृढता है। इस परिवेश से वे टकराते हैं; वह भी अपनी जगह से टस से मस न होनेवाला नहीं, विराट और व्यापक होने के साथ वह आक्रामक भी है।[3] "नये पत्ते" के अधिकांश पात्र महगू, लकुआ, बदलू सब परिस्थितियों से संघर्ष करनेवाले हैं। व्यक्ति-चेतना का यह तनाव बहुत तीखा है। महगू लकुवे से कहता है -

जैसे तू लकुआ है, वैसा ही होना है,

---

1. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य पृ.सं. 16 - डा. इन्द्रनाथ मदान
2. भाषा त्रैमासिक जून 1991 पृ.सं. 13
3. निराला की साहित्य साधना पृ.सं. 237

बड़े आदमी धन मान छोड़ेंगे
तभी देश मुक्त है,
कविजी ने पढा था, जब तुम बदले नहीं,
अपने मन में कहा मैं ने, मैं महगू हूँ ।
पैरों की धरती आकाश को भी चली जाय
मैं कभी न बदलूँगा, इतना महंगा हूँगा ।

सक्षेप में निरालाजी का काव्य संसार आधुनिक मनुष्य के अन्त-संघर्षों और अन्तर्विरोधों से भरा पडा है ।

बौद्धिकता

निरालाजी के काव्य की बौद्धिकता के सम्बन्ध में डा. नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा -" कविता में भावना की प्रमुखता हो चली पर निरालाजी की बौद्धिक प्रक्रिया भी उनके साथ साथ रही ।..... पतंजी की रचनाओं में इसी के अभाव की सबसे अधिक शिकायत रही है । यह बुद्धितत्व आधुनिक भावना विजडित कविता में निसंगता लानेमेंऔर कोरी भावुकता या कल्पनाप्रवणता को संगुंफित कला-सृष्टि का स्वरूप देने में समर्थ हुआ । इससे कला का बड़ा हित साधन हुआ । कविता के कला-पक्ष की उपेक्षा सीमा पार कर रही थी और कोरे भावनात्मक उद्गार काव्य के नाम पर खप रहे थे । निरालाजी ने इस विषय में नया दिग्दर्शन कराया। भावुकता प्रधान छायावादी काव्य में बौद्धिकता के कारण निरालाजी के काव्य का आरंभ से ही एक अलग अस्तित्व था और भावुकता के युग में इसी कारण उनकी कविता को दुरूह मानते थे । निरालाजी की कविता आदि से अन्त तक बौद्धिकता प्रधान रही । इस बौद्धिकता के आधार पर निरालाजी ने जीवन के सत्य की अभिव्यक्ति की है, जिसमें वे हमेशा इमानदार रहे हैं। समय और समाज की स्वीकृति से निरालाजी की रचनाशीलता को नया आयाम मिल गया और वह सामाजिक यथार्थ से जुड गया । इस सामाजिक यथार्थ से जुडने की प्रवृत्ति के कई स्तर हैं, जिनमें एक है व्यंग्य जिसका आधार उनकी बौद्धिकता है । "कुकुरमुत्ता" में

---

1. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी पृ.सं. 138-139 आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ।

यथार्थ की संपूर्ण स्वीकृति हुई। इसी के संबन्ध में निरालाजी ने लिखा-" इसके व्यंग्य और इसकी भाषा आधुनिक है"।[1] एक छोटी कहानी के छोटे टुकडे और दो चार पात्रों के माध्यम से यहाँ निरालाजी अपनी बात कह डालते हैं। कविता के अंत में नवाब गुलाब की जगह कुकुरमुत्ता लगाना चाहते हैं तो माली करता है - "मआफ़ खता ! कुकुरमुत्ता अब उगाया नहीं उगता"। उसी प्रकार "अनामिका" जो महाकवि की बदलती मनोदशा की सूचना देनेवाली कृति है उसमें अपनी वैयक्तिक संघर्ष गाथा के साथ कवि समाज की मूल्यहीनता की ओर संकेत करते हैं" जहाँ एक सच्चे रचनाकार का जीवन दूभर हो जाता है। डा. रवीन्द्रभ्रमर के शब्दों में -" यह लडाई मूल्यों की है और निराला ने तथाकथित बुद्धिजीवियों की तरह उसकी चर्चा भर से संतोष नहीं कर लिया है , उसमें शिरकत की है, वे उस संपूर्ण यातनासे गुजरे हैं"।[2] उसीप्रकार "राम की शक्तिपूजा" में राम-रावण के संघर्ष से निराला अपने समय की असमान लडाई की ओर संकेत करते हैं - " अन्याय जिधर है उधर शक्ति ।" अपने समय की मूल्यहीनता की ओर संकेत करनेवाला कवि पराजय स्वीकार नहीं करता -

वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय ।

"कुकुरमुत्ता" के हास्य व्यंग्य के पीछे निरालाजी की बौद्धिकता और वैदग्ध्य काम करती है । "नये पत्ते" की कविताओं में निरालाजी अपनी संवेदना और वैचारिक दृष्टि से ग्रामजीवन की वस्तुपरक अभिव्यक्ति की है। "थोडों के पेटों में बहुतों को आना पडा", "तारे गिनते रहे", "दगा की" जैसी कवितायें उनकी बौद्धिकता प्रधान दृष्टिकोण का परिचायक है। "अर्चना", 'आराधना' के कई गीत कवि की बौद्धिकता की ओर संकेत करती है ।

संक्षेप में प्रयोगशील नयी कविता की जो बौद्धिकता है वह निरालाजी की कविताओं में छायावादी युग में ही विद्यमान थी, जिसका विकास उनकी परवर्ती रचनाओं में हुआ ।

---

1. कुकुरमुत्ता - आवेदन ।
2. नयी कविता की भूमिका - पृ.सं. 19

नया सौन्दर्यबोध

प्रयोगशील नयी कविता का जो नया सौन्दर्यबोध है उसके प्रवर्तक निरालाजी हैं। उन्होंने जुही की कली के स्थान पर "कुकुरमुत्ता" को प्रतिष्ठा करके स्व से विस्व की ओर प्रयाण किया। निराला ने छायावादी युग में जुही की कली जैसी मुग्धा नायिका के स्थान पर पत्थर तोडनेवाली मज़दुरानी, भिक्षुक, विधवा आदि. का चित्रण करके स्वयं बनायी अपनी सौन्दर्य संकल्पना पर प्रहार किया। कुकुरमुत्ता को अधिक जीवन्त, उपयोगी घोषित करके सौन्दर्य को उसकी संपूर्णता के साथ स्वीकार करने में वे सफल हुए हैं। श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में -" नयी कविता का सौन्दर्यबोध, सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में जो कीचड या कोई है उसके प्रति मुँह बिचकाकर पलायन नहीं करता।" नयी कविता के इस नये सौन्दर्यबोध का उत्तम उदाहरण है निरालाजी की कविता "रानी और कानी"। चेचक दाग से भरी, कानी नाक चिपटी और कानी है रानी। लेकिन वह घर बुहारती है, करवट फेंकती है, घडों पानी भरती है। पडोस की स्त्री का वचन सुनकर -

काँपे कुल अङ्ग
दायीं आँख से
आँसू भी वह चले माँ के दुख से
लेकिन वह बायीं आँख कानी
ज्यों की त्यों रह गयी रखती निगरानी।

इस कविता में रूपपूजा पर बल देनेवाले सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य है। यहाँ निरालाजी के सौन्दर्य बोध में भावों की गंभीरता है, मानवीय संवेदना है। सन् 1939 में लिखी इस कविता में निरालाजी ने कुरूपता को काव्य विषय बनाने का साहस दिखाया। मानवीय संवेदना से युक्त यथार्थवादी दृष्टिकोण ने इस कविता को जीवन्त बनाया है।

---

1. नयी कविता के प्रतिमान पृ.सं. - श्री लक्ष्मीकान्तवर्मा

कवीन्द्र रवीन्द्र की "विजयिनी" नामक श्रृंगारिक ख्यानी सकल्पना को कविता पर व्यंग्य करते हुए निरालाजी ने "खजोहरा" लिखी, महिषादल को जीवन स्मृतियाँ इसमें काम आये। कवीन्द्र के श्रृंगारस्वप्न पर व्यंग्य करते हुए "विजयिनी" के कामदेव का स्थान यहाँ "खजोहरा" ने ले लिया -

छमा मांगने को मदन जसा बैठा
डाल पर बडा सा खजोहरा था,
रोयाँ हर एक उसका तीर फूल का था
सुन्दरी को ओर को तना हुआ ।

यहाँ कवि विजयिनी पर स्वयं हंस रहे हैं, साथ ही अपने यौवन के रंगीन स्वप्नों को भी व्यंग्य की दृष्टि से देखते हैं। यह यथार्थवादी कविता भद्देपन चित्रण के लिए भी प्रसिद्ध है ।

निरालाजी के सौन्दर्यबोध में यथार्थवाद का विकास है तो यथार्थवाद की विकृति उनके प्रेम निवेदन में विद्यमान हैं । प्रेमव्यंजना की इस नयी शैली के प्रवर्तक भी निरालाजी हैं। "प्रेमसंगीत" का नायक ब्राह्मण का लडका है, अपने घर की "पनहारिन" जो जाति के "कहारिन" है, से प्यार करता है । मटकी लेकर आनेवाली कहारिन भी काली है कोयल की तरह । नाक चिपटी कानी रानी के समान इस कहारिन की भी शादी नहीं हुई हैं ।

यथार्थ के प्रति आग्रह

निरालाजी की कविताओं में सामान्य की प्रतिष्ठा, मानववाद और तीखे व्यंग्य की जो लालसा है, इसका आधार उनका यथार्थ है । यथार्थ की काव्यात्मक परिणिति उनके छायावादी संस्कार से भिन्न रचनाओं में देखी जा सकती है । अपराध किये बिना "बन्दी गृह" वरन् करके ही जनता का हृदय जीत सकता हैं । ऐसा कवि ही सामान्य का दुख समझ सकता है ।

लघुमानव और उसके परिवेश के प्रति जो निष्ठा प्रयोगशील नयी कविता में है, वह निरालाजी की कविताओं में प्रयोगशील कविताकाल पहले ही प्रकट हुई थी। नये कवि उस मानव के प्रति आस्था रखते हैं जो शायद लघु हो, अपने प्रति जागरूक हो। "कुकुरमुत्ता" तो उसके विषयगत चुनाव, उसकी भाषिक संरचना में, उसके शब्द प्रयोग में, उसके व्यंग्य विनोद और हलके - फुल्केपन में और उसमें अप्रतिष्ठित साधारण की सार्थकत में" काव्य आभिजात्य' के प्रति मुक्ति का प्रयास है। "कुकुरमुत्ता" में अपनी लघुता के प्रति ग्लानि नहीं। इस कविता में "कुकुरमुत्ता" और कवि को छोटा होने और नीचा दिखानेवालों को कवि छोटे होने का एहसास कराते हैं। इसलिए नाम से ही हास्यास्पद लगनेवाले "कुकुरमुत्ता" को उन्होंने अपना हथियार बनाया, उसे ब्रह्म के समान महत्वपूर्ण स्थापित किया। स्वयं सभ्य, शालीन और सुसंस्कृत माननेवालों को "कुकुरमुत्ता" ने ओच्छा स्थापित किया -

देख मुझको, मैं बढा
डेढ बालित और उँचे पर चढा
और अपने से उगा मैं
बिना दाने के चुगा मैं
तू है नकली मैं हुँ मौलिक
तू है बकरा, मैं हुँ कौलिक
पानी मैं तू बुलबुला
तू ने दुनिया को बिगाडा
मैं ने गिरने से उभाडा।

डा. लक्ष्मीकान्तवर्मा के अनुसार-"कुकुरमुत्ता" में वे सभी तत्व मिलते हैं, जो आधुनिक काल की भाव व्यंजना को स्वीकार करते हुए उन समस्त, सामाजिक, आर्थिक और नैसर्गिक मान्यताओं को अंगीकार करते हैं, जिनमें वस्तु का नयापन, शिल्प का प्रयोग और सर्वथा नयी परम्परा का सूत्रपात मिलता है।[2]

"गर्म पकौडी" और "खजोहरा" को भी काव्य का विषय बनाने का

---

1. कुकुरमुत्ता भूमिका - पृ.सं. 34 डा. दूधनाथसिंह
2. नयी कविता के प्रतिमान पृ.सं. 25 - श्री लक्ष्मीकान्तवर्मा

सामान्य के प्रति कवि की उत्कट लालसा है । ब्राह्मण की पकायी कचौडी के ऊपर "गरम पकौडी " की प्रतिष्ठा करके उन्होंने विषयगत आभिजात्य के साथ धार्मिक, आभिजात्य पर भी प्रहार किया -

तेल की भुनी
नमक मिर्च की डाली
ऐ गर्म पकौडी
जीभ जल गयी
सिसकियाँ निकल रही
अरी तेरे लिए छोडी
ब्राह्मण की पकायी
मैं ने घी की कचौडी

निरालाजी की काव्य प्रतिभा के छूने से "गर्म पकौडी" ने विषयगत प्रयोगशीलता के नये आयाम का उद्घाटन किया । "कुकुरमुत्ता", "कुत्ता भौंकने लगा, "खजोहरा" "गर्म पकौडी" जैसी कविताओं में लघु और नगण्यों के आत्म बोध की अभिव्यक्ति हुई है "नये पत्ते " की कविताएँ ही नहीं, "अर्चना", "आराधना" के भक्तिपरक गीतों के रचनाकाल में भी कवि ने सामान्य के प्रति निष्ठा रखी । "आराधना" में संकलित सन् 1952 दिसंबर में लिखित कविता -

खेत जोतकर घर आये हैं।
बैलों के कंधों पर भावी
भावों पर उल्टा हल रक्खा
बढ़ी हाट, अधेड पिताजी,
माताजी, सिर गट्ठल पक्का
पिता गये गाँव के गोंडे
माता घर लडके धाये है,
आम और जामुन के फल है ।

कुछ गुलहड, कुछ गुल्लू कच्चे
लडके चुनते हुए विकल हैं ।
पेड पेड पर वे हैं सच्चे
पूए लगाकर बडी बहू ने
मन्नो से पर पकवाये हैं ।

यहाँ विषयवस्तु, शब्द और अभिव्यक्ति में कवि ने अकाव्योचित को प्रतिष्ठा दी है यहाँ का अधेड पिताजो मेहनतकश किसान का प्रतिनिधि है.और जीवन के कठोर यथार्थ के साक्षात्कार का आग्रह भी इस कविता में है । नयी कविता का जो सत्य है, वह महान न होते हुए भी महनीय है। इस महनीय सत्य की खोज निरालाजी ने अपनी कविता में बहुत पहले की थी ।

मानवतावाद नयी कविता की एक प्रमुख प्रवृत्ति है । धर्मवीर भारती के शब्दों में -" साधारण, छोटे महत्वहीन, नगण्य मनुष्य की मुक्ति, उसकी निहित संभावनाओं का विकास, उसकी चेतना पर जकडी हुई राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक मनोवैज्ञानिक जंजीरों को खोलकर, उसे विवेक अपनी जीवन पद्धति से व्यापक सत्य की निजी उपलब्धि करने का अवसर देना, उसके यथार्थ के सारे जटिलतम ताने-बाने को ठीक ठीक समझना और किसी काल्पनिक भविष्य में नहीं, वरन् इसी कटुतम वर्तमान में सामान्य मानव की नियति को संस्कार दे सकने की क्षमता, यही नये साहित्य की मानववादी वृत्ति है ।[1]"

ये लक्षण निरालाजी के संपूर्ण काव्य में व्याप्त है । अपनी काव्ययात्रा के प्रारंभकाल में ही उन्होंने भिक्षुक विधवा, दीन जैसे पात्रों का हिन्दी काव्य संसार में स्वागत किया । " नये पत्ते" की कविताओं में इस मानववाद का नया विकास हुआ - 'राजे ने रखवाली की;' 'डिप्टी साहब आये,' 'महगूमहंगा रहा,' जैसी कविताओं में व्यंग्य के सहारे कवि ने अपनी मानवादी वृत्ति को चरमसीमा पर पहँचाया है । उनकी मानवता, धार्मिक रूढियों से एकदम मुक्त थी। उन्होंने मानवता के विरोधियों पर खुलकर प्रहार किया । इसकेलिए कहीं व्यंग्य और हास्य का सहारा किया ।

---

1. ठेले पर हिमालय - पृ.सं. 99 - धर्मवीर भारती

'कुत्ता भौंकने लगा ' में खेतिहर का कुत्ता जमीन्दार के विरुद्ध आवाज़ उठाता है -

ज़मीन्दार के सिपाही लट्ठ कन्धे पर डाले
आये और लोगों की ओर देखकर कहा,
"डेरे पर थानेदार आये है ।
डिप्टी साहब ने चंदा लगाया है,
एक हफ्ते के अन्दर देना है
चलो बात दे आओ "
कौडे से कुछ हटकर
लोगों के साथ कुत्ता खेतिहर बैठा था
चलते सिपाही को देखकर खडा हुआ
और भौंकने लगा
करुणा के बन्धु खेतिहर को देख देखकर।

'कुत्ता भौंकने लगा' में विपन्न तिरस्कृत मानवता की आवाज़ है ।

प्रयोगशील नयी कविता में व्यंग्य की जो प्रवृत्ति है, वह निरालाजी के काव्य में विद्यमान है । डा. धनंजयवर्मा के शब्दों में -"जो जीवन के आरंभ से ही संघर्ष में पलते हैं और समाज का अधिक निकटता से अवलोकन करते हैं, उसके वैषम्य से परिचित होते हैं, वे ही सफल व्यंग्यकार हो सकते हैं।[1]" निरालाजी के संबन्ध में कह कथन अक्षरश: सत्य है । व्यंग्य की वह प्रवृत्ति उनकी छायावादी युगीन कविताओं में शुरू हुई थी "दान" शीर्षक कविता में धार्मिक पाखण्डता पर व्यंग्य है, 'सरोज स्मृति' और 'वनबेला" की व्यंग्य प्रवृत्ति का विकास 'कुकुरमुत्ता' में दिखाई देता है । कुकुरमुत्ता के साथ कवि तादात्म्य स्थापित करते हैं और दूसरों पर परिहास करते हैं । "कुकुरमुत्ता " के परोक्ष व्यंग्य उसके बडपन की भावना पर है । सबको नीचा दिखाकर स्वयं बडा बन जाने का उसका प्रयत्न हास्यास्पद है । "यह है बाज़ार" शीर्षक कविता में सुखिया के फरमाईशों को पूरा करने के लिए, न चाहने पर भी दुखिया बाज़ार जाता है और स्वयं सुखिया के चक्कर में पडकर अपना नाम सार्थक बनाता है । दुखिया पर निरालाजी अपना व्यंग्य बाण छोडता है और उसके प्रति सहानुभूति भी प्रकट करता है ।

---

1. निराला काव्य पुनर्मूल्यांकन - पृ.सं. 176 डा. धनंजयवर्मा

"चूंकि यहाँ दाना है" शीर्षक कविता में कवि बताते हैं कि दुनिया का मानवीय संबन्ध अर्थ- की डोरी से बन्धा है -

चूंकि यहाँ दाना है
इसीलिए दीन है दीवाना है
लोग है महफिल है
अम्मा है, बच्चा है,
झापड है और गोल गप्पा है,
नौजवान मामा है और बूढा नाना है,
चूंकि यहाँ दाना है ।

यहाँ मनुष्य की विवशता का चित्रण प्रस्तुत करते हैं और उस सामाजिक नीति पर परोक्ष व्यंग्य करते हैं । "नये पत्ते" की कई रचनाओं में किसान, मज़दूर और निम्न वर्ग की विवशता एवं संघर्ष के यथार्थ चित्रण के साथ कवि जमीन्दार, मिलमालिकों की शोषण नीति पर व्यंग्य करते हैं ।

वैयक्तिकता और सामाजिकता का सामंजस्य

निरालाजी ने अपने जीवन सत्य को अभिव्यक्ति अपने काव्य में ईमानदारी के साथ की है । उनकी वैयक्तिक और सामाजिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में कोई अन्तर नहीं है । श्री लक्ष्मीकान्तवर्मा ने लिखा है - "नयी कविता सामूहिक चेतना और वैयक्तिक चेतना में कोई अन्तर नहीं मानती । इसीलिए उनका सन्दर्भ वह ऐतिहासिक व्यक्ति है जिसमें मानव आत्मा बाह्य आडंबर और पराजय के बीच अपनी आस्था को जीवित रखने में प्रयत्नशील है"।[1] वैयक्तिक अनुभूतियों और वैयक्तिक प्रसंगों को निरन्तर सामाजिक सन्दर्भों से जोडने की निरालाजी की क्षमता निराली है । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है -"सन् 1928 में निराला कलकत्ता से अपने गांव गढाकोला आये । यहाँ उनका संघर्ष स्थानीय जमीन्दारों से हुआ । स्वयं निराला का बगीचा और ज़मीन बेदखलकर ली गयी और गाँववालों पर अत्याचार किया जा रहा था"।[2] निरालाजी के वैयक्तिक जीवन

---

1. नयी कविता मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि - श्री लक्ष्मीकान्तवर्मा
2. कवि निराला पृ.सं. 195-96 आ. नन्ददुलारे वाजपेयी

प्रसंग समाज के साधारण मनुष्य की समस्याओं से मिलने जुलने वाली थी । अत: उनकी कविता में वैयक्तिकता और सामाजिकता का सामंजस्य आ गया है । "सरोज स्मृति" मे आत्मालाप के साथ उन्होंने साहित्य कर्म के पराजय, पत्नी की मृत्यु और अन्य पारिवारिक दृश्यों का अंकन किया है।कवि उस सामाजिक व्यवस्था पर प्रहारकरते हैं जिसमें सरोज को बलि हो जाना पडा । डा. प्रेमशंकर के शब्दों में- "वास्तविकता यह है कि बदलते सामाजिक, आर्थिक संबन्ध रचना को इस प्रकार की शक्ल देते हैं कि उसके निजी विषाद को सामाजिक सन्दर्भ में देखा - परखा जा सके और जागरूक चेतना से संपन्न कवि ही ऐसा कर सकने में समर्थ होते हैं । द्वितीय अनामिका । 1937। तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, बेला, नयेपत्ते निराला की कविता का वह चरण है जो अपने समय की जमीन पर स्थित है और जिसे नये काव्य की भूमिका के रूप में देखना चाहिए"[1] ।

शिल्प पक्ष

प्रयोगशील कविता की सी प्रयोगशीलता हिन्दी कवियों में सबसे पहले निरालाजी की कविताओं में दिखाई दी । प्रयोगशील नयी कविता का जो शिल्प है, वह वर्षों पहले महाकवि की रचनाओं में जाग रहा था । डा. रमेशचन्द्र शाह के शब्दों में - "उट-पटांग, शिल्पहीन और शिल्पद्रोही शिल्प, जिसमें छायावाद के आगे की कविता करवट लेती दिखाई देती है"[2]। कविता में विशिष्ट भावप्रसंग की तन्मयता नयी कविता के शिल्पपक्ष की विशेषता है । इस दृष्टि से हम निराला की "कुकुरमुत्ता", "बेला" और "नये पत्ते" की कविताओं के शिल्प पक्ष का मूल्यांकन कर सकते हैं ।

भाषा

भाषा के प्रति उत्सुकता और जिज्ञासा ही कवि को कवि बनाता है । निरालाजी की महान रचनाओं में ही नहीं, सभी कोटि की कविताओं में उनका "वचन वयन" सबको चकित करनेवाला है ।भाषा की मुक्ति एवं भाषा के प्रति समर्पण इस प्रकार किसी अन्य कवि में नहीं । निरालाजी भाषा की खेती करनेवाले किसान हैं । उनके भाव के जड सब कहीं गड जाती हैं । भावों और विचारों के समान निरालाजी का

---

1. नयी कविता की भूमिका पृ.सं. 16 डा. प्रेमशंकर ।
2. छायावाद की प्रासंगिकता पृ.सं. 70 डा. रमेशचन्द्रशाह ।

आवेग महज भाषा के साथ भी घनिष्ठ है । डा. रमेशचन्द्र शाह ने लिखा है - "निराला का आवेग जितना उनके भावों और विचारों के साथ घनिष्ठ है उतना ही भाषा - महज भाषा के साथ भी, इस निष्पाप खिलवाड को, इस तोड-फोड को आप उतनी ही निष्पाप आँखों से देखिए, तमाम पूर्वग्रहों के परे झटककर- शब्दों के वैचित्र्य से, तुकों की अन्धा धुन्धी से बिना बिदके - तो आपका अंतरंग दृश्य, वह अंतरंग दिखलाई दे जाएगा - जो आत्मा का यथार्थ है और जिसे खोलने में प्रयोगवादियों का शिल्प कौशल भी काम नहीं दे सका "[1]।

निरालाजी जब काव्य रचना में प्रवृत्त हुए तब खडीबोली काव्य का शैशवकाल था । छायावादी युग में ही निरालाजी की काव्यभाषा में भिन्नताएँ प्रकट है, इसी काल में प्रयोग विविधता की ओर उनका ध्यान गया था । वे भाषा के विस्तार और एकत्रीकरण पर ध्यान देते हैं । डा. नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में- "निरालाजी के सौन्दर्यांकन में स्वच्छन्दता और प्रयोग बाहुल्य चरम सीमा पर है । यही कारण है कि कोई एक भाषा प्रतिमान उनके लिए पर्याप्त नहीं । उन्हें विविध भाषा प्रतिमानों की आवश्यकता की ।.....विषयानुरूप भाषा निर्माण में निराला की शक्ति अप्रतिम ही कही जाएगी ।[2]"

कुकुरमुत्ता प्रथम संस्करण की आठ कविताएँ निरालाजी के नवीन शब्द प्रयोग, गद्यात्मक कवित्त और अजीब भाषा संगठन द्वारा काव्य सृष्टि के नये आयाम को उद्घाटित करनेवाली हैं । "कुकुरमुत्ता" में निरालाजी की भाषिक संवेदना ने एक छलांग लगाकर बहुत आगे आ गयी है -

बाग के बाहर पडे थे झोंपडे
दूर से जो दिख रहे थे अध गडे
जगह गन्दी, रूखा, सडता हुआ पानी
मोरियों में जिन्दगी की लन्तरानी -
बिलबिलाते कीडे, बिखरी हड्डियाँ

---

1. छायावाद की प्रासंगिकता पृ.सं. 69 डा. रमेशचन्द्रशाह
2. कवि निराला पृ.सं. 92 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ।

सेलरों को, परों को थीं गड्डियाँ
कहीं मुर्गी, कहीं अण्डे
धूप खाते हुए कण्डे ।

"कुकुरमुत्ता" की भाषिक संरचना में प्रचलित शब्दावली का वर्जन है । इसके अधिकांश शब्द देशज, अकाव्यात्मक, पुराने काव्यशास्त्र के अनुसार वर्जित और भददेस हैं । यहाँ तत्सम और तद्भव शब्द नहीं के बराबर हैं । हिन्दी और उर्दू के आसान शब्दों से बनी "कुकुरमुत्ता" की भाषा प्रवाहपूर्ण है । हास्य विनोद की भावाभिव्यंजना के लिए निरालाजी इस मिश्रित भाषा को अपनाते हैं । डा. दूधनाथ सिंह के शब्दों में-" कुकुरमुत्ता अपनी भाषिक संरचना के लिहाज से सर्वथा एक नयी भाषा और नये शब्द कोश का निर्माण करता है" । [1]

भाषा के संबन्ध में निरालाजी ने अपनी धारणा व्यक्त की है -" भाषा बहु भावात्मिका रचना की इच्छामात्र से बदलनेवाली देह है, इसलिए रचना और भाषा के अगणित रूप भिन्न भिन्न साहित्यकों की विशेषताएँ जाहिर करते हुए दीख पड़ते हैं । रचना युद्ध कौशल है और भाषा तदनुरूप अस्त्र" [2] । निरालाजी इस भाषा अस्त्र के सही प्रयोक्ता हैं ।

"कुकुरमुत्ता" में निरालाजी ने जिस" आम आदमी की काव्यभाषा या "सहज भाषा " की शुरूआत की, उसका विकास"बेला" और "नयेपत्ते " में हुआ । "बेला की"कविताओं में संस्कृत-उर्दू-हिन्दी फारसी शब्द का मिश्रण है । "बेला" के कुछ गजलों में संस्कृत शब्दावली और कुछ गीतों में हिन्दी उर्दू मिश्रित पदावली है-

आरे, गंगा के किनारे
झाउ के वन से पगडंडी पकडे हुए
रेती की खेती को छोड कर, फूस की कुटी,
बाबा बैठे झोर-बहोर

---

1. कुकुरमुत्ता भूमिका - पृ.सं. 32-33 - दूधनाथसिंह
2. प्रबन्ध प्रतिमा पृ.सं. 86

उर्दू मिश्रित गजलों में उनको अधिक सफलता मिली है । उर्दू फारसी के शब्दों से युक्त गजलें काव्य-कौशल की दृष्टि से अत्यन्त सफल हैं ।

"नये पत्ते" की कविताओं में निरालाजी की बोलचाल की भाषा की शक्ति द्रष्टव्य है । इसके व्यंग्य और हास्यप्रधान रचनाओं में भाषा लोकभूमि पर पहुँच गयी है । यहाँ लोकोक्ति मुहावरे और व्यंग्यचित्र प्रभावात्मक हो जाते हैं—

राजे ने रखवाली की,
किला बनाकर रहा
बड़ी बड़ी फौजें रखी,
चापलूस कितने सामन्त आये,
मतलब की लकड़ी पकड़े हुए ।
कितने ब्रह्मण आये
पोथियों में जनता को बांधे-हुए

यहाँ जनता को उल्लू बनानेवाले राजा और राजा की चापलूसी करनेवाले सामन्तो उच्चवर्ग का व्यंयात्मक चित्रण है जो निरालाजी के भाषा प्रयोग की शक्ति का उदाहरण है ।

डा. नन्ददुलारे वाजपेयी के शब्दों में " निराला ने अपने व्यंग्यात्मक प्रयोग में मुहावरेदार सरल लोकभाषा का प्रयोग किया है, परन्तु बोलचाल की यह भाषा एकदम ग्रामीण नहीं है"[1]। यहाँ ग्रामीण भाषा का परिष्कार है । अतः उनकी व्यंग्यात्मक कविताओं में स्तरोचता युक्तलोकभाषा का सफल प्रयोग है। निरालाजी की परवर्ती रचनाओं में ठेठ हिन्दी के अनेक प्रयोग हैं । ये प्रयोग उनके प्रौढ और अधिकृत भाषा प्रयोग के दृष्टान्त हैं । ऐसी भाषा का प्रयोग "अर्चना," आराधना" के गीतों में है, साथ ही हास्य विनोद ढंग की कविताओं में भी। यहाँ उनकी पंक्तियों में मुहावरे हैं, कहीं पंक्तियाँ स्वयं मुहावरे बन जाते हैं-

---

1. कवि निराला पृ.सं. 95 - 96

उदा

ऊँट बैल का साथ हुआ है
कुत्ता पकडे हुए जुआ है
यह संसार से भी बदला है
फिर भी नीर वही गदला है   । आराधना ।
× × × ×
मानव जहाँ बैल घोडा है
कैसा तन मन का जोड़ा है ।

यहाँ ऊँट-बैल, और बैल-घोडा का मुहावरा निरालाजी की मौलिक संपत्ति है ।

संक्षेप में निरालाजी की "कुकुरमुत्ता" "बेला", "नये पत्ते" जैसी रचनायें भाषा की प्रयोगशीलता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इनमें जनभाषा का सशक्त, साहसपूर्ण प्राणवान प्रयोग है । कुकुरमुत्ता में उन्होंने पहले काव्यक्षेत्र में वर्जित "ठेठ" गंवारन शब्दों का प्रयोग करके भाषा की चुनौती को स्वीकार किया और इस भाषा प्रयोग का विकास उनकी परवर्ती कविताओं में हुआ ।

बिम्ब

बिम्ब, कविता में अर्थ संप्रेषण का वाहक है, सामान्य जनभाषा में बिम्ब की अमोघ क्षमता है । निरालाजी की परवर्ती कविताओं की भाषा जनभाषा के निकट है । निरालाजी की कुकुरमुत्ता में सामान्य बिम्ब अधिक है -

बाग में आई बहार
लम्बे की लंबी कतार
देखती बढती गई
फूल पर अडती गई
मौलसिरि की छाँह में ।

"आराधना" के गीत

मानव यहाँ बैल घोड़ा है,
कैसा तन मन का जोड़ा है,

जैसी पंक्तियों में सांकेतिक बिम्ब योजना हुई है ।

निरालाजी की परवर्ती गीतों में समानान्तर बिम्बयोजना भी हुई है -

दीप जलता रहा
हवा चलती रही
नीर पलता रहा
बर्फ गलती रही - अर्चना पृ.35

यहाँ जलता दीपक, चलती हवा, गलती बर्फ, पलता जल समानान्तर बिम्ब हैं ।

"कुकुरमुत्ता" की अनेक पंक्तियाँ गतिमय क्रम बिम्ब के उदाहरण है -

देख फिर कुछ उड रही थीं तितलियाँ
डालों पर कितनी चहकती थीं चिडियाँ
भौरे गूंजते, हुए मतवाले से
उड गया, इक मकडी के फंसकर बडे से जाले से ।

वाह्य बिम्ब के अनेक उदाहरण उनकी "बेला" में संकलित कविताओं में है -

आरे, गंगा के किनारे
झाऊ के वन से पगडंडी हुए
रेती की खेती को छोडकर, फूस की कुटी,
बाबा बैठे आरे - बहोर । बेला पृ.सं. 109 ।

ऐन्द्रिय बिम्ब का दूसरा उदाहरण -

पुरवा हवा की नमी बढी
जुही के जहाँ की लडी कढी,
सविता ने क्या कविता पढी
बदला है बादल से सिरा - ।बेला पृ.सं 89 ।

यहाँ पहले दो पंक्तियों में स्पर्श बिम्ब है, अंतिम दो पंक्तियाँ चाक्षुष बिम्ब के उदाहरण है । संक्षेप में निरालाजी की प्रयोगशील कविताओं का बिम्बविधान अनूठा है ।

प्रतीक

निरालाजी की काव्य प्रतिभा विराट है, अत: उनके प्रतीक भी सामाजिक सन्दर्भों में ही प्रयुक्त हुए हैं । उनके प्रतीक अधिक गहरे हैं ।

उदा: अभी तक दृग बन्द थे थे,
खुले उर के छन्द थे थे,
सजल होकर बन्द थे थे,
राम अहि रावण हुआ है - ।

यहाँ "राम" और "अहिरावण" पौराणिक प्रतीक है । इसकी गहरी अर्थवक्रता है । यह प्रतीक के क्षेत्र में निरालाजी की प्रयोगवक्रता का प्रमाण है । निरालाजी के काव्य की अप्रस्तुत योजना ने उनकी प्रतीकात्मकता को अर्थगौरव प्रदान किया । इस योजना में रूपक, मिथक और प्रतीक आते हैं । इनमें प्रतीकों का स्थान बहुत आगे है ।

"राम की शक्तिपूजा" में मिथकीय परिवेश में आधुनिक मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व का अंकन है । यहाँ राम मिथकीय पात्र हैं । मिथकीय कला और पात्रों को आधुनिकता के सन्दर्भ में जोडने की इस दिशा की शुरूआत निरालाजी ने की थी ।

निरालाजी की अन्योक्तियों में सामान्य प्रतीक अनायास ही उभर आते हैं -

छिप जाती है छवि बिजली में,
सरसर से दबती है ही में,
बूँदों को छन छन से उन्मन,
प्राण न मेरे हरसे - गीतगुंज- पृ. 72

बादल से सम्बन्धित निरालाजी की अन्योक्ति की प्रतीकता प्रसिद्ध है ।
निरालाजी की परवर्ती कविता में आकृतिमूलक प्रतीक का उदाहरण देखिए -

पशुओं से संकुल सन्तुल जग
अहंकार के बाँध-बंधा मग
नहीं डाल भी -जो बैठे खग
ऐसे तल निस्तार करो है - अर्चना पृ. 23

यहाँ मग डाल., और खग प्रतीक हैं ।
स्वभावात्मक प्रतीकों का प्रयोग उनकी परवर्ती कविता में द्रष्टव्य है -

शाप-शयन सो सोकर
हुए शीर्ण खो खोकर
अनवलाप से रो कर,
हुए चपल छल कर ठग । अर्चना पृ. 30।

यहाँ "ठग" स्वभावात्मक प्रतीक है ।

यह प्रसिद्ध है कि निरालाजी की प्रयोग कालीन कविता "कुकुरमुत्ता" संस्कृति हीन समाज का प्रतीक है । तद्भव शब्दावली पर आधारित बेला का प्रतीक प्रयोग भी प्रसिद्ध है । आचार्य वाजपेयी के शब्दों में निराला काव्य में - "प्रतीक काव्य के अनुचर है, नियन्ता नहीं । शब्द अपने मूल अर्थ को बिना छोडे प्रतीकात्मकता की ओर उन्मुख हुए हैं । "[1]

---

1. कवि निराला पृ.सं. 132 आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ।

संक्षेप में निरालाजी का प्रतीक विधान सफल और सबल है ।

छन्द

मुक्तछन्द तो निरालाजी का पहला शिल्पगत प्रयोग है । "कुकुरमुत्ता" में निरालाजी का मुक्तछन्द विवेक प्रसिद्ध है । कवि मुक्तछन्द से छन्दोबद्धता में और छन्दोबद्धता से मुक्तछन्द में बार बार कदम लगाते रहते थेइससे मिले आत्म विश्वास ही "कुकुरमुत्ता" के पीछे है । निरालाजी के "नये पत्ते" की कविताओं के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण तथ्य है - "एक विशेष और विलक्षण अर्थ में भाषानुभूति की और छन्दानुभूति की कविताएँ है ।[1] "नये पत्ते" की अधिकांश कविताएँ मुक्तछन्द की हैं । इस मुक्तछन्द को बाद में प्रयोगशील नये कवियों ने अपनाया । काव्यभाषा की सांगीतिक संभावनाओं की खोज करनेवाला संकलन है "बेला" । इसके द्वारा निरालाजी ने उर्दू फारसी गजल परम्परा को हिन्दी में स्थान देने का स्तुत्य प्रयास किया है । उसके अधिकांश गीत भाषा की विविध भंगिमा और छन्दों के नवीनतम प्रयोग से आकर्षक हैं ।

संक्षेप में छन्द की दृष्टि से निरालाजी की प्रयोगकालीन रचनाएँ अत्यन्त सफल हैं ।

प्रयोगशील नयी कविता को निरालाजी की देन

"कुकुरमुत्ता", "बेला" और नये पत्ते" निरालाजी के प्रयोगकालीन काव्य संकलन हैं । इनमें "कुकुरमुत्ता" का प्रकाशन सन् 1942 में हुआ था, जबकि प्रयोगवाद का प्रवर्तन सन् 1943 में "तारसप्तक" के प्रकाशन से माना जाता है । श्री रमेशचन्द्र के शब्दों में कुकुरमुत्ता-"निराला की सामाजिक चेतना, यथार्थ दृष्टि, प्रगतिशील विचारधारा और व्यंग्य वृत्ति का परिणाम है जिसमें जीवन के विविध पार्श्वों पर व्यंग्य किया गया है" ।[2] प्रस्तुत कविता प्रयोग की दृष्टि से निरालाजी की प्रतिनिधि

---

1. छायावाद की प्रासंगिकता - पृ.सं. 71 डा. रमेशचन्द्रशाह ।
2. वही वही

कविता भी है । श्री. लक्ष्मीकान्त वर्मा ने सन् 1953 अप्रैल की "आलोचना" में लिखा -" परिमल और तुलसीदास " के निराला को आत्मवादी पाया किन्तु "बेला" "नये पत्ते" और "कुकुरमुत्ता" में उन्हें "असाधारण संस्कारच्युत अभिव्यक्तिता का प्रत्यक्ष विस्फोट सा दिखाई दिया । जो प्रवृत्ति "नये पत्ते" और "बेला" में बाह्यरूप में मिलती है, वही "अर्चना" में अन्तर्मुखी रूप धारण कर लेती है ।"[1] निरालाजी की प्रयोगशील दृष्टि नये पत्ते" में अधिक प्रकट हुई है । इसकी भाव-भूमि भी नयी कविता की दृष्टि से सफल है ।डा. धनंजयवर्मा ने "नये पत्ते" के संबन्ध में लिखा है -" नये पत्ते की पूरी रचनाओं का परिशीलन हमें निराला को प्रतिक्रियावादी नहीं कहने देता - हम उन्हें प्रगतिशील ही कहना चाहेंगे और ऐसा प्रगतिशील जिसने स्वयं उस धारा का नेतृत्व किया है ।"[2] "बेला" भी उच्चभाव एवं साधारण भाषा शैली के लिए प्रसिद्ध है । इसके कई गीत लोकजीवन से निकटता रखनेवाले हैं । संक्षेप में नये प्रयोग, गेयता, सहजता, भावविस्तार, शुद्ध उर्दू शैली आदि 'बेला' के गीतों की विशेषतायें हैं ।'कुकुरमुत्ता" "बेला" और "नये पत्ते" के प्रयोग नयी दिशा में आधुनिक हिन्दी काव्य की सार्थकता है ।

निरालाजी ने सबसे पहले हिन्दी कविता के भद्र व्यक्तित्व को छोडकर असली व्यक्तित्व को कविता में प्रवेश करने का अवसर दिया । इस विषयगत स्वतंत्रता से श्रीकान्तवर्मा, मुक्तिबोध जैसे कवि प्रभावित हैं। मुक्तिबोध ने नयी रचनाशीलता में निराला के व्यक्तित्व की भूमिका स्वीकार करते हुए लिखा -" निरालाजी संघर्षानुभवों द्वारा आज की जनस्थिति की ओर उन्मुख हुए ।[3] डा. रमेशचन्द्र शाह के शब्दों में "मुक्तिबोध, श्रीकान्तवर्मा जैसे कवियों में नयी कविता में जो नया समीर, नयी बेबाकी कुछ दैर से ही सही आयी, इसके पीछे वही काव्यमुक्ति थी जिसे हिन्दी ने निराला में "वनबेला" के साथ जान लिया था ।"[4]

"अर्चना, "आराधना" और "गीतगुंज" का कवि आध्यात्मवादी तो है, पर यहाँ भी उन्होंने सामाजिक यथार्थ से अपना दृढ संबन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है ।

---

1. आलोचना अप्रैल 1953 2. निराला काव्य पुनर्मूल्यांकन-पृ.सं. 184 डा. धनंजयवर्मा
3. नयी कविता का आत्मसंघर्ष पृ.सं. 85 श्री मुक्तिबोध
4. छायावाद की प्रासंगिकता - पृ.सं. 73 -डा. रमेशचन्द्रशाह

प्रयोगशील कवि राहों के अन्वेषी रहे । लेकिन निरालाजी अपने संपूर्ण रचनाकाल में नित्यप्रति नये राहों का अन्वेषण करते रहे । इसी कारण अपने समकालीन कवियों में मात्र निरालाजी का काव्य ही अपने परवर्ती काव्यपरम्परा से कहीं न कहीं जाकर जुडता है । भाषा की काव्यमुक्ति, व्यंजनाशक्ति और वैविध्य का जैसा निरालाजी ने अनुभव किया था, वैसा अज्ञेय जैसे प्रयोगवादी कवि नहीं । अनुभूति और अभिव्यक्ति की नयी भंगिमा को नयी कविता के जन्म के दस वर्ष पूर्व ही निरालाजी ने परीक्षण के रूप में अपनी कविता में अपनाया था । उसमें वे सफल निकले। निरालाजी द्वारा शुभारंभित इस नयी भंगिमा को बाद में नयी कविता में फिर प्रतिष्ठा मिली । नयी कविता को जीवन्त भाषा के गठन के लिए परवर्ती कवि निरालाजी द्वारा दिखाये मार्ग से आगे बढे । नयी कविता के साथ निरालाजी का संबन्ध जोडते हुए डा. रामरतन भटनागर ने लिखा - "ऐसे भी बिन्दु निराला के काव्य में मिलते हैं जो प्रतीकवाद से आगे बढकर उन्हें नयी कविता से जोडते हैं, विशेषत: 'कुकुरमुत्ता' 'बेला' युग की रचनाओं में । नये गीत के सरल बोलचाल की भाषा का स्वर भी 'अणिमा' 'गीतगुंज' के गीतों में मिलेगा । जो भी हो यह स्पष्ट है कि निराला के प्रयोग ही परवर्तीयुग में नये कवियों की सिद्धि और उनकी कविता की सार्थकता बन गये हैं।[1]

हिन्दी काव्य के इतिहास में सन् 1950 के आसपास का समय ही प्रयोगशील नयी कविता का असली विकासकाल माना जाता है । लेकिन डा. श्याम सुन्दर घोष के शब्दों में -" नयी कविता का काल वास्तव में सन् 1940 के बाद शुरू होता है, तभी जबकि निराला नयी कवितायें लिखने लगते हैं । सन् 1950 के बाद तो निराला के द्वारा प्रवर्तित परम्परा का ही अपने ढंग से परिपूर्ण विकास होता है । इस दृष्टि से निराला नयी कविता के आदिगुरू हैं "[2]।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि प्रयोगशील नयी कविता के विकास काल के पहले निरालाजी प्रयोगशील रहे । भावसंवेदना एवं भाषिक संरचना के क्षेत्र में एक साथ

---

1. निराला नव मूल्यांकन पृ.सं. 201 - डा. रामरतन भटनागर ।
2. निराला साहित्य सन्दर्भ - पृ.सं. 168

प्रयोग को अपनानेवाले हिन्दी के पहले कवि है वे । सन् 1942 में प्रकाशित "कुकुरमुत्ता" और 46 में प्रकाशित "नये पत्ते" में नयी कविता के प्रतिमानों से युक्त निरालाजी की कवितायें प्रकाश में आयी थीं । उनकी इस काव्यगत प्रयोगशीलता के आधार पर डा. रमेशचन्द्रशाह ने उन्हें पहला प्रयोगवादी कवि कहा है ।[1] मुक्तिबोध जैसे प्रयोगशील कवि निरालाजी द्वारा शुभारंभित परम्परा को आगे बढाते हैं । अपने समकालीन कवियों में बाद की परम्परा को मार्गदर्शन देनेवाले कवि अकेले निराला हैं । इसलिए हम कह सकते हैं कि हिन्दी काव्य में प्रयोगशील नयी कविता का शुभारंभ "तारसप्तक" के प्रकाशन के पहले ही निरालाजी द्वारा हुआ था ।

ठ ठ ठ ठ

---

1. छायावाद की प्रासंगिकता पृ.सं. 68 डा. रमेशचन्द्रशाह

अध्याय छः

उपसंहार

श्री. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने द्विवेदीयुग के मध्य में हिन्दी काव्य जगत में पदार्पण किया। सन् 1916 से लेकर सन् 1961 अक्तूबर तक वे रचनारत रहे। द्विवेदीयुगीन अभिधात्मक, इतिवृत्तात्मक कविता से शुरूकर आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों से जुडकर आज बीसवीं शताब्दी के प्रतिनिधि कवि के रूप में हिन्दी काव्यसंसार में वे प्रतिष्ठित हैं।

सन् 1923 से सन् 1954 के बीच हिन्दी कविता को दिशा - निर्देशन देनेवाले उनके अनेक काव्य संकलन प्रकाशित हुए। निरालाजी के जीवन के सायंकाल की कविताएँ उनके स्वर्गवास के आठ वर्ष बाद "सांध्यकाकली" में प्रकाशित हुई। निरालाजी का अंतिम संकलन सन् 1961 में निकला। इनकी विस्तृत चर्चा दूसरे अध्याय में हो चुकी है।

निरालाजी के काव्य के अध्ययन से स्पष्ट है कि उनकी काव्यप्रतिभा आद्यन्त असाधारण और अद्वितीय रही है। उनकी पहली रचना "जुही की कली" की जो प्रौढता है, उनके समकालीन कवियों की समकालीन रचना में ऐसी प्रौढता का एकदम अभाव है। हिन्दी की छायावादी काव्यधारा की संपूर्ण विशेषताओं को उद्घाटित करती है प्रस्तुत कविता। सन् 1923 में प्रकाशित "अनामिका" में "जुही की कली" संकलित है। सन् 1923 में प्रकाशित प्रसादजी या पंतजी की रचनाओं की तुलना में "अनामिका" की कविताएँ अत्यन्त प्रौढ हैं। "जुही की कली" के प्रणयन से वे छायावाद के प्रवर्तक बन गये। इसी के द्वारा उन्होंने गतानुगतिका के विरूद्ध विद्रोह मचाया। छायावाद के उत्कर्षकाल में प्रकाशित "परिमल" की कवितायें विभिन्न भाव भूमियों को उद्घाटित करती हैं। उन्मद

प्रणयव्यापार, वैयक्तिकता, स्वच्छन्दता, राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक चेतना, विद्रोह, मुक्तछन्द, आध्यात्मिकता जैसी छायावाद की प्रमुख प्रवृत्तियाँ "परिमल" की कविताओं में पूर्णरूप में विद्यमान है । "गीतिका" में निरालाजी का गीतकार व्यक्तित्व प्रकट है । इसके द्वारा वे कविता को संगीत के निकट लाये । "अनामिका" में "सरोजस्मृति" है, जिसकी वैयक्तिकता समाजसापेक्ष है । "राम की शक्तिपूजा" और "तुलसीदास" जैसे लंबी कविताओं का प्रणयन भी छायावादी युग में उन्होंने किया । यद्यपि प्रसादजी के समान छायावाद युग में निरालाजी महाकाव्यकार नहीं बने, परवर्ती कवियों ने परम्परा की काव्य विधा को छोडकर नाटकीयता और मार्मिकता से संपन्न, निरालाजी द्वारा प्रवर्तित लंबी कविता की विधा को अपनाया । "जुही की कली" द्वारा प्रवर्तित उनके मुक्तछन्द ने परवर्ती कवियों का मार्ग प्रशस्त किया । छायावादी स्वच्छन्दता की महत्वपूर्ण विशेषता है विद्रोह । विद्रोह की यह प्रवृत्ति अन्य छायावादी कवियों की तुलना में निरालाजी की कविता में सर्वाधिक है

सन् 1936 में प्रगतिशील काव्यधारा के उदय के दस या बीस वर्ष पहले ही निरालाजी ने यथार्थवादी कविताओं के प्रणयन के द्वारा अपनी प्रगतिशील चेतना का परिचय दिया है । छायावादी युग में उस काव्यधारा की श्रीवृद्धि में योग देनेवाले निरालाजी ने छायावादी मान्यताओं के विरुद्ध विद्रोह करके "काव्य में सामान्य की प्रतिष्ठा की । उन्होंने छायावादी सौन्दर्य सम्बन्धी मनदंड को तोडा और कुरूप अनपढ को काव्यविषय बनाया । इसी कारण वे हिन्दी में प्रगतिवाद के प्रवर्तक बन गये । अत: निरालाजी के काव्य में प्रगतिशील काव्य प्रवृत्ति की विशेषताएँ – सामाजिक यथार्थ के प्रति आग्रह, शोषितों के प्रति सहानुभूति, शोषकों के प्रति आक्रोश, निरलंकृत काव्य भाषा का दर्शन है । पर उनकी प्रगतिशील चेतना किसी राजनीतिक वाद का परिणाम नहीं था । वे प्रचारवादी साहित्य से अलग रहे हैं । अत: प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों के राजनीतिक मार्क्सवाद

को छोडकर अन्य सारी प्रवृत्तियाँ निरालाजी की कविता में मौजूद हैं । अत: निरालाजी की कविता केलिए प्रगतिवाद से अधिक युक्त शब्द प्रगतिशील है ।

निरालाजी की "कुकुरमुत्ता" का प्रकाशन सन् 1942 में हुआ था जबकि हिन्दी में प्रयोगवाद का प्रवर्तन सन् 1943 में "तारसप्तक" के प्रकाशन के साथ माना जाता है । निरालाजी की "कुकुरमुत्ता"और सन् 1946 में प्रकाशित"नये पत्ते" में प्रयोगशील कविता के प्रतिमानों से युक्तकविताएँ प्रकाश में आयी थीं । उनकी "कुकुरमुत्ता" "जुही की कली" के समान ही हिन्दी में युगपरिवर्तन की सूचना देनेवाली कविता है । "कुकुरमुत्ता" का विषय तो प्रगतिशील है लेकिन उसकी भाषा, संगीत, शब्द, उपमाएँ सब एक ऐतिहासिक मोड की सूचना देती हैं । यह कविता हिन्दी काव्य में शिल्पगत प्रयोगशीलता का उत्तम उदाहरण है । निरालाजी ने परीक्षण निरीक्षण के रूप में जिस भाषा का प्रयोग किया, उसकी सफलता देखकर नये कवियों ने उस रास्ते को स्वीकार किया । अत: प्रयोगशील नयी कविता की प्रमुख विशेषतायें - आधुनिक भावबोध, बौद्धिकता, यथार्थ के प्रति आग्रह, नया सौन्दर्य बोध तथा शिल्पगत विशेषतायें निरालाजी की कविता में हम देख सकते हैं । उनकी प्रयोगकालीन रचनायें काव्य अभिजात्य से मुक्ति का सफल प्रयास है । सामान्य की प्रतिष्ठा की उत्कट लालसा उनकी कविता में है । हिन्दी काव्य के इतिहास में सन् 1950 के आसपास का समय ही प्रयोगशील नयी कविता का असली विकासकाल है । लेकिन निरालाजी की नयी कविता के प्रतिमानों से युक्त रचनाएँ "कुकुरमुत्ता","बेला"युग में ही प्रकाश में आयी थी । नये गीत के सरल बोलचाल की भाषा का स्वर उनके "गीतगुंज " के गीतों तक मिलता है । निरालाजी का प्रयोग परवर्ती कवियों की सिद्धि और उनकी कविता की सार्थकता है । अत: भाव संवेदना और भाषिक संरचना के क्षेत्र में एक साथ प्रयोग को अपनानेवाले हिन्दी के प्रथम कवि हैं वे । अत: हिन्दी काव्य में प्रयोगशील नयी कविता का शुभारंभ "तारसप्तक" के प्रकाशन के पहले निरालाजी द्वारा हुआ था ।

निरालाजी की अकवितानुमा कविताएँ:-

नयी कविता के विरोधमें जन्मी "अकविता" शब्दार्थ के समान परम्परा के निषेध का सूचक है । सन् 1963 में जगदीश चतुर्वेदी के संपादकत्व में निकली "प्रारंभ" से इसकी शुरूआत हुई । "अकविता" पत्रिका ने इसे आन्दोलन के रूप में प्रशस्त किया । श्री जगदीश चतुर्वेदी ने अपने पुस्तक "इतिहास हन्ता"संकलन की भूमिका में अपने काव्यादर्श को स्पष्ट करते हुए लिखा -" मैं कविता को घोर वैयक्तिक रचना की प्रक्रिया मानता हूँ ।[1]" अत: अकवियों के लिए कविता व्यक्ति की अभिव्यक्ति है । निषेध और आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति इस काव्यधारा का मूलस्वर है । अकवि शब्दों के खिलवाड में सक्षम है । रोमान्टिक भावुकता के विरोध करनेवाले अकवियों की संवेदना शहरी जीवन से लगी हुई है । इन्होंने परम्परा को विद्रोह की दृष्टि से देखा और पश्चिमी काव्यों के अनुकरण में यौन प्रतीकों और बिम्बों को अपनाकर काव्य को दुरूह बनाया । श्री. जगदीश चतुर्वेदी के साथ, श्याम परमार. गंगाप्रसाद विमल और सौमित्र मोहन इस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं ।

निरालाजी के स्वर्गवास के आठ वर्ष बाद प्रकाशित संकलन " साध्यकाकली" में संकलित उनकी कुछ अंतिम कविताओं के सम्बन्ध में आलोचक विभिन्न मत रखते हैं । कुछ आलोचक इसका सम्बन्ध नयी कविता के बाद के काव्यान्दोलन से जोडते हैं । डा. शशिभूषण शीतांशु ने'ताक कमसिनवारि, वारि..वनवारि,'डमड डमड डमड" जैसी कविताओं की भाषा का सम्बन्ध विवेकोत्तर भावसमाधि की काव्यभाषा से जोडा है । निरालाजी की "बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा"ने काव्यभाषा को अधिकाधिक प्रौढ बना दिया था । डा. शशिभूषण शीतांशु के शब्दों में -"उनकी ।ताक कमसिनवारि जैसी कविताओं की। काव्यभाषा यदि अत्यधिक सुसंहत है तो सपाट भी, अभिजात है तो वाग्पंथी भी, विवेकसिद्ध है तो विवेकोत्तर भाव समाधि की काव्यभाषा भी है ।[2]" निरालाजी हिन्दी में इस काव्यभाषा के अकेले प्रयोगकर्ता हैं । डा. शशिभूषण शीतांशु के शब्दों में -"यही वह बिन्दु है,

---

1. इतिहास हन्ता भूमिका - जगदीश चतुर्वेदी
2. संवेदना मार्च 1980 पृ.सं. 11

जहाँ विवेकोत्तर भाव समाधि के मौन स्तर पर हिन्दी की पहली अकविता फूट पडती है"।[1]

रूस के भविष्यवादी आन्दोलन से प्रभावित कवियों ने शब्द को तोड - मरोडकर उनके अधूरेपन में एक कलात्मक समन्वय प्रस्तुत किया और यहाँ विवेकोत्तर भावसमाधि की भाषा का जन्म हुआ । साथ ही भाषा की शुद्धता, स्पष्टता और अर्थगर्भिता समाप्त हुई । निरालाजी का इस भाषा से प्रभावित होने का कोई प्रमाण नहीं । श्री शीतांशु के शब्दों में - "पर उनके काव्यविकास के अंतिम चरण की कविता में इस विवेकोत्तर भाव समाधि की और अन्यतम मौन की काव्यभाषा की सहज अभिव्यक्ति दीख पडती है, जिसके मूल में उनकी निजी संवेदनशीलता का प्रामाणिक अस्तित्व है "।[2]

उदा: उनकी कविता, ताक कमसिनवारि ।

ताक कमसिनवारी
ताक कम सिनवारि,
ताक कम सिन वारि,
सिनवारि, सिनवारि
ता ककमसि नवारि
ताक कमसि नवारि
ताक कमसिन वारि,
कमसिन कमसिनवारी
इरावनि समक कात्,
इरावनि सम ककात्
इराव निसम ककात्
सम ककात् सिनवारि ।[3]

---

1. संवेतना - मार्च 1980 - पृ.सं. 11
2. वही पृ.सं. 14
3. सांध्यकाकली - पृ.सं. 51

यह कविता विवेकोत्तर भाव समाधि की काव्यभाषा का उत्तम उदाहरण है । यहाँ शब्द छूटता है, टूटता है, इस शब्द क्रीडा में सन्दर्भ को बनाये रखने में कवि सक्षम है । सन्दर्भ बनाकर भाषा का उपयोग करता है, अर्थ छूट जाता है तो मन का मोद शेष रह जाता है। इस आनन्द में संगीत के साथ नृत्य की भंगिमा है । यहाँ पहली पंक्ति का अर्थ स्पष्ट है, किसी युवती से अपनी ओर देखने का आग्रह व्यक्त करता है । दूसरी पंक्ति में चढती उम्रवाली की दृष्टि - निक्षेप के कारण दबी आँख से देखने का आग्रह है तो तीसरी पंक्ति में अपांग से देखने के साथ उस दृष्टि के लिए स्वयं अपनी उम्र न्योच्छावर करने का उल्लेख है । यहाँ पंक्तियाँ सन्दर्भ मुक्त नहीं । शब्दों के तोड मरोड से सन्दर्भ का आनन्द संगीत और नृत्यकला की भंगिमा भी झूमती नज़र आती है । यहाँ केवल 'आँख' का क्रियाव्यापार है । यहाँ शरीर के एक अंग, आँख का खण्ड निरूपण हुआ है । बाद के दो चरणों में प्रथम चरण में व्यक्त आह्लाद का ध्वनिप्रतीकों में आवर्तन हुआ है । यहाँ व्याकरण का नियम ध्वस्त हो गया है । द्रवित स्थिति को इस विपथन से उत्पन्नभाषा विवेकोत्तर भावसमाधि तक पहुँच गयी है ।

डा. रामविलास शर्मा ने "ताक कमसिनवारि" को निरालाजी की क्लासिकी रचना बतायी है । डागर लोग पंक्तियों, शब्दों को उलट-पुलटकर ध्रुपद गाते हैं । वे हिन्दी में चलनेवाली एक नयी विधा एक्सपेरिमेंटी से इस कविता का संबन्ध जोडते हैं[1] । डा. रामविलास शर्मा "मुद्राराक्षस "जैसी कविताओं से "ताक कमसिनवारि" का संबन्ध जोडते हैं । डा. शर्माजी के शब्दों में- "इस तरह की 'मुद्राराक्षस' रचनाओं से कोई " ताककमसिनवारि" का संबन्ध जोडे तो किसी को आपत्ति न होनी चाहिए । इतना मानना चाहिए कि "मुद्राराक्षस" की रचना रोमांटिक है, निराला की क्लासिकल"[2]।

संक्षेप में अकविता की भाषा से मिलने- जुलनेवाली विवेकोत्तर भाव-समाधि- की काव्यभाषा का निर्वाह निरालाजी की इन सायंकालीन कविताओं में है ।

---

1. राग-विराग की भूमिका पृ.सं. 35 - डा. रामविलास शर्मा
2. वही वही

समकालीन कविता और निराला

नयी कविता और अकविता के बाद सन् 1980 के पहले हिन्दी काव्य संसार में प्रचलित सामान्य शब्द है "समकालीन कविता"। "समकालीन" शब्द की प्रयुक्ति मूल्य को सूचित करनेवाले शब्द के रूप में है। श्री सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, केदारनाथसिंह जैसे नयी कविता के सशक्त कवि समकालीन कविता के भी सशक्त हस्ताक्षर रहे। युवा पीढी धूमिल से शुरू होती है, इस परम्परा में श्री चन्द्रकान्त देवताले, श्री कुमारविकल, श्री विनोदकुमारशुक्ल जैसे कवि हैं। वय में भी युवा श्री विष्णुनागर, मंगलेश डबराल जैसे कवि भी समकालीन कविता में अपना योग दे रहे हैं।

यह कविता परम्परागत नैतिकता, सामान्तवाद, पूंजीवादी शोषण एवं साम्राज्य-वाद का विरोधी है। नाटकीयता रहित नयी प्रकार की वस्तुपरकता, आत्मसंघर्ष एवं सामाजिक संघर्ष, अनावरण और आक्रमण, व्यंग्यात्मक मुद्रा, सपाटबयानी आदि इस काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

समकालीन कविता की, समकालीन यथार्थ की द्वंद्वात्मकता, व्यंग्यात्मकमुद्रा, अनुभूतियों का स्थानीकरण, नवरोमान्टिक प्रवृत्ति और लोकजीवन से निकटता जैसे प्रवृत्तियों के लिए वे निरालाजी से ऋणी हैं।

समकालीन कविता के आत्मसंघर्ष और कविता में व्याप्त सामाजिक संघर्ष को समझने केलिए निरालाजी के योगदान पर दृष्टि रखना ज़रूरी है। समकालीन कविता में कठोर यथार्थ को प्रत्यक्ष करनेवाली जो नयी दिशा है, उसी के जनक निरालाजी हैं।

उदा:

नहीं जानती साम्राज्ञी अपने को
नहीं कर सकी सत्य कभी सपने को

वे किसान की नयी बहू की आँखें
ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विरह बन्द
कर पाँखें ।[1]

यहाँ अलंकृति में कठोर यथार्थ का जो अंकन है, यहाँ आवेग का जो नियंत्रण है आज की जटिल संवेदना को नये यथार्थ के साथ स्वीकार करती है । काव्यात्मकता का यह नया विवेक, शान्त लय में कठोर तनाव को प्रकट करनेवाला यह नया स्वर श्री रघुवीर सहाय, मंगलेश डबराल, राजेश जोशी, अरुण कमल जैसे नये कवियों में है । श्री रघुवीर सहाय की कविता "विचित्र सभा" का काव्यात्मक विधान और अन्तर्वस्तु की तुलना निरालाजी की "नये पत्ते" को "झींगुर डटकर बोला; "महंगू महंगा", "डिप्टी साहब आए" जैसी कविताओं से की जा सकती है । यहाँ अन्तर केवल इतना है कि रघुवीर सहाय में यथार्थ की जटिलता का अनुभव तीव्र है ।

विरुद्धों का सामंजस्य या विरोधाभास की चेतना हिन्दी कवियों में निरालाजी में सबसे अधिक विद्यमान है । "ठूँठ"[2] कविता में वसन्त के आकर्षण व्यापार के विरुद्ध वृद्ध विहग की उपस्थिति का यथार्थ अंकन करनेवाले निरालाजी की इस चेतना का प्रभाव रघुवीर सहाय जैसे कवियों में है -

दिल्ली के वसन्त का वह एक विशेष दिन था
गर्मी थी और हवा थी जो धूप को उड़ाये लिए जाती है ।
मौलसिरि के बड़े से तले तैल छाँह का छितरा हुआ घेर था
सामने लहराते एक हज़ार फूलों के रंग से डरकर
सिमटे हुए लोग उसमें बैठे थे,
मृत्यु की खबर की प्रतीक्षा में

यहाँ प्रकृति के मोहक वर्णन के साथ मृत्यु की प्रतीक्षा भी है ।

---

1. अनामिका पृ.सं. 150
2. अनामिका पृ.सं. 143

अजनबीपन समकालीन भावबोध का एक अभिन्न अंग है, इस अजनबीपन में आवेग है, तनाव है साथ ही संयम का स्पर्श भी। निरालाजी "आह" को काबू में करना "गान" की सार्थकता मानते हैं। डा. परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में -" नये पत्ते की कविताओं में जो अराजक तनावयुक्त संगठन है उसे छोड़कर समकालीन कविता में निहित व्यंग्य विडंबना के राजनीतिक उपयोग की विशिष्टता को समझना कठिन है "।[1] "नये पत्ते" की रचनाकाल में कवि को जिस राजनीति का एहसास था, उसकी कड़ी सन् 1987 तक दिखाई देती है। निराला, नागार्जुन और मुक्तिबोध की राजनीतिक कविता परम्परा की कड़ी कुमार विकल की राजनीतिक कविताओं में दिखाई देती है।

समकालीन कविता में व्यंग्य और करुणा का जो साहचर्य संघर्ष है, वह निरालाजी के काव्य विवेक के निकट है। साधारण गर्वोक्ति को संघर्ष के बीच गौरवपूर्ण बनाने में निरालाजी दक्ष हैं। "कुकुरमुत्ता", "दमन कर दो" जैसी कविताओं का व्यंग्य तीखा एवं आक्रामक है। निरालाजी की यह व्यंग्यात्मकता, राजनीतिक चेतना एवं क्रांति चेतना का विकास युवा कवियों में धूमिल में पाया जाता है -

बदलो अपने आप को बदलो
यह दुनिया बदल रही है
और यह रात है, सिर्फ रात
इसका स्वागत करो
यह तुम्हें

शब्दों के नये परिचय की ओर लेकर चल रही है। समकालीन कविता में विद्रोह और अस्वीकार की अभिव्यक्ति केलिए नयी भाषा प्रयुक्त है। श्री रघुवीर सहाय के संग्रह " आत्महत्या के विरुद्ध "समकालीन कविता को राजनीतिक अर्थमयता और मानवीय तात्कालिकता प्रदान करनेवाली रचना है। इस संकलन की भाषा

---

1. शब्द और मनुष्य - पृ.सं. 16-17

"कुकुरमुत्ता" की भाषा के निकट है । इसके क्रोड़ा कौतूहल प्रधान, सृजनशीलता के साथ संप्रेषण में सहायक बुननेवाली, वस्तु सूक्तिप्रियता से युक्त शिल्प एवं देशकाल की बदली हुई परिस्थिति हिन्दी पाठकों को अधिकाधिक प्रभावित करती रहती है । इसका नया अर्थ गठन जो रोमान्टिक भावुकता के विरुद्ध उदित हुआ है, डा. परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में -" निराला ने सरोजस्मृति में करुणा और हास्य का जो तात्पर्य समृद्ध द्वन्द्वमय सन्तुलन प्रमाणित किया है, रघुवीरसहाय का क्रोडा भाव उसी अर्थ में आधुनिक जीवन की विडम्बनापूर्ण त्रासदी को प्रत्यक्ष करता है"।[1]

राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता जैसी लम्बी रचनाओं में निराला की काव्य प्रतिभा का उन्मेष स्पष्ट है । समकालीन कवियों ने परम्परा से चली आनेवाली काव्यविधा को छोड़कर आधुनिक जीवन की जटिल मनोवृत्तियों की विवृत्ति के लिए लम्बी कविता को ही चुन लिया । प्रसादजी की "कामायनी" और निरालाजी की "राम की शक्तिपूजा" सन् 1936 की रचनायें हैं । समकालीन कवि निरालाजी की लंबी कविताओं से प्रभावित दिखाई देते हैं ।

समकालीन कविता के सन्दर्भ में गतिरोध की जैसी जो स्थिति है, वहाँ निरालाजी की कविताएँ सहायक हैं । कविता प्रयास के पीछे जो संघर्ष है वह पहले निराला में और बाद में मुक्तिबोध में दिखाई दिए । जीवनदृष्टि, विचारधारा, काव्यात्मक परिप्रेक्ष्य से समकालीन कविता का सम्बन्ध समझने की कसौटी है निरालाजी की कविता । कवि का आत्मसंघर्ष और सामाजिक संघर्ष काव्य का इतिहास बन गया है । समकालीन कविता को तथाकथित रूढियों से मुक्त करने में निरालाजी का योगदान अन्य आधुनिक कवियों से कहीं ऊँचा है । डा. परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में - "युवा कवि अरुण कमल यदि यह स्पष्ट समझ रखते हैं कि बाह्य के साथ संघर्ष से ही आत्मसंघर्ष शुरू होता है तो इसके पीछे भी निराला की ही प्रेरणा है । आज यदि राजनीतिक यथार्थ को कविता लिखने के लिए राजनीतिक विषय का चुनाव अनिवार्य

---

1. शब्द और मनुष्य पृ.सं. 28 डा. परमानंद श्रीवास्तव

तथा विकल्प नहीं माना जाता, यदि व्यवहार में भी दिखाई देता है कि प्रतिभावान कवि प्रेम और प्रकृतिविषयक कविताओं को भी गहरे अर्थों में राजनीतिक कविता का रूप दे सकते हैं तो इस स्थिति को संभव बनाने में निराला की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है"।

संक्षेप में समकालीन कविता से निरालाजी को जोड़नेवाली महत्वपूर्ण कड़ी उनका यथार्थवादी दर्शन है। इस यथार्थवादी दर्शन ने समकालीन कविता के रूप, भाषा और अन्तर्वस्तु पर गहरा प्रभाव डाला है।

निराला और परवर्ती कवि

निरालाजी अपने समकालीन कवियों में बाद के कवियों को प्रभावित करनेवाले अकेले कवि हैं। हिन्दी में प्रगतिशील परम्परा का उदय आकस्मिक नहीं था। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना, कांग्रेस में वामपंथी दल का उदय, किसान संगठन, समाजवादी विचारधारा के प्रति नेहरूजी का दृष्टिकोण सब इसका कारण था। छायावाद के अभ्युदय में योग देने के बाद, उसके स्वयं बनाये संस्कारों से संघर्ष करके निरालाजी ने एक नये काव्यबोध को अपनाया। अगर निरालाजी प्रगतिशील यथार्थवादी परम्परा की कविता के विरोध करनेवाले अज्ञेय के काव्यानुशासन को अपनाते तो वे अपने विराट प्रतिभा एवं संपूर्ण काव्य संभावनाओं के बावजूद भी अज्ञेय की कक्षा के कवि बन जाते और परवर्ती कवियों के लिए इतना प्रासंगिक नहीं बन पाते। नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल जैसे प्रगतिशील यथार्थवादी काव्य-धारा के कवि निरालाजी की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। प्रगतिशील यथार्थवादी परम्परा के कवि नागार्जुन में व्यंग्य और करुणा का जो साहचर्य संघर्ष है, वह निरालाजी के काव्य विवेक के निकट है, नागार्जुन की "पछाड़ दिया है मेरे आस्तिक ने" जैसी कविता का व्यंग्य "कर दो वमन" जैसी निरालाजी की कविता के निकट है, जिनका

---

1. शब्द और मनुष्य पृ.सं. 28 - डा. परमानंद श्रीवास्तव

व्यंग्य तीखा और आक्रामक है । केदारनाथ अग्रवाल की कविता पर विचार करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है - वह तोड़ती पत्थर की परम्परा केदार और नागार्जुन की कविताओं में विकसित हुई है"।[1] "तोड़ती पत्थर में"निरालाजी एक व्यवस्था को चुनौती देते हैं । हथौड़ा हाथ में लेकर पत्थर पर प्रहार करनेवाली मज़दूरानी एक वर्गचेतना का प्रतीक है । शब्दों के बाहर गूँज पैदा करनेवाली है प्रस्तुत कविता।नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल श्रमिक मज़दूरों की ओर उन्मुख हैं । केदारनाथ की यथार्थ परक अनुभूति निरालाजी के निकट है । डा. रामविलासशर्मा के शब्दों में -" मार्क्सवाद ने जिस भावबोध को पुष्ट किया, केदार के साथ ऐसा ही हुआ और एक हद तक निरालाजी के साथ भी "[2]।

केदारनाथ अग्रवालजी ने भी "नये पत्ते" की कविताओं का संबन्ध प्रगतिशील कविता से जोड़ने की कोशिश की है । उनके शब्दों में -" निरालाजी के "नये पत्ते" में आयी और व्यक्त हुई आम आदमी की मानसिकता सहज साधारण यथार्थ से बनी मानसिकता थी और सहज साधारण बोलचाल के तर्ज और तेवर में प्रकट हुई थी, इसलिए, "नये पत्ते" की कविताओं का विशेष महत्व और योगदान रहा है और अब भी है "[3]। सीधे ढंग से जीवन की जटिलताओं को व्यक्त करनेवाले त्रिलोचन की कविता निराला की याद दिलाती है ।

डा. परमानन्द श्रीवास्तव प्रगतिशील यथार्थवादी काव्यधारा की दो परम्पराएँ मानते हैं । एक लोकोन्मुख, रागयुक्तव्यंग्यप्रेरित कविता और दूसरी लम्बी जटिल विधानवाली कविता[4]। नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल पहली परम्परा की कवियाँ हैं तो मुक्तिबोध दूसरी परम्परा में आते हैं । मुक्तिबोध निरालाजी के गतिशील द्वन्द्वात्मकता के पक्षधर हैं । मुक्तिबोध की रचना के संबन्ध में केदारनाथ अग्रवाल ने लिखा है -"निराला ने कविता को जहाँ तक पहुँचाया था, वहाँ से कविता को आगे बढाने का काम मुक्तिबोध ने किया ज़रूर .....पर निश्चय ही उनकी चेतना ने जनतांत्रिक काव्यचेतना का पथ प्रशस्त नहीं किया"[5]।

---

1. क्षम की सूरज पृ.सं. 34 -डा. रामविलासशर्मा
2. वही वही वही
3. विचारबोध पृ.सं. 79-80 केदारनाथ अग्रवाल
4. शब्द और मनुष्य पृ.सं.
5. विचारबोध पृ.सं. 79-80 केदारनाथ अग्रवाल ।

परम्परा निर्देश करनेवाले हिन्दी की नयी कविता की दो धाराएँ मानते हैं - व्यक्तिवादी और समाजवादी । इनमें व्यक्तिवादी विचारधारा का सम्बन्ध अज्ञेय से जोडते हैं और समाजवादी धारा का सम्बन्ध मुक्तिबोध और शमशेर से । निरालाजी की कविताएँ बहुवस्तुव्यापी और नाना शैली विन्यासों से सज्जित हैं और प्रयोगशील नयी कविता के लिए प्रेरिका बनी रहीं । वे वस्तुनिरूपण में नहीं बल्कि शैली में हिन्दी के प्रयोगशील कवि रहे । अज्ञेयजी ने प्रयोगपद्धति को आरंभ से ही चरमसीमा पर पहुँचाने का प्रयास किया । सन् 1940 के बाद की निरालाजी की कवितायें प्रयोग बहुलता के लिए प्रसिद्ध हैं । अज्ञेय ने आरंभ से ही प्रयोग को एक दर्शन के रूप में स्वीकार किया और अपने काव्यजीवन के सायंकाल में प्रयोग से पृथक होकर एक वेदान्ती स्वर को अपनाया जो निरालाजी की कविताओं में आद्यन्त मौजूद थी । अज्ञेयजी की कविता में जो पौरुष है, वह निरालाजी की कविता का प्रतिफलन है । आचार्य वाजपेयी के अनुसार प्रयोगशील नये कवियों में धर्मवीर भारती की कविताओं में निरालाजी की शृंगारिक एवं कोमल भावनायें आभासित होती है । लेकिन निरालाजी की शृंगारिकता की भास्वरता भारतीजी में नहीं । भारती एकान्तता को पसन्द करते हैं ।

नयी कविता की समाजवादी धारा का सम्बन्ध मुक्तिबोध से है । मुक्तिबोध की इस परम्परा को परम्परा निर्देश करनेवाले निराला की परम्परा की अगली कडी मानते हैं । मुक्तिबोध में सामाजिक यथार्थ की अनुभूति है, अकेलेपन की भयानकता है, यह निरालाजी की काव्य संवेदना में बहुत पहले विद्यमान था -

शिशिर की शर्वरी
हिंस्र पशुओं भरी[2]

---

1. नयी कविता पृ.सं. 50 - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी
2. अर्चना - पृ.सं. 27

मुक्तिबोध की कविता में अंधेरे का जो चित्रण है वह निरालाजी के काव्य में लंबी अवधि तक फैले अन्धकार के निकट है । मुक्तिबोध में भी निरालाजी के समान "अन्धकार" शब्द के तद्भव तत्सम रूपों का अन्तर उनकी अर्थ प्रकृति से उपजता है । लेकिन मुक्तिबोध में अन्धेरे का रूप सामाजिक सन्दर्भों से मिला रहता है । निरालाजी की आस्तिकता बार बार उन्हें आलोक का स्मरण दिलाता है अत: उनकी कविता में अन्धकार और आलोक का संघर्ष अधिक गहन और तीव्र है ।

उदा राम की शक्तिपूजा की
रह एक और मन

ऐसे अन्धकार घन में जैसे विद्युत सा--जैसी पंक्तियाँ ।
मुक्तिबोध में आस्था और संशय मिलकर अन्धेरे में झांकते नज़र आते हैं ।

अत: निरालाजी की कविता में अन्धेरे से जूझने का जो उपक्रम है, अपने अपने ढंग से मुक्तिबोध में है, धर्मवीर भारती में भी । मुक्तिबोध ने अधिक उग्रता से परिस्थिति और परिवेश का अनुभव किया । निरालाजी के वेदान्त दर्शन ने इस उग्रता को कम कर दिया । निरालाजी की भांति मुक्तिबोध ने अनेक काव्यरूपों का प्रयोग किया । निरालाजी के काव्य प्रयोग में एक सधे हुए कलाकार की धारता है, लेकिन मुक्तिबोध में यह काव्यप्रयोग धारारहित है । मुक्तिबोध निराला से प्रभावित थे, लेकिन निरालाजी की उदात्तता एवं संतुलन कौशल का उनमें अभाव है । मुक्तिबोध भी निरालाजी के समान स्वधीनवेता थे । आत्महन्ता आस्था दोनों में है, दोनों अपने समय से आगे की कवितायें लिखते रहे ।

शमशेर बहादुरसिंह ने स्वीकार किया है कि उनकी भावना पर "परिमल" और अनामिका" का प्रभाव पड़ा है । डा. परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में -" स्वच्छन्द अमूर्तन के साथ क्लासिकी ठोसपन के प्रति शमशेर में जो आकर्षण दिखाई

देता है वह निराला की काव्यभूमि के बाहर की चीज़ नहीं है । शमशेर ही नहीं निराला भी बहुत से अबूझ शब्द, सन्दर्भ, बिम्ब कविता में छोड़ देते हैं।[1] "कविता" में छूटी हुई जगहों में अर्थ भरने का विवेक निरालाजी के समान शमशेर में है । "वनबेला" का सन्दर्भ और व्यंग्य संघर्षमय यथार्थ का आशय प्रकट करता है साथ ही अपनी संपूर्णता में उससे अधिक व्यक्त करती है । अधिकाधिक गहरा दिखाई देनेवाले निरालाजी के शिल्प से भी शमशेर प्रभावित हैं -

उदा सूर्य मेरी अस्थियों के मौन में डूबा
गुट्ठल जड़े
प्रस्तरों के सघनपंजर में
मुड़ गयीं ।

विगत संध्या की
रह गयी है एक खिड़की खुली
झांकता है विगन किसका भाव [2]

निरालाजी की प्रकृति में जीवन्त, स्पन्दित परिवेश का जो मूर्त एकाग्र चित्रण है, उसकी याद दिलानेवाली है शमशेर का यह शिल्प । नये कवियों की दो प्रवृत्तियाँ - व्यंग्य और अनुभूतियों की स्थानीकरण के लिए वे निरालाजी के ऋणी हैं। नयी कविता में जो छन्दमुक्ति है उसकी प्रेरिका निरालाजी की कविता है । डा. नामवरसिंह के शब्दों में -"बाद के कवियों ने निराला से विद्रोह और मुक्त छन्द तो लिया किन्तु छन्दोबद्ध रचना का काव्यपाक ग्रहण नहीं किया "[3]। लेकिन त्रिलोचन इसके अपवाद के रूप में हमारे सामने हैं।निरालाजी द्वारा प्रवर्तित लंबी कविताएँ अप्रत्याशित तनाव का समावेश करती हैं, इस विधा को नये कवियों ने अपनाया ।

कई महत्वपूर्ण कवि ऐसे है जिन्होंने निराला के नये पाठ से उत्तेजित हुए यद्यपि उन्होंने अपने समय का मुहावरा चुन लिया है और निरालाजी की शैली को नहीं अपनायी है । डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी के शब्दों में कहें तो - " निराला के विराट व्यक्तित्व के ये तत्व "शक्ति

---

1. शब्द और मनुष्य पृ.सं. 25
2. वही पृ.सं. 25-26
3. ज्ञानोदय - अक्तूबर 1963

और छवि "नये कवियों को विरासत में कुछ अलग अलग और कुछ शामिल ढंग से मिले हैं।"[1]

सन् 1950-60 के बीच के दौर में रघुवीर सहाय, केदारनाथ सिंह जैसे कवि नयी कविता लिख रहे थे। उस समय निरालाजी आरीरिक रूप से अस्वस्थ थे, मानसिक रूप से अर्द्धविक्षिप्त भी। इस दौर में "अर्चना", आराधना" और "गीत-गुंज" का प्रकाशन हुआ। ये गीत नये ढंग के और नयी स्फूर्ति पैदा करनेवाले थे। अर्द्धविक्षिप्त कवि के भीतर राग - संवेदना का जो अक्षय स्त्रोत था, वह उस समय भी काव्यात्मक आश्चर्य पैदा कर रहा था -

गीत गाने दो मुझे तो,
वेदना को रोकने को
चारे खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे
हाथ जो पाथेय थे, ठग
ठाकुरों ने रात लूटे
कंठ रूकता जा रहा है
आ रहा है काल देखो [2]

निरालाजी की यथार्थवादी दृष्टि गीतों में भी निजता से उच्छल आवेग को नियंत्रित करती है और आज के कठोर समय की संवेदना को नये तनाव के एहसास के साथ ग्राह्य बनाती है। इस नियंत्रण से गीत का ही नहीं, काव्यात्मकता का नया विवेक सामने आता है। एक धीमी शान्त लय में तनाव को प्रकट करनेवाला यह वह नया स्वर है जो डा. परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में -" आज के पाठक कभी रघुवीर सहाय में सुन सकते है," कभी मंगलेश डबराल, असद जैदी, अरूण कमल और राजेश जोशी में। कभी यह स्वर त्रिलोचन के संयत निरावेग वक्तव्य में निहित स्वर के आसपास है, कभी अधिक विन्यास के बावजूद केदारनाथसिंह के निकट "[3]। रघुवीर सहाय के

---

1. नयी कविताएँ एक साहय पृ.सं. 58 - रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. अर्चना पृ.सं. - 75
3. शब्द और मनुष्य पृ.सं. 16

काव्य संकलन "आत्महत्या के विरुद्ध" की कविता "स्वाधीन व्यक्ति" में जो समकालीन साहित्यक और सामाजिक परिदृश्य है, वह निरालाजी की लंबी कविता "वनबेला" की याद दिलाती है। "वनबेला" में स्वाधीन व्यक्ति की परिकल्पना है।

सन् 1950 - 60 के बीच नयी कविता केलिए जो नयी भाषा बन रही थी उसमें निरालाजी की काव्यभाषा का स्पर्श था।

उदा: केलिए अर्चना के एक गीत -

साध पूरी, फिर धुरी
छुटी-गोल-छिल-छुरी
अपने वश हैं सपने,
सुकर बने जो न बने
सीधे है, कडे, घने,
मिली एक एक कुरी।[1]

कविता के चालीस वर्ष पर विचार करते हुए कुंवर नारायण, निरालाजी की महत्व-पूर्ण योगदान का स्मरण करते हैं और युगीन समस्याओं का हल निरालाजी की कविता में देखते हैं। श्री. कुंवर नारायण के शब्दों में -" निराला का निजी संसार उनकी कविता का उतना ही आवश्यक हिस्सा है जितना वह समाज जिसमें वे जी रहे हैं। खास बात है, निराला की समझ और संवेदना का विस्तार जो उनकी कविताओं की रीढ है और जो इसपर इतना नहीं निर्भर करता कि कवि अपने चारों ओर की जिन्दगी का कितना सही सही चित्रण करता है बल्कि इसपर कि वह अपने बाहर और भीतर के यथार्थ का कितना संश्लिष्ट रूप हमें दे पाता है और इसके दौरान जो जीवन दृष्टि हमें देता है वह कितनी मूल्यवान है "।[2] कुंवरनारायणजी के इस कथन को परम्परा प्रेम नहीं बल्कि समकालीन यथार्थ की द्वन्द्वात्मक गतिशीलता का दबाव माना उचित है। अरूणकमल भी इसी पक्षधर हैं कि निरालाजी की कविता को ठीक न समझ पाने के कारण ही आज की कविता

---

1. अर्चना - पृ.सं. 110
2. सामाजिक यथार्थ और नयी कविता का आत्मसंघर्ष ।पूर्वग्रह पृ.सं. 63-64 ।

को इकहरी और कुसको भाषा जड़हीन लगती है। जीवन वैविध्य के अनुरूप रूपगत वैविध्य कविता को शक्ति बढ़ाती है, इस दृष्टि से निरालाजी हिन्दी के सबसे महान कवि हैं। कुमार विकल की राजनीतिक कविता की जो अर्थ संवेदना है, वह सन् 1942-43 की राजनीतिकपरम्परा की कड़ी है, जिसका निरालाजी को पूरा एहसास था। इस राजनीतिक परम्परा की शुरूआत निरालाजी से हुई। मुक्तिबोध, नागार्जुन, रघुवीर सहाय सब इस परम्परा में आनेवाले कवि हैं। परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में -" यदि एक ओर गरिमा मंडित, काल्पनिक अमूर्त किस्म की वैयक्तिकता अथवा आलंकारिक शिल्प में सीमित छायावाद को अस्वीकार करके ही समकालीन कविता के यथार्थ को समझा जा सकता है तो दूसरी ओर छायावाद और यथार्थवाद के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध की चेतना को आरंभिक महत्वपूर्ण प्रस्थान मानकर समकालीन कविता की बुनियादी प्रकृति की पहचान की जा सकती है"।[2] अतः छायावादी काल में छायावादी तत्वों का अतिक्रमण करनेवाले निरालाजी के काव्य में ऐसे तत्व विद्यमान है कि समकालीन कविता के परिदृश्य पर विचार करने पर निराला, नागार्जुन, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, रघुवीरसहाय, केदारनाथसिंह, धूमिल, कुमार विकल, अरूण कमल जैसे कवियों की लम्बी परम्परा की ओर पाठकों का ध्यान जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि निरालाजी के बाद हिन्दी काव्यक्षेत्र में रचनारत महान कवि किसी न किसी दृष्टि से उनसे प्रभावित है।

आधुनिक हिन्दी काव्य के केन्द्रीय कवि निराला

पिछले अध्यायों में आधुनिक काव्य प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में निरालाजी की कविताओं का विस्तृत अध्ययन हो चुका है। छायावाद के प्रवर्तक बनकर उन्होंने सन् 1916 में हिन्दी काव्यजगत में पदार्पण किया। अब निराला रहित छायावादी काव्य की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। छायावादी कवियों में विद्रोह की मात्रा निरालाजी में अन्य कवियों की अपेक्षा अधिक मात्रा में

---

1. शब्द और मनुष्य पृ.सं. 191
2. शब्द और मनुष्य पृ.सं. 12

विद्यमान है । उनके विद्रोह और स्वच्छन्द छन्द को बाद के कवियों ने स्वीकार किया । छायावादी युग में ही निरालाजी ने अपने छायावादी संस्कारों से टकराते हुए प्रगतिशील चेतना संपन्न कविताओं का प्रणयन किया । "परिमल" और "अनामिका" की अनेक कविताएँ इसके उदाहरण हैं । यथार्थ को काव्यात्मक परिणिति हिन्दी में पहली बार निरालाजी की कविता में प्रकट हुई । सामान्य की प्रतिष्ठा की निरालाजी की उत्कट लालसा ने एक नये काव्यमान को जन्म दिया जिससे परवर्ती कवि प्रभावित हुए । प्रगतिशील कविता के मार्क्सवाद को छोडकर अन्य सभी प्रवृत्तियाँ निरालाजी की कविता में अपनी संपूर्णता के साथ विद्यमान है ।

निरालाजी अपनी शिल्पगत एवं विषयगत प्रयोगशीलता के साथ रचनारत रहे कि सन् 1943 में "तारसप्तक" का प्रकाशन हुआ, हिन्दी में प्रयोगशील नयी कविता का प्रवर्तन उस संकलन से माना जाता है । लेकिन ऐसी प्रयोगशील नयी कविताओं की भूमिका पहले ही निरालाजी की रचनाओं में उद्घाटित हुई थी । "कुकुरमुत्ता", "बेला" और "नये पत्ते" में निरालाजी अकाव्योचित विषय को काव्यमयी अभिव्यक्ति देते हैं । इन रचनाओं में कवि की यथार्थवादी दृष्टि का जो मूर्तरूप है, उससे प्रभावित हैं परवर्ती कवि । यह यथार्थवादी दृष्टि निरालाजी को अपने समकालीनों से अलग करती है और परवर्ती कवियों को उनके निकट ले जाती है । बाद के कवियों का व्यक्तित्व भी निरालाजी के समान छोटों से मिलकर एक हो गया है । सन् 1939 के बाद हास्य व्यंग्य का जो प्रखर स्वर निरालाजी की कविता में सुनाई देता है उससे प्रभावित हैं परवर्ती कवि । जीवन की विभीषिकाओं और विषमताओं के उद्घाटन के लिए सामन्ती शक्ति एवं राजनैतिक नेताओं के दोहरे चरित्र को व्यक्त करने के लिए उन्होंने व्यंग्य को सशक्त हथियार के रूप में स्वीकार किया । "कुकुरमुत्ता" और "नये पत्ते" का यह व्यंग्य प्रयोगशील नयी कविता एवं समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्ति बन गयी है ।

निरालाजी अपने परिवेश के सफल पारखी रहे । "अनामिका" के "खुला असमान" जैसी कविताएँ इसके उदाहरण हैं । लोकजीवन से पास निकटता समकालीन कवियों की कविताओं में भी देखी जाती है ।

जुही की कली से लेकर निराला की कविता में भाषा का प्रौढतम रूप दिखाई देता है । अनेक प्रकार की सांकेतिक व्यंजनाओं से सुसज्जित है उनकी भाषा । "कुकुरमुत्ता" में उनका भाषा संस्कार एकदम बदल जाता है । "कुकुरमुत्ता" की इस प्रयोगशीलता पर दृष्टिपात करते हुए डा. रमेशचन्द्रशाह ने उन्हें हिन्दी का पहला प्रयोगवादी कवि कहा है । निरालाजी भाषा के किसान हैं । हर खेत में उनके भाव की जड गड जाती है । निरालाजी के इस, उट पटांग, शिल्पहीन, शिल्पद्रोही शिल्प से बाद के कवि प्रभावित हुए । आवेग रहित चिन्तनशील कथ्यों के निर्वाह केलिए निरालाजी ने मुक्तछन्द के गीतों की रचना की । परवर्ती कवियों पर इसका असर पड़ा । हिन्दी में अकाव्य संभव वेदान्त से सुंन्दर कविता निचोडनेवाले, संस्कृत शब्दों के अनमेल घटाटोप को भी हिन्दी के संगीत में पिघलाने की ऊर्जा और गर्मी रखनेवाले, दार्शनिक भावनाओं को कविता के लाघव में उडा देनेवाले कवि अकेले निराला हैं । उन्होंने हिन्दी कविता केलिए सौन्दर्यबोध का एक नया प्रतिमान सामने रखा,व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त किया । उनकी काव्यमुक्ति की घोषणा को बाद के कवियों ने स्वीकार किया ।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि निरालाजी की काव्यप्रतिभा की विराटता से आछादित है, बीसवीं शताब्दी की हिन्दी कविता । नये कवियों में ऐसे अनेक कवि हैं जो अपना संबन्ध निरालाजी से जोडते हैं । निराला के विद्रोह और स्वच्छन्दता को प्रयोगशील नये कवियों ने स्वीकार किया । उनके भावगांभीर्य और मानवीय संवेदना से युक्त नवीन सौन्दर्यबोध बाद के कवियों का मार्ग प्रशस्त

किया । शमशेर ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी भावना पर "परिमल" और अनामिका का प्रभाव पडा है[1] । वह तोडती पत्थर की परम्परा नागार्जुन और केदारनाथ की कविता में है । गिरिजाकुमार माथुर निरालाजी की छन्द रचना और शब्द चयन से प्रभावित हैं । निरालाजी के विद्रोह का असर पडा है मुक्तिबोध, धूमिल जैसे कवियों पर । अपने अंतिम दिनों में निरालाजी के समकालीन पंतजी ने उन्हें एक पूरे युग का प्रतीक ही नहीं बल्कि, एक काव्य युग कहा है । इस प्रकार निरालाजी एक पूरे युग को प्रभावित करनेवाले हिन्दी के प्रतिभावन कवि हैं। एक नयी काव्य संस्कृति के निर्माण करनेवाले निरालाजी का प्रभाव बाद के कवियों में संयोगवश नहीं था । डा. धनंजयवर्मा ने ठीक ही लिखा है -" यह महज संयोग नहीं है कि प्रगतिशील और नयी कविता के सबसे समर्थ और प्रासंगिक रचनाकारों से लेकर युवतर काव्य की समृद्ध रचनात्मकता तक हिन्दी कविता का जो आंतरिक चरित्र है उसकी पहली आधुनिक अभिव्यक्ति निराला के काव्य में ही देखी गयी और देखी जा रही है ।"[2] निरन्तर गतिशील कविता, परम्परा की अच्छाई को अपनाते हुए आगे बढती है । परवर्ती कवियों पर निरालाजी का प्रभाव इसी तत्व का परिणाम है ।

आधुनिक हिन्दी कविता केलिए निरालाजी का योगदान हम उन्हीं के शब्दों में कह सकते हैं -

यह सब है
तुम ने जो दिया दान-दान वह
हिन्दी के हित का अभिमान वह
जनता का जन-ताका ज्ञान वह
सच्चा कल्याण वह, अथच है -
यह सब है ।[3]

---

1. दूसरा सप्तक पृ.सं. 77
2. भाषा त्रैमासिक जून 1991 । निराला की आधुनिकता। -पृ.सं. 15
3. अनामिका - पृ.सं. 44

अत: हम निर्विवाद रूप से कह सकते हैं कि आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निरालाजी की कविता में लक्षित होती हैं। द्विवेदीयुगीन गद्यवत् कविता से लेकर छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगशील नयी कविता के अन्तर्गत आनेवाली काव्यप्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करनेवाली कविताएँ उनकी तूलिका से निकली है। उनकी कविता में द्विवेदीयुग का अभिधात्मक सौन्दर्य है, छायावादी कविता का उदात्त सौन्दर्य है, जीवन की कटु वास्तविकता की अभिव्यक्ति देनेवाली क्रांतिकारी प्रगतिशीलता है। प्रयोगशील नयी कविता की भूमिका भी उनकी कविता में लक्षित होती है। यहाँ तक कि समकालीन कवि स्वयं अपने काव्य परिदृश्य को निरालाजी से जोडना चाहते हैं। अत: उनका कालजयी व्यक्तित्व समकालीन कविता तक फैला हुआ है। इसप्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों को अपनी कविताओं में समेटनेवाला कोई दूसरा कविव्यक्तित्व हिन्दी में नहीं। अत: निरालाजी ही आधुनिक हिन्दी काव्य के केन्द्रीय कवि हैं।

ठ ठ ठ ठ

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. अर्चना - निराला - लोकभारती प्रकाशन, महात्मागांधी मार्ग, इलहाबाद -1, - पुनर्मुद्रण - 1973

2. अनामिका - निराला - भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग पाँचवाँ - संस्करण 1988

3. असंकलित कविताएँ - निराला - संपादक-नन्दकिशोर नवल- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली- द्वितीय संस्करण - 1985

4. अणिमा - निराला - युगमन्दिर उन्नाव, 1943

5. अपरा - निराला - साहित्यकार संसद, प्रयाग 1965

6. अनुपस्थित लोग - भरत भूषण अग्रवाल - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली प्र. सं 1977

7. आत्महत्या के विरूद्ध - रघुवीर सहाय - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृ.सं. 1985

8. आधुनिक हिन्दीकविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ - डा. नगेन्द्र - नाशनल पब्लिशिंग कंपनी, दिल्ली- द्वि. सं -1962

9. आधुनिक हिन्दी कविता - भक्तराम - कोणार्क प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1973 । आर्य समाज के सन्दर्भ में ।

10. आधुनिक हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ एवं वर्णन शैली - प्रेमप्रकाश गौतम, सरस्वती पुस्तक सदन, मोतीकटरा, आगरा - 3

11. आधुनिक हिन्दी कविता और विचार- राजेन्द्रमोहन भटनागर- भारतीय ग्रंथ निकेतन, दारियागंज, नई दिल्ली । प्र.सं 1987

12. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास - डा. श्रीकृष्णलाल, हिन्दी परिषद् प्रकाशन. प्रयाग, चौथा - सं - 1965

13. आज का भारतीय साहित्य - अज्ञेय-साहित्य अकेदमी दिल्ली की ओर से, राजपाल ø सन्स दिल्ली

14. आधुनिक साहित्य - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी - भारती भंडार, इलाहाबाद 1961

15. आधुनिक हिन्दी कविता की भूमिका - शंभुनाथ पाडेय - विनोदपुस्तक मन्दिर आगरा । प्र.स 1964

16. आधुनिक हिन्दी काव्य और कवि - रामचन्द्र तिवारी, नया साहित्य प्रकाशन, मिन्टो रोड, इलाहाबाद

17. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - डा. नामवरसिंह लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद । प्र.सं 1968

18. आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद- परशुरामशुक्ल विरही-ग्रंथम्. कानपुर प्र.सं 1966

19. आधुनिक हिन्दी कविता सिद्धान्त और समीक्षा - विश्वंभर नाथ उपाध्याय - प्रभात प्रकाशन, दिल्ली., मथुरा-प्र.सं. 1962

20. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य - इन्द्रनाथ मदान - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - प्र.सं. 1973

21. आधुनिक हिन्दी कविता - जगदीश चतुर्वेदी - दि. मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली प्र.सं 1975

22. आधुनिक हिन्दी काव्य प्रवृत्तियाँ, एक पुनर्मूल्यांकन - गणेश खरे - पुस्तक संस्थान, नेहरू नगर, कानपुर । प्र.सं 1976,

23. आस्था के वरण - डा. नगेन्द्र - नाशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
प्र.सं. 1980

24. आत्मनेपद - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी प्र.सं. 1960

25. आधुनिक हिन्दी कविता : प्रसाद से अज्ञेय तक-विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली। प्र.सं. 1977

26. आधुनिक हिन्दी साहित्य - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - हिन्दी परिषद, इलाहाबाद
प्र.सं 1954

27. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दी साहित्य परिषद प्रयाग -- 1952 ई

28. आंगण के पार द्वार - अज्ञेय - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन - नयी दिल्ली - षष्ठ सं - 1977 -

29. इतिहासवेत्ता - जगदीश चतुर्वेदी - ज्ञानभारती प्रकाशन 1970

30. इत्यलम - प्रतीक प्रकाशन, दिल्ली - 1946

31. उतना वह सूरज है - भरत भूषण अग्रवाल - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-
1980

32. ओ अप्रस्तुत मन - भरत भूषण अग्रवाल - लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद।

33. कविता में प्रयोगवाद की परम्परा - प्रो. प्रतापसिंह चौहान - नवयुग ग्रंथागार
महानगर, लखनऊ

34. काव्य का देवता निराला - विश्वंभर मानव - लोकभारती प्रकाशन,
इलहाबाद, प्र.सं. 1963

35. क्योंकि समय एक शब्द है - डा, रमेशकुन्तलमेघ - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं. 1975

36. कुकुरमुत्ता - निराला - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पंचम संस्करण 1975

37. कवि निराला और उनका काव्य साहित्य - गिरीश चन्द्रतिवारी - साहित्य भवन प्राइवट लिमिटड. इलाहाबाद प्र.सं.

38. कवि निराला - आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी वाणी प्रकाशन वारणासी - प्र. सं. 1965

39. कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध-शिवकान्त शास्त्री - हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वारणासी प्र.सं.

40. कविता के नये प्रतिमान - डा. नामवरसिंह राजकमल प्रकाशन दिल्ली -6 प्र.सं. 1968

41. कूल नहीं रंग बोलते हैं - केदारनाथ अग्रवाल - परिमल प्रकाशन, इलहाबाद 1965

42. कामायनी - जयशंकर प्रसाद - भारती भंडार, इलाहाबाद - प्र.सं. 1935

43. काव्य पुरुष निराला - जयनाथ "नलिन" - आलोक प्रकाशन, कुरुक्षेत्र प्र.सं. 1970

44. कुछ कविताएँ व कुछ और कविताएँ - शमशेर - राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-1984

45. क्रांतिकारी कवि निराला - बच्चनसिंह

46. गीतिका - निराला - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली दशम सं. 1993

47. गीतफरोश - भवानीप्रसाद मिश्र - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, इलाहाबाद ।

48. चांद का मुँह टेढा है - मुक्तिबोध - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्र.सं-1964

49. छायावाद की प्रासंगिकता - रमेशचन्द्रशाह - राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली तृ.सं. 1979

50. छायावाद विश्लेषण और मूल्यांकन - दीननाथ शरण

51. चक्रव्यूह - कुंवर नारायण - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन -दिल्ली -1965

52. छायावादी कवियों का सौन्दर्यविधान - डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित- दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड प्र.सं.

53. छायावाद पुनर्मूल्यांकन-श्री सुमित्रानंदन पंत - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद प्र. सं. 1965

54. छायावाद ऐतिहासिक सामाजिक विश्लेषण - डा. नामवरसिंह - सरस्वती प्रेस, बनारस प्र.सं.

55. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन - डा. कुमार विमल-राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1970

56. छायावाद - डा. रवीन्द्र भ्रमर - राजकमल प्रकाशन दिल्ली प्र.सं 1971

57. छायावाद स्वरूप और व्याख्या - राजेश्वर प्रसाद सक्सेना - अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर कानपुर 1963.

58. छायावादोत्तर काव्य में बिम्बविधान - उमा अरुटवंश - आर्य बुकडिप्पो, करौल बाग, नयी दिल्ली - 1974

59. छायावाद - डा. नामवरसिंह - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली तृ.सं.1979

60. छायावादी काव्य - डा. कृष्णचन्द्रशर्मा - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल प्र.स. 1972

61. छायावाद से नयी कविता - डा. रमेशचन्द्रशर्मा - भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ । प्र.सं. 1980

62. तारसप्तक - संपादक - अज्ञेय - ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, तृ.सं-1970

63. तीसरा सप्तक - सं - अज्ञेय-ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी । द्वि: सं 1967

64. तारापथ - श्री सुमित्रानंदन पंत - लोकभारती प्रकाशन, महात्मागांधी मार्ग इलाहाबाद - तृ. सं. 1972

65. द्विवेदीयुग का हिन्दी काव्य - डा. रामसकल राय शर्मा - अनुसंधान प्रकाशन आचार्य नगर, कानपुर - सितम्बर 1966

66. दूसरा सप्तक - सं अज्ञेय - ज्ञानपीठ प्रकाशन - वाराणसी द्वि.सं.1970

67. द्विवेदीयुगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव-भक्त रामशर्मा - वाणी प्रकाशन-कमला नगर दिल्ली, अगस्त 1973

68. निराला का काव्य - डा. अरूणिमा गौतम - चित्रर्सन - । क्रांतिचेतना और प्रयोग के आयाम । प्रकाशन, राहुल नगर, आजमगढ - प्र.सं. 1989

69. निराला ग्रंथावली । संपादक - ओंकार शरद - प्रकाशन केन्द्र, लखनाउ - प्र.सं. संवत् 2030

70. निराला ग्रंथावली ।। संपादक - ओंकार शरद - प्रकाशन केन्द्र, लखनाउ प्र.सं. 2030

71. निराला ग्रंथावली ।।। संपादक - ओंकारशरद - प्रकाशन केन्द्र, लखनउ - प्र.सं - संवत् 2030

72. निराला साहित्य सन्दर्भ - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग प्र.सं. 1973

73. निराला काव्य पुर्नमूल्यांकन - डा. धनंजयवर्मा - विद्याप्रकाशन मन्दिर, प्र.सं. 1973

74. निराला - डा. रामविलास शर्मा - दुर्गा पब्लिशिंग वर्क्स - आगरा - तृ. संस्करण

75. नया काव्य और विवेचना शंभुनाथ चतुर्वेदी - नन्दकिशोर एण्ड सन्स, चौक वाराणसी - प्र.सं. - 1964

76. नयी कविता की पहचान - डा. राजेन्द्र मिश्र - वाणीप्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 1980

77. निराला की सौन्दर्यचेतना - अंजुशर्मा - दिनमान प्रकाशन, दिल्ली -6 प्र.सं. 1990

78. निराला काव्य और कवि- राम अवधशास्त्री - विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक , वाराणसी । प्र.सं. 1972

79. निराला रचनावली । सं. नन्दकिशोर नवल - राजकमल - प्रकाशन, नयी दिल्ली - द्वि.सं. मार्च 1983

80. निराला रचनावली ।। सं. नन्दकिशोर नवल - राजकमल प्रकाशन दिल्ली द्वि.सं. 1983

81. निराला रचनावली ।।। - संपादक - नन्दकिशोर नवल - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं - 19 जनुवरी 1983

82. निराला रचनावली IV - संपादक - नन्दकिशोर नवल राजकमल प्रकाशन, दिल्ली - प्र.सं. - 19 जनुवरी 1983

83. निराला रचनावली 5 - सं. नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 19 जनुवरी 1983

84. निराला की साहित्य साधना । डा. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली द्वि.सं - 1971

85. निराला की साहित्य साधना 2 - डा. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली - प्र.सं. 1972

86. निराला की साहित्य साधना 3 - डा. रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली पृ.सं. 1976

87. निराला की आत्मकथा - प्रस्तोता - डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित - गंगा पुस्तकमाला कार्यालय , लखनऊ, अष्टम- आवृत्ति - 1960

88. निराला के पत्र-संपादक - जानकी वल्लभ शास्त्री - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली -6 पटना पृ.सं. 1971

89. निराला -पद्मसिंहशर्मा कमलेश - राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली पृ.सं -1969

90. निराला के काव्य बिम्ब और प्रतीक - वेदव्रतशर्मा - आशाप्रकाशन गृह, करौल बाग, दिल्ली प्रथम - सं 1973

91. नयी कविता की भूमिका - डा. प्रेमशंकर - नेशनल पब्लिशिंग हाउस , दरिया गंज, नयी दिल्ली - 110002 पृ.सं 1988

92. नयी कविता का आत्मसंघर्ष - मुक्तिबोध - राजकमल प्रकाशन दिल्ली - पृ.सं. - 1985

93. निराला आत्महन्ता आस्था - डा. दूधनाथसिंह - नीला - प्रकाशन, इलाहाबाद पृ.सं. 1972

94. नयी कविता नन्ददुलारेवाजपेयी - मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड दिल्ली , प्रथम सं. 1976

95. नयी कविताएँ एक साक्ष्य - रामस्वरूप चतुर्वेदी- लोकभारती प्रकाशन- इलाहाबाद 1957

96. नयी कविता के प्रतिमान - लक्ष्मीकान्तवर्मा - भारतीय प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद 1957

97. निराला काव्य का अध्ययन - डा. भगीरथ मिश्र - राधाकृष्ण प्रकाशन, अनसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली -6 प्र.सं 1967

98. नयी कविता 1

99. नयी कविता 2

100. नया हिन्दी काव्य और विवेचना - शंभुनाथ चतुर्वेदी - नन्दकिशोर एण्ड सन्स, वाराणसी । प्र.सं. 1964

101. निराला - व्यक्तित्व और कृतित्व - प्रेमनारायण टण्डन- हिन्दी साहित्य भण्डार - लखनऊ - प्र.सं. 1962

102. नयी कविता स्वरूप और समस्यायें.- डा. जगदीशगुप्त - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन - प्र. सं - 1969

103. नये प्रतिमान, पुराने निकष - लक्ष्मीकान्तवर्मा - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन - 1966

104. नया हिन्दी काव्य - डा. शिवकुमार मिश्र - अनुसन्धान प्रकाशन, नयी दिल्ली - सं. 1981

105. नया साहित्य नये प्रश्न - नन्ददुलारे वाजपेयी - विद्यामन्दिर बनारस । तृ.सं. 1963

106. निराला - नवमूल्यांकन - डा. रामरतन भटनागर - स्मृति प्रकाशन, महाजनी टोला, प्रयाग - प्र.सं. 1973

107. नये पत्ते - निराला

108. निराला - डा. रामरतन भटनागर - साथी प्रकाशन. सागर प्र.सं

109. निराला का परवर्ती काव्य रमेशचन्द्र मेहरा - अनुसंधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, 9 मार्च 1963

110. निराला साहित्यिक मूल्यांकन - गोकाककर कुलकर्णी फडके बुकसेलर्स कोलहापुर - 2 - प्र.सं. 1974

111. नयी कविता का मूल्यांकन परम्परा और प्रगति की भूमिका पर - डा. हरिचरणशर्मा - आशा प्रकाशन गृह, करौल बाग, नयी दिल्ली। प्र.सं. 1972

112. परिमल - निराला - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली तृ. सं. 1991

113. परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रियाएँ - लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - नाशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली -6 प्र.सं 1972

114. परम्परा का मूल्यांकन - डा. रामविलास शर्मा - राजकमल - प्रकाशन, नयी दिल्ली 1974

115. प्रसाद, निराला और पंत अधुनातन आकलन - डा. रामदरशमिश्र, दिनमान प्रकाशन, दिल्ली। प्र.सं. 1990

116. प्रयोगवादी काव्यधारा - रमाशंकर तिवारी - चौखंभा विद्याभवन, वाराणसी - प्र.सं. संवत् 2002 1954

117. प्रगतिवादी समीक्षा - रामप्रसाद चतुर्वेदी - ग्रंथम प्रकाशन कानपुर। प्र. सं.

118. प्रगतिवाद शिवदानसिंह चौहान - प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद 1946

119. प्रबन्ध पद्म - निराला - संपादक - दुलारेलाल भार्गव - गंगापुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, चतुर्थावृत्ति सन् 1966

120. प्यासी पथराई आँखें - नागार्जुन - अनामिका प्रकाशन, इलहाबाद, प्र. सं. 1982.

121. प्रलय सृजन - शिवमंगल सिंह सुमन

122. प्रबन्ध प्रतिमा - निराला - भारती भंडार इलाहाबाद प्रथम संवत् 1963

123. प्रतिनिधि कविताएँ - केदारनाथसिंह - राजकमल पेपर बैक्स 1965

124. प्रसाद ग्रंथावली - सं. । जगशंकर प्रसाद - भारती ग्रंथ निकेतन, नयी दिल्ली - प्र.सं. - 1988

125. प्रिय प्रवास - हरिऔध

126. फिलहाल - अशोक वाजपेयी - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-प्र.सं. 1970

127. महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग - डा. उदयभानुसिंह- लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ । प्र.सं. 1951 ।

128. बेला - निराला - निल्यमा प्रकाशन, प्रयाग, 1943

129. महाकवि निराला - जानकी वल्लभ शास्त्री - निराला निकेतन, मुजफ्फरपुर, बिहार । प्र.सं 1963

130. मायादर्पण श्रीकान्तवर्मा - भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली प्र. सं. 1967

131. महाप्राण निराला - गंगाप्रसाद पांडेय - साहित्यकार संसद, प्रयाग, प्रथम - आवृत्ति - संवत् - 2006

132. महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण - डा. रामविलास शर्मा- राजकमल प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. - 1977.

133. युगकवि निराला - कृष्णदेव झारी - अशोक प्रकाशन, नई सडक, दिल्ली - प्र. सं. 1970

133.a यशोधरा - मैथिलीशरण गुप्त

134. युगधारा - नागार्जुन - यात्री प्रकाशन, यमुनाविहार, दिल्ली - द्वि.सं - 1982

135. युगवाणी पंत - लीडर प्रेस, इलाहाबाद - प्र.सं. 1939

136. युग की गंगा - केदारनाथ अग्रवाल

137. लोक और आलोक - केदारनाथ अग्रवाल

138. शब्द और मनुष्य - परमानन्द श्रीवास्तव - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली - प्र.सं. 1988

139. सुमित्रा नंदन पंत - डा. नगेन्द्र - साहित्य रत्न भंडार, आगरा चतुर्थ संस्करण

140. समकालीन हिन्दी साहित्य आलोचना की चुनौती - डा. बच्चनसिंह - हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी

141. साहित्यकारों का संस्मरण - डा. लक्ष्मी शंकर व्यास - व्यास प्रकाशन, जवाहर नगर कोलनी, वाराणसी -10 प्र.स.

142. सांध्य काकली - निराला - सं. श्रीनारायण चतुर्वेदी - राजकमल - प्रकाशन, नयी दिल्ली - तृ सं. 1981

143. समकालीन हिन्दी कविता की भूमिका - सं. डा. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड - प्र.सं. 1976

144. समकालीन हिन्दी कविता - डा. रवीन्द्रभ्रमर - राजेश प्रकाशन दिल्ली - प्र. सं. 1972

145. सतरंगे पेंखोंवाली - नागार्जुन - वाणी प्रकाशन, दिल्ली - 1984

146. संशय की एक रात - नरेश मेहता - लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

147. साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध - महादेवीवर्मा - लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद , प्र.सं 1962

148. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला - डा. श्याम सुन्दर घोष - विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर - प्र. सं. 1975

149. संधिनी - महादेवीवर्मा - लोकभारती प्रकाशन, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद - प्र.सं. 1964

150. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास - दशम भाग - संपादक - लक्ष्मीनारायण सुधांशु - नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी - प्र.सं. विक्रम - सं -2028

151. हिन्दी साहित्य एक आधुनिक परिदृश्य - अज्ञेय - राधाकृष्ण प्रकाशन,, दिल्ली - 1967

152. हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष - प्रो शिवदानसिंह चौहान राजकमल प्रकाशन , दिल्ली - प्र. सं - 1961

153. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डा. गणपतिचन्द्रगुप्त - भारतेन्दु भवन, कण्डोगट - प्र.सं 1965

154. हरी घास पर क्षण भर - अज्ञेय - प्रगतिप्रकाशन दिल्ली - 1949.

155. हिल्लोल - शिवमंगल सिंह सुमन - सरस्वती प्रेस, बनारस द्वि.सं. 1946

156. हथौडे गीत केदार नाथ अग्रवाल ।

157. हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्रशुक्ल-प्रचारिणी - सभा. काशी । सत्रहवाँ पुनर्मुद्रण संवत् - 2029

158. हिन्दी वाङ्मय बीसवीं शती सं. डा. नगेन्द्र - विनोदपुस्तक मन्दिर, आगरा -2 - प्र.सं. 1972

159. हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य - डा. प्रेमशंकर - मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकेदमी, धारा प्रेस, भोपाल, इलाहाबाद प्र.सं. 1974

160. हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी डा. नन्ददुलारेवाजपेयी - भारती-भंडार, प्रयाग प्र.सं. - 1965

161. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - द्वितीय खण्ड सन् 1857 से अब तक - डा. गणपतिचन्द्रगुप्त - लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली, संशोधित संस्करण 1989

162. हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं.डा. नगेन्द्र -

163. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - डा. रामकुमारवर्मा - राम नारायणलाल बेनी माधव, इलाहाबाद - 1964 मई

164. हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ - प्रो. शिवकुमारशर्मा - अशोक प्रकाशन - नयी सडक, दिल्ली -6 सप्तम सं. 1977

165. हिन्दी कविता में युगान्तर - डा. सुधीन्द्र - आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली । 1957 ई

166. हिन्दी साहित्य परिवर्तन के सौपान - डा. ओंकारनाथ श्रीवास्तव ।

167. पल्लव - सुमित्रानंदन पंत - इंडियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग

168. चिदम्बरा - सुमित्रानंदनपंत - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1966

169. वीणा - पंत - भारतीय ज्ञानपीठ - काशी 1958

170. आंसू - प्रसाद, भारती भंडार, प्रयाग नवम संस्करण

171. आधुनिक कवि - पंत - हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग छठा संस्करण

172. हिन्दी साहित्य का विकास-डा. गणपतिचन्द्रगुप्त- लोक भारती प्रकाशन, महात्मागांधी मार्ग, इलाहाबाद प्र.सं. 1971

ॐ ॐ ॐ

पत्र - पत्रिकाएँ

1. समकालीन भारतीय साहित्य वर्ष - 11 अंक मा जुलाई सितम्बर 1990
2. भाषा त्रैमासिक - जून 1991 वर्ष तीस अंक चार
3. संवेतना - मार्च 1980
4. समीक्षा अप्रैल 1973
5. साहित्य सन्देश सितम्बर 1966
6. साहित्य मंडल पत्रिका - 1982 अंक 41
7. समकालीन - वर्ष 11 अंक 41 जुलाई 1990
8. मधुमती मार्च - 1992
9. आलोचना - जनुवरी 1952
10. ज्ञानोदय अक्तूबर 1963
11. आजकल अंक 1 मार्च 1964
12. प्रतीक जून 1951
13. आलोचना - अप्रैल 1953

ǒ ǒ ǒ